बी.ए., प्रथम वर्ष
हिन्दी साहित्य, प्रथम प्रश्नपत्र

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Sharda Singh
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

2. Dr Sudhir Shrama
   Professor
   Govt MLB College Bhopal

3. Dr Dharmendra Pare
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr Anjali Singh
   Director
   Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr Dharmendra Pare
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

5. Dr Sudhir Shrama
   Professor
   Govt MLB College Bhopal

6. Dr Sharda Singh
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

COURSE WRITERS

Dr. Snehlata Gupta, Associate Professor, Department of Hindi, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar (UP)
Units (1.0-1.1, 1.6-1.7, 1.8-1.12, 4.0-4.4.2,4.4.3, 4.5-4.9, 5)

Ghanshyam Kumar Devansh, Academic Author
Unit (1.2-1.5)

Dr Seema Sharma, Lecturer, Department of Hindi, Ginni Modi Girls (PG) College, Modinagar (UP)
Unit (2.0-2.1, 2.2, 2.4-2.8)

Dr Urvija Sharma, Associate Professor, Department of Hindi, SD PG College, Ghaziabad (UP)
Unit (2.3)

Dr Pranav Sharma, Associate Professor, Department of Hindi, Upadhi Mahavidyalaya, Pilibhit
Unit (3.0-3.1, 3.2-3.2.4, 3.3.3, 3.4-3.4.3, 3.5-3.9)

Dr Geeta Singh, Associate Professor and Head Department of Hindi, D.A.V PG College, Azamgarh
Unit (3.3-3.3.2)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 कबीर, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, घनानन्द, भूषण– निर्धारित अंशों से व्याख्या 1. **कबीरदास** : संपादक–डॉ. श्यामसुन्दरदास– काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी गुरुदेव को अंग, बिरह को अंग, ग्यान बिरह को अंगः प्रत्येक से प्रारंभिक 5–5 साखी एवं प्रारंभिक 5 पद 2. **सूरदास** : संपादक– डॉ. धीरेन्द्र वर्मा **उद्धव संदेश–** कुल 15 पद– क्रम संख्या 9, 10, 15, 21, 22, 26, 27, 29, 52, 53, 62, 82, 95, 101 एवं 120 3. **तुलसीदास–** (प्रकाशक– गीता प्रेस, गोरखपुर) विनय पत्रिका एवं कवितावली से प्रारंभिक 5–5 पद, अयोध्या कांड (रामचरितमानस) दोहा क्रमांक 117 से 121 तक 4. **बिहारी–** बिहारी रत्नाकर– संपादक– जगन्नाथ दास रत्नाकर : (भक्ति, नीति, प्रकृति, श्रृंगार, विरह के 5–5 दोहे) दोहा संख्या– 1, 5, 6, 7, 8, 11, 14, 16, 18 19, 21, 25, 28, 31, 32, 35, 37, 38, 41, 51 = कुल 20 दोहे 5. **घनानन्द–** सं. डॉ. रामचंद्र तिवारी एवं डॉ. रामफेर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (15 सवैये) 2, 3, 4, 6, 8, 9, 10, 11, 12, 14, 15, 17, 19, 20, 22 = कुल 15 पद 6. **भूषण–** रीति काव्यधारा– सं. डॉ. रामचंद्र तिवारी एवं डॉ. रामफेर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी– चयनित 14 कवित्त वन्दना– 1, 2 शिवाजी प्रशस्ति– 9, 10, 11, 12, 15, 17, 20 छत्रसाल प्रशस्ति– 22, 23, 26, 32, 34 द्रुत पाठ– (1) अमीर खुसरो, (2) विद्यापति, (3) जायसी, (4) मीरा, (5) रसखान, (6) केशव, (7) पद्माकर	**इकाई 1** : कबीर, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, घनानन्द, भूषण– निर्धारित अंशों से व्याख्या **(पृष्ठ 3–76)**
इकाई–2 भक्तिकाल एवं रीतिकाल की पृष्ठभूमि, प्रमुख प्रवृत्तियां, धाराएं एवं विशेषताएं	**इकाई 2** : भक्तिकाल एवं रीतिकाल : परिचयात्मक अध्ययन **(पृष्ठ 77–128)**
इकाई–3 कबीर, सूर और तुलसी पर समीक्षात्मक प्रश्न	**इकाई 3** : भक्तिकालीन कवि कबीर, सूर और तुलसी : समीक्षात्मक अध्ययन **(पृष्ठ 129–206)**
इकाई–4 बिहारी, घनानन्द और भूषण पर समीक्षात्मक प्रश्न	**इकाई 4** : रीतिकालीन कवि बिहारी, घनानन्द और भूषण : समीक्षात्मक अध्ययन **(पृष्ठ 207–270)**
इकाई–5 द्रुत पाठ के कवि – अमीर खुसरो, विद्यापति, जायसी, मीरा, रसखान, केशव, पद्माकर (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)	**इकाई 5** : द्रुत पाठ **(पृष्ठ 271–292)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 कबीर, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, घनानन्द, भूषण– निर्धारित अंशों से व्याख्या **3–76**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 कबीरदास
  1.2.1 गुरुदेव कौ अंग
  1.2.2. विरह कौ अंग
  1.2.3 ग्यान–विरह कौ अंग
  1.2.4 पद
1.3 सूरदास
1.4 तुलसीदास
  1.4.1 विनय पत्रिका
  1.4.2 कवितावली
  1.4.3 अयोध्याकांड (रामचरितमानस–तुलसीदास)
1.5 बिहारी
1.6 घनानन्द
1.7 भूषण
  1.7.1 वन्दना
  1.7.2 शिवाजी प्रशस्ति
  1.7.3 छत्रसाल प्रशस्ति
1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 भक्तिकाल एवं रीतिकाल : परिचयात्मक अध्ययन **77–128**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 भक्तिकाल
  2.2.1 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि
  2.2.2 भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां
  2.2.3 भक्तिकाल की विभिन्न काव्यधाराएं एवं विशेषताएं
2.3 रीतिकाल
  2.3.1 रीतिकाल की पृष्ठभूमि
  2.3.2 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां
  2.3.3 रीतिकाल की विभिन्न काव्यधाराएं एवं विशेषताएं
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली

2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 भक्तिकालीन कवि कबीर, सूर और तुलसी : समीक्षात्मक अध्ययन 129–206

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कबीर
3.2.1 कबीर की भक्ति भावना
3.2.2 कबीर की रहस्य साधना
3.2.3 कबीर का दर्शन एवं प्रासंगिकता
3.2.4 निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान
3.3 सूरदास
3.3.1 सूर की भक्ति भावना
3.3.2 भ्रमरगीत परंपरा एवं सूर
3.3.3 कृष्ण काव्यधारा में सूर का स्थान
3.4 तुलसीदास
3.4.1 तुलसीदास की भक्ति भावना एवं दार्शनिक चेतना
3.4.2 तुलसीदास के काव्य में समन्वय भावना
3.4.3 राम काव्यधारा में तुलसी का स्थान
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 रीतिकालीन कवि बिहारी, घनानन्द और भूषण : समीक्षात्मक अध्ययन 207–270

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 बिहारी
4.2.1 बिहारी की काव्यकला
4.2.2 बिहारी की बहुज्ञता
4.2.3 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी
4.3 घनानन्द
4.3.1 घनानन्द की काव्यकला
4.3.2 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानन्द का काव्य
4.3.3 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन
4.4 भूषण
4.4.1 भूषण का साहित्यिक अवदान
4.4.2 भूषण की काव्य कला
4.4.3 ओजस्वी कवि के रूप में भूषण
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 द्रुत पाठ **271–292**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 अमीर खुसरो
5.3 विद्यापति
5.4 जायसी
5.5 मीरा
5.6 रसखान
5.7 केशव
5.8 पद्माकर
5.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.10 सारांश
5.11 मुख्य शब्दावली
5.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.13 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. हिन्दी, प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रमानुसार किया गया है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है अर्थात साहित्य में तत्कालीन समाज प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विद्यमान होता है। काव्य में कल्पना का अंश होता है पर कवि चातुर्य यही है कि यथार्थ के धरातल से अभिव्यक्ति विलग न हो। जिस प्रकार आदर्शवाद की स्थापना के लिए यथार्थ का विवरण आवश्यक होता है वैसे ही सफल काव्य वही होता है जिसमें कल्पना और यथार्थ दूध और पानी की तरह एकसार हों।

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन और मध्यकालीन कतिपय प्रमुख कवियों के पाठ्यक्रम निर्धारित सृजन का व्याख्यात्मक अध्ययन किया गया है। भक्ति और रीतिकाल की पृष्ठभूमि, प्रवृत्तियों, धाराओं एवं विशेषताओं का रेखांकन करते हुए संदर्भित सर्जकों का समीक्षात्मक अवलोकन और अन्यान्य कवियों पर भी दृष्टि डाली गई है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने के लिये प्रश्न दिये गये हैं। पाठ्य सामग्री तैयार करते समय विषय में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का भरपूर प्रयास किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिये संपूर्ण पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई काव्यांशों की व्याख्या पर आधारित है। इसमें कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी, घनानन्द एवं भूषण की पाठ्यक्रम निर्धारित कविताओं की ससंदर्भ व्याख्या की गई है।

दूसरी इकाई में भक्तिकाल एवं रीतिकाल की पृष्ठभूमि, प्रमुख प्रवृत्तियों, धाराओं एवं विशेषताओं का विवेचन किया गया है।

तीसरी और चौथी इकाई समीक्षा पर आधारित है। तीसरी इकाई में भक्तिकालीन कवि कबीर, सूर एवं तुलसी के साहित्यक अवदान का समालोचनात्मक अवलोकन किया गया है।

चौथी इकाई में रीतिकालीन त्रिरत्न बिहारी, घनानंद एवं भूषण के साहित्यिक व्यक्तित्व–कृतित्व का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

पांचवीं इकाई 'द्रुत पाठ' है, जिसमें अमीर खुसरो, विद्यापति, जायसी, मीरा, रसखान, केशव एवं पद्माकर के संक्षिप्त जीवन वृत्त एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में भक्ति एवं रीतिकाल से परिचित होते हुए प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य में विविध कवियों और उनकी रचनाओं के विविध पहलुओं का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। इन इकाइयों के अध्ययन से छात्र संबंधित विषयों से भली–भांति अवगत हो सकेंगे। हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत करते हुए उनका ज्ञानवर्धन करेगी।

इकाई 1 कबीर, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, घनानन्द, भूषण– निर्धारित अंशों से व्याख्या

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 कबीरदास
  1.2.1 गुरुदेव कौ अंग
  1.2.2. विरह कौ अंग
  1.2.3 ग्यान–विरह कौ अंग
  1.2.4 पद
1.3 सूरदास
1.4 तुलसीदास
  1.4.1 विनय पत्रिका
  1.4.2 कवितावली
  1.4.3 अयोध्याकांड (रामचरितमानस–तुलसीदास)
1.5 बिहारी
1.6 घनानन्द
1.7 भूषण
  1.7.1 वन्दना
  1.7.2 शिवाजी प्रशस्ति
  1.7.3 छत्रसाल प्रशस्ति
1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

भक्तिकाल के शीर्षस्थ कवि, जो त्रिरत्न हैं' कबीर, सूर और तुलसी हैं। रहस्यवादी कवि और संत कबीर ज्ञानाश्रयी–निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। सूरदास हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक, महात्मा, ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि एवं हिन्दी साहित्यि के सूर्य के रूप में समादृत हैं। हिन्दी साहित्य के महान कवि तुलसीदास की कृति 'रामचरितमानस' हिन्दू समाज के घर–घर में बतौर धर्मग्रंथ समादृत है। आपको आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है।

बिहारी, घनानन्द और भूषण रीतिकाल के आधार–स्तंभ हैं। बादशाह शाहजहां के समकालीन बिहारी राजा जयसिंह के राज कवि थे। रीतिकालीन कवियों में इनका स्थान सर्वोपरि माना जाता है। घनानन्द रीतिकालीन प्रमुख काव्यधाराओं रीति बद्ध, रीति सिद्ध से इतर रीति मुक्त काव्यधारा के अग्रणी कवि हैं। शृंगार रस में रचना कर रहे रीतिकालीन कवियों से अलग भूषण ने वीर रस को प्रमुखता देकर अपनी विशिष्ट

टिप्पणी

पहचान बनाई। भूषण के प्रतिनिधि काव्य 'शिवराज भूषण' के नायक शिवाजी हैं और खलनायक औरंगजेब।

इस इकाई में हम उपरोक्त छः कवियों की पाठ्यक्रम में निर्धारित रचनाओं का व्याख्यात्मक अध्ययन करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कबीर की साखी के गुरुदेव, विरह एवं ज्ञान–विरह कौ अंग के प्रारंभिक पदों की व्याख्या कर पाएंगे;
- सूरदास के उद्धव संदेश के निर्धारित पदों के व्याख्यात्मक स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- तुलसीदास की विनयपत्रिका, कवितावली एवं रामचरितमानस के अयोध्याकांड के स्वर से परिचित हो पाएंगे;
- बिहारी के नीति, प्रकृति, श्रृंगार आदि संबंधी दोहों का अर्थ समझ पाएंगे;
- घनानन्द के चुनिंदा सवैयों की व्याख्या कर पाएंगे;
- भूषण के चयनित 14 कवित्तों की व्याख्या कर पाएंगे।

1.2 कबीरदास

कबीर ग्रंथावली के गुरुदेव, विरह एवं ज्ञान विरह कौ अंग तथा 'पद' के निर्धारित अंशों की व्याख्या इस प्रकार है–

1.2.1 गुरुदेव कौ अंग

(1) सतगुरु सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं जाति।।

संदर्भ– संत कबीर द्वारा रचित यह साखी कबीर ग्रंथावली के 'गुरुदेव कौ अंग' शीर्षक के अंतर्गत संग्रहीत है।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने गुरु महिमा का वर्णन किया है।

व्याख्या– भक्त कबीर कहते हैं कि इस संसार में सच्चे गुरु के समान कोई भी सगा–संबंधी नहीं है। एक गुरु ही है जो हमारे वास्तविक हित व अहित के काम में लगा रहता है और कभी हमें अपने मार्ग से भटकने नहीं देता। गुरु के समान न कोई शोधी, पारखी है और न ही गुरु के समान कोई दाता है। गुरु न केवल हमारे गुणों–अवगुणों का शोधन करता है बल्कि इस संसार के सत्य–असत्य को भी सही अर्थों में जांच पाता है। भगवान के भक्त गुरु जैसा कोई भी भला करने वाला नहीं है, वह निरंतर हमारे जीवन में सच्चे मूल्यों को विकसित करने में लगा रहता है और हमारी कमियों की ओर हमारा ध्यान दिलाता है। कबीर हरिजन यानि ईश्वर के भक्त लोगों को सब जातियों में श्रेष्ठतम बताते हुए कहते हैं कि भक्त के समान इस संसार में कोई जाति नहीं है।

विशेष

- भक्त व गुरु की महिमा का बखान किया गया है तथा उन्हें सबसे उच्च कोटि का बताया गया है।
- जाति व्यवस्था पर प्रहार करने वाले कबीर ने इस साखी में भक्त को ही श्रेष्ठ जाति बताया है।
- मिली जुली भाषा अथवा खिचड़ी भाषा है तथा छंद के रूप में दोहे का प्रयोग है।

(2) बलिहारी गुरु आपणैं द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने गुरु के प्रति समर्पण व्यक्त किया है।

व्याख्या– मैं अपने सतगुरु की बलिहारी हूँ और अपना यह नश्वर शरीर उन पर न्योछावर करता हूँ जिन्होंने मुझे मनुष्य से देवता तुल्य बना दिया। ऐसा करने में उन्हें कोई देर नहीं लगी। अभिप्राय यह कि सद्गुरु हमारे भीतर छिपे ब्रह्म को पहचानने तथा उसे जगाने में मदद करते हैं। बिना उनके ईश्वर या परब्रह्म का साक्षात्कार होना असंभव है। अद्वैत दर्शन के अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है किंतु इस तथ्य से मनुष्य परिचित नहीं होता। सतगुरु जी यह ज्ञान कराकर जीव और ब्रह्म के बीच का भेद मिटाते हैं।

विशेष

- गुरु की कृपा का महत्व इस पद में बतलाया गया है।
- 'बार' शब्द में यमक अलंकार है क्योंकि यह शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है तथा उसके दोनों स्थितियों में भिन्न–भिन्न अर्थ हैं–न्योछावर व विलंब।
- मिली–जुली भाषा का प्रयोग है।

(3) सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने गुरु महिमा का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर गुरु की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि सतगुरु की महिमा का कोई आर–पार नहीं है। वे सदा ही अपने शिष्यों के उपकार में लगे रहते हैं। उन्होंने मेरी दृष्टि पर पड़ा परदा हटा दिया तथा अनंत, असीम परब्रह्म के दर्शन करा दिए। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु ज्ञान के प्रभाव से हमारे मन–मस्तिष्क में हुई चेतना को इतना विकसित करते हैं कि हम ज्ञान रूपी ब्रह्म का अपने ही भीतर अनुभव कर पाते हैं।

विशेष

- कबीर निर्गुण संत थे। निर्गुण दर्शन में स्वयं का साक्षात्कार कर लेना ही ईश्वर का दर्शन करना है।

टिप्पणी

- अनंत शब्द के अनेक अर्थ होने तथा अनेक बार प्रयोग होने से यमक अलंकार है।
- मिली–जुली लोकभाषा भाषा का प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(4) राम नाम के पटतरे, देबे कौ कछु नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माँहि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने गुरु दक्षिणा पर विचार किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि सतगुरु ने मुझे राम का नाम दिया अर्थात् उन्होंने मुझे परब्रह्म की भक्ति व उसके चिंतन में लगाकर उसके साक्षात्कार का अनमोल अवसर दिया। उनकी इस अनमोल भेंट के बदले मैं उन्हें गुरु दक्षिणा के रूप में भला क्या दे सकता हूँ? मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे उनको देकर मैं संतोष कर सकूँ अथवा जिसे पाकर गुरु को ही प्रसन्नता हो। इस विचार ने मुझे निराशा से भर दिया है।

विशेष

- कबीर ने गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान को बहुमूल्य बताया है जिसके बदले अन्य किसी भी वस्तु की तुलना नहीं की जा सकती।
- अनुप्रास अलंकार एवं मिली–जुली भाषा का प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(5) सतगुर के सदकै करूँ, दिल अपणी का साछ।
कलियुग हम स्यूँ लड़ि पड़या महकम मेरा बाछ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने सद्गुरु को सबसे बड़ा हितैषी बताया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि मैं अपने हृदय को साक्षी मानकर अपने सद्गुरु पर न्योछावर होता हूँ। कलियुग ने मुझे अपने जाल में फँसाने का बहुतेरा प्रयास किया किंतु मेरे सद्गुरु ने मुझे हर बार बचा लिया। मेरा सतगुरु मेरा सच्चा मालिक है जो अपने इस दास की सदा रक्षा करता है और उसे अज्ञान व मोहमाया के अंधकार से सदा बचाए रखता है। इसीलिए मैं कहता हूं कि इस संसार में सतगुरु के समान हमारा सच्चा हितैषी कोई नहीं है।

विशेष

- सतगुरु की तुलना सच्चे हितैषी से की गई है।
- सद्गुरु के सदकै में अनुप्रास अलंकार है।
- मिली जुली भाषा का प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

1.2.2. विरह कौ अंग

टिप्पणी

(1) रात्यूँ रूँनी बिरहनी, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगटया बिरहा पुंज।।

संदर्भ– संत कबीर द्वारा रचित यह साखी कबीर ग्रन्थावली के 'विरह कौ अंग' शीर्षक के अंतर्गत संग्रहीत है।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने 'भक्तिपरक विरह' का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि प्रियतम (ब्रह्म) की याद में विरहिणी (आत्मा) रातभर रोती रही जैसे बिछड़े हुए पक्षी का जोड़ा रातभर कूजता रहता है। इस अहर्निश पीड़ा व रुदन से मन के भीतर 'विरह का पुंज' प्रकट हो गया जिससे मन व आत्मा प्रकाशित हो गए। कबीर कहते हैं कि जब तक हमारे भीतर ईश्वर के लिए प्रेममय पीड़ा नहीं जन्म लेगी तब तक हमारे भीतर ज्ञान का प्रकाश भी प्रकाशित नहीं होगा।

विशेष

- क्रौंच पक्षियों का जोड़ा प्रसिद्ध है जिसके बिछुड़ने का दृष्टांत कबीर ने इस दोहे में दिया है।
- 'रात्यूँ रूँनी बिरहनी ज्यूँ बंचौ कूँ कुँज' में उपमा अलंकार है।
- मिली जुली भाषा का प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(2) अंबर कुँजाँ कुरलियाँ, गरिज भरे सब ताल।
जिनि थे गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने सत्य से बिछड़ने की पीड़ा का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं अपनी प्रियतमा से दिन का बिछुड़ा सारस (क्रौंच) पक्षी रातभर कूज–कूजकर विरह में सब तालाबों को अपने आँसुओं से भर देता है। यह तो एक ही दिन की बात है, किंतु जो जीवात्मा अपने ब्रह्म से जन्म–जन्मांतरों से बिछुड़ा हुआ है। उसकी क्या दारुण दशा होगी? अर्थात् ब्रह्म से बिछड़ने की वेदना को शब्दों में नहीं बयाँ किया जा सकता। यह पीड़ा वही अनुभव कर सकता है, जो भावना–संवेदना व चेतना के स्तर पर जाग्रत हो।

विशेष

- क्रौंच पक्षी के जोड़े के विरह की तुलना आत्मा और परमात्मा के विरह से काव्यात्मक रूप में की गई है।
- अनुप्रास अलंकार के साथ–साथ 'कौण–हवाल' में अतिशयोक्ति तथा पूरे पद में व्यतिरेक अलंकार है।
- मिली जुली भाषा का प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

टिप्पणी

(3) चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने परमात्मा अर्थात स्वयं के अंतस से बिछड़ने की स्थिति पर विचार किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि अँधेरा होने पर जो चकवा–चकवी बिछड़ जाते हैं और रातभर एक दूसरे के विरह में विलाप करते रहते हैं, वे भी प्रातः होने पर एक–दूसरे से पुनः मिलन का आनंद प्राप्त करते हैं किंतु यह कितनी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि राम अर्थात् ब्रह्म से बिछड़े हुए जीवात्मा का मिलन न दिन में हो पाता है और न ही रात में। अर्थात् उनके दुर्भाग्य और विरह वेदना की कोई सीमा नहीं है।

विशेष

- 'चकवा–चकवी का रात में बिछड़ना' इस दृष्टांत का भारतीय प्राचीन कवियों ने प्रयोग किया है। कबीर ने भी इसे विरह से जोड़कर प्रस्तुत किया है।
- अनुप्रास अलंकार के साथ–साथ पूरे दोहे में 'व्यतिरेक अलंकार' है।
- मिली–जुली भाषा का प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(4) बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माँहि।
कबीर बिछुट्या राम सूँ नाँ, सुख धूप न छाँह।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने परमात्मा से बिछड़े जीवात्मा के दुःख का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि राम अर्थात् ब्रह्म से बिछुड़े हुए जीवात्मा के लिए इस संसार में किसी भी अवस्था में सुख नहीं है। न तो उसे दिन में सुख है, न रात में, उसे न जागते हुए कोई सुख है और न ही सोते हुए सपने में। धूप और छाँव दोनों ही उसके लिए बराबर दुखदायी हैं। अतः जीवात्मा ब्रह्म की याद में, विरह से अहर्निश तड़पता ही रहता है।

विशेष

- परमात्मा प्रियतम के लिए जीवात्मा की तड़प व उसकी विरह वेदना को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।
- अनुप्रास अलंकार है एवं मिली जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(5) बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ।।

संदर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने जीवात्मा की विरह जनित व्याकुलता का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि विरहिणी जीवात्मा परब्रह्म से मिलन के लिए इतनी व्याकुल है कि वह मार्ग के किनारे ही जा खड़ी हुई है। उधर से जितने भी पथिक (साधन) गुजरते हैं वह उन सबसे दौड़–दौड़कर मिलती है और पूछती है कि उसके प्रियतम (ब्रह्म) ने उसके लिए क्या संदेश भेजा है और वे कब आकर उससे मिलेंगे?

विशेष

- इस पद में जीवात्मा के अपने प्रियतम, अर्थात् परब्रह्म से मिलने की उत्कंठा को व्यक्त किया है।
- अनुप्रास व रूपकातिशयोक्ति अलंकार तथा मिली–जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

1.2.3 ग्यान–विरह कौ अंग

(1) दीपक पावक आंणिया, तेल भी आँण्या संग।
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग।।

संदर्भ– संत कबीर द्वारा रचित यह साखी 'कबीर ग्रन्थावली' के 'ज्ञान कौ अंग' शीर्षक के अंतर्गत संग्रहीत है।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने 'प्रेम व भक्ति' के महात्म्य का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि हमारा अंतस दीपक के समान है। जब उसमें ज्ञान की ज्योति भक्ति प्रेम के तेल में भीगकर प्रज्ज्वलित होती है तो हमारी वासनाएँ पतंगों की भांति उसमें जलकर स्वयं ही नष्ट होने लगती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम व भक्ति की साधना से आगे मनुष्य के काम, क्रोध व लोभ स्वयमेव नष्ट होने लगते हैं।

विशेष

- इस पद में ज्ञान, भक्ति व प्रेम के महत्व को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है।
- सांगरूपक तथा पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- मिली–जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(2) मार्‌या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि।
पड्‌या पुकारे ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में गुरुकृपा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि गुरु किस प्रकार हमारे 'अहं' का नाश करते हैं।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि सतगुरु ही बिना बाण के भी भाले की तरह हमारे अहं पर ऐसा प्रहार करते हैं कि वह किसी भी प्रकार बचने नहीं पाता। संसार रूपी वृक्ष के नीचे पड़ा वह अपने प्राण बचाने के लिए पुकारता रहता है किंतु आज नहीं तो कल उसके प्राणों का अंत होना अवश्यंभावी होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक

मनुष्य में 'अहं' भाव है और जब तक उसके 'कर्ता भाव' की समाप्ति नहीं हो पाती और तब तक वह ईश्वर के निकट नहीं पहुँच पाता। सतगुरु इसीलिए सबसे पहले हमारे 'अहं' भाव पर प्रहार करके उसे नष्ट करते हैं।

टिप्पणी

विशेष

- अहंभाव से मुक्ति को महत्वपूर्ण बताते हुए बताया गया है कि गुरु किस प्रकार अपने शिष्यों को इससे मुक्त करते हैं।
- पड्या पुकारे में अनुप्रास अलंकार है।
- मिली–जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(3) हिरदा भीतरि दौ बलै, धूंवां प्रगट न होइ।
जाके लागी सो लखे, के जिहि लाई सोइ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने विरह वेदना को दावाग्नि के समान बताया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि भक्त के हृदय में ब्रह्म से दूर होने की पीड़ा दावाग्नि की भाँति लगातार जल रही है। यह ऐसी आग है जिसमें से किसी भी प्रकार का धुँआ तक नहीं निकलता। अर्थात् यह अग्नि अत्यंत प्रचंड है जिसने धुँए को भी लील लिया है। धुँआ न निकलने से किसी अन्य को उस अग्नि के बारे में पता भी नहीं चल पा रहा। इस अग्नि को मात्र दो ही व्यक्ति जान पा रहे हैं; एक तो वह जिसके भीतर यह आग लगी हुई है यानि कि जीवात्मा तथा दूसरा व्यक्ति वह जिसने यह आग लगाई है अर्थात् ईश्वर या परब्रह्म।

विशेष

- विरहाग्नि की तुलना दावाग्नि से की गई है।
- मिली–जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(4) झल उठा झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने 'ज्ञान की महिमा' का बखान किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि जब ज्ञान की अग्नि प्रज्ज्वलित होती है तो उसमें हमारी सांसारिक बाधाएं जैसे– काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, वासनाएँ इत्यादि जलकर भस्म हो जाती हैं। ज्ञान का झूठा आडंबर भी खपड़े (पुराने घड़े) की भांति फूटकर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार सांसारिकता से मुक्त होकर मनुष्य सभी सांसारिक अवस्थाओं की राख पर जोगी की भांति आसन जमाकर बैठता है और राम के ध्यान में रम जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बिना वास्तविक ज्ञान के न तो मनुष्य सांसारिक मोहमाया से निकल सकता है और न ही ईश्वर की ओर प्रवृत्त हो सकता है।

टिप्पणी

विशेष

- ज्ञान की महिमा को अग्नि की भांति बताया गया है।
- केवल उपमान होने से रूपव्यातिशयोक्ति अलंकार है।
- मिली जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

(5) अगनि जू लागि नीर में, कंदू जलिया झारि।
उत्तर दक्षिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में कबीर ने 'ज्ञानाग्नि के प्रभाव' का वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि ज्ञान की प्रचंड अग्नि पानी में इस प्रकार लगी कि उसने पानी के नीचे जमे कीचड़ को जलाकर भस्म कर दिया। इसे देखकर उत्तर से लेकर दक्षिण तक के पंडित दंग रह गए कि ऐसा कैसे संभव हो सकता है? कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान उस प्रचंड अग्नि के समान है जो पानी अर्थात् सांसारिक मोहमाया जनित कीचड़ अर्थात् कुविचार, वासनाएँ व तमाम दुर्गुणों को जलाकर नष्ट करने की सामर्थ्य रखती है। यह अग्नि के गुण के विपरीत है किंतु ज्ञान रूपी अग्नि की क्षमता साधारण अग्नि के गुण से कहीं अधिक तीव्र है।

विशेष

- इस दोहे में उलटबांसी का सुंदर प्रयोग है।
- मिली जुली भाषा का सहज प्रयोग है।
- दोहा छंद है।

1.2.4 पद

(1) दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए तो राजा राम भरतार।।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरैं पाँहुनैं आये मैं जोबन मैं माती।।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार।।
सुर तेतीसूँ कौतिग आवे, मुनिवर सहस अठयासी।
कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी।।

संदर्भ– संत कबीर द्वारा रचित यह पद 'कबीर ग्रन्थावली' के 'सबद' शीर्षक के अंतर्गत संग्रहीत है।

प्रसंग– इस पद में कबीर ने 'आत्मा व परमात्मा' के मिलन का बहुत सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि हे दुलहिन की सखियों, स्वागत के रूप में मंगलाचार गाओ क्योंकि मेरे पति आज मेरे घर आए हैं और वे मुझे अब अपने साथ लिवा ले

टिप्पणी

जाएंगे। मैं अपना तन–मन उन्हें प्रसन्नता से समर्पित कर दूँगी और उन्हीं की होकर रहूँगी। उनके साथ बारात के रूप में पांचों तत्व उपस्थित हैं। आज जब वे आए हैं तो मेरा यौवन आनंद से भरा जा रहा है और मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं है। मैं अपने शरीर रूपी सरोवर के किनारे वेदी का निर्माण करूंगी जहाँ मैं उनके साथ फेरे लूँगी। साक्षात् ब्रह्म ही इस विवाह हेतु मंत्रोच्चारण करेंगे अर्थात् मेरा यह संबंध चिरकाल तक बना रहेगा। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। इस विवाह के साक्षी तैंतीस करोड़ देवी देवता और अठासी हजार ऋषि–मुनि होंगे। कबीर कहते हैं कि मेरा विवाह अविनाशी पुरुष से हुआ है जो काल से परे है।

आत्मा प्रेयसी है जबकि उसका प्रेमी ब्रह्म है। ब्रह्म से, ज्ञान से साक्षात्कार होना ही वास्तविक विवाह है। हमारा शरीर ही वेदी है जो पंच तत्वों से मिलकर बना है–पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश। हमारे शरीर के भीतर जो अमृत कुंड है वही विवाह की वेदिका है और ब्रह्मरंध्रों में पैदा होने वाला अनहद नाद ही वैवाहिक मंत्र का उच्चारण है।

विशेष

- विवाह का सांगरूपक जीव व उसके ब्रह्म से मिलन का स्वरूप अभिव्यक्त है।
- अनुप्रास अलंकार के अतिरिक्त धनि–धनि में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार तथा संपूर्ण पद में सांगरूपक अलंकार है।
- पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग है।
- संयोग श्रृंगार रस है तथा प्रसाद गुण पद में विद्यमान है।
- लक्षणा व व्यंजना शब्दशक्ति है तथा प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया पद है।

(2) बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये।।
मंगलाचार माँहि मन राखौं, राम रसाँइण रमना चाषौं।
मंदिर माँहि भयो उजियारा, ले सुतो अपना पीव पियारा।।
मैं रनि राती जे निधि पाई, हमहिं कहाँ यह तुमहि बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा सखी सुहाग मोहि दीन्हा।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में कबीर ने 'आत्मसिद्धि अर्थात् ईश्वर प्राप्ति के अपने अनुभव का आनंद व्यक्त करने का प्रयास किया है; साथ ही उस मार्ग का भी वर्णन किया है।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि मैंने अपने प्रभु को बहुत दिनों के बाद पाया है और इस क्षण के लिए बड़ी प्रतीक्षा की है। किंतु मेरा सौभाग्य देखो कि मुझे उनको पाने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ा; मैंने तो उन्हें घर बैठे–बैठे ही पा लिया। मैं बतौर प्रियतमा उनके नाम का रसायन चखती रही और मन में उनके स्वागत के गीत छुपाए रही कि जब वे आएंगे तब मैं उन्हीं मंगलाचार गीतों से उनका स्वागत करूंगी। किंतु अब वो मनोरम दिन आ गया और उनके आने भर से ही इस भवन में उजाला छा गया है। अब मैं अपने प्रियतम को साथ लेकर सुख से रह सकती हूँ।

कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान प्राप्ति से मेरे मन–मस्तिष्क आलोकित हो गए हैं और उनमें से कुविचार रूपी अंधकार दूर हो गया है। अब मैं अपने ब्रह्म के साथ

समाधि में आत्मलीन हो सकती हूँ। मैं धन्य हूँ; सौभाग्यशाली हूँ जो यह अपूर्व निधि (आत्मज्ञान) मैंने पाई।

वस्तुतः इसमें मेरी कोई श्रेष्ठता नहीं है, अपितु यह तो मेरे प्रभु की ही महत्ता है जिन्होंने मुझे सुहाग रूपी प्रेम मिलन प्रदान किया। इसके लिए मैंने तो कुछ भी नहीं किया।

टिप्पणी

विशेष

- कबीर ने इस पद में आत्मसिद्धि की सरलता व उसके आनंद को सहज रूप में व्यक्त किया है। इसके लिए उन्होंने विवाह का ऐसा रूपक चुना है जिसे जनसाधारण बड़ी सरलता से समझ सकते हैं।
- अनुप्रास अलंकार के साथ–साथ उपमेय के अभाव में उपमान के उल्लेख होने से पूरे पद में 'रूपकातिशयोक्ति अलंकार' है।
- शृंगार रस से परिपूर्ण छंद है जिसकी भाषा अवधी मिश्रित है।

(3) अब तोहि जान न देहुँ राम पियारे, ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे।।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये।।
चरननि लागि करौं बरियायी, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई।
इत मन मंदिर रहौ नित चौषै, कहै कबीर करहु मति घोषैं।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कबीर ने इस पद में अपनी आत्मसिद्धि का अपूर्व अनुभव वर्णित करते हुए बताया है कि अब वे इसी चिर आनंद में सदा स्थित रहना चाहते हैं।

व्याख्या– कबीर कहते हैं कि बहुत प्रतीक्षा करने और विरह की अनंत पीड़ा सहने के बाद मुझे राम मिले हैं। अर्थात् बहुत प्रयास के बाद मुझे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है। इसलिए हे प्रभु, मैं तुम्हारी प्रियतमा अब किसी भी प्रकार से तुमको स्वयं से दूर न जाने दूँगी। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी कि मेरे प्रभु के लिए मुझे दर–दर नहीं भटकना पड़ा अपितु वे घर बैठे ही मेरे पास चले आए। अब मैंने हठपूर्वक उनके चरणों को पकड़ लिया है कि उन्हें अपने से दूर नहीं जाने दूँगी। उन्हें अपने प्रेमपाश में सदा उलझाए रखूँगी।

कहने का भाव यह है कि मैं सदा ज्ञान व समाधि में रत रहूँगा और उस मार्ग या अवस्था से अब स्वयं को कभी नहीं भटकने दूँगा। प्रेम–प्रीति में उलझाकर रखने से अभिप्राय है कि भगवान प्रेम के भूखे हैं उन्हें अपने भक्त से केवल प्रेम की ही अपेक्षा रहती है।

कबीर स्वयं से कहते हैं कि अब तुम अपने ही मन में; अपने भीतर समाधिस्थ होकर रहो और बाहरी धोखों में किसी भी प्रकार मत पड़ो।

विशेष

- कबीर का आशय है कि कोई भी अवस्था स्थायी नहीं होती, चाहे वह आत्मसिद्धि ही क्यों न हो। हमें उसे चिरधारण करने के लिए सजग रहना पड़ता है।
- अनुप्रास अलंकार तथा मन मंदिर में रूपक अलंकार है।
- शृंगार रस से परिपूर्ण छंद अवधी मिश्रित भाषा में लिखा गया है।

टिप्पणी

(4) मन के मोहन बिठुला, यह मन लागौ तोहि रे।
चरन कँवल मन मानियाँ, और न भावै मोहि रे।
षट जल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासैं आइ रे।।
अष्ट कवँल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइए, नहीं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का बीच रे।
तहाँ दुवारस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे।
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे।।
त्रिवेणी मनाई न्हवाइए सुरति मिलै जो हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहै साथि रे।।
गगन गरिज मघ जोइये, तहाँ दीसै तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब संत रे।।
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे।।
गुर गमि तैं पाइए झषि सरे जिनि सोइ रे।
तहीं कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में कबीर ने हमारे शरीर के भीतर स्थित अशरीरी ब्रह्म का रोचक वर्णन किया है।

व्याख्या– मेरा मन उसी मोहन में लगातार लगा रहता है जो मेरे मन के भीतर ही सदा विद्यमान है अर्थात् उसे बाहर कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। उस ब्रह्म के कमल रूपी चरणों के अतिरिक्त मेरा मन अन्यत्र कहीं नहीं लग सकता। छः दलों वाले कमल पर विराजने वाले प्रभु से साक्षात्कार करना ही अब मेरा ध्येय है। यह शरीर जो दस द्वार का पिंजड़ा भी कहा जाता है, इसके भीतर ही वह समाधि लग सकती है कि जहाँ काल भी अपनी पहुँच नहीं दिखा सकता अर्थात् ब्रह्म समाधि कालातीत है।

आठ दलों वाले कमल के भीतर (जो हमारे मन में हैं) ही श्रीरंग अर्थात् ब्रह्मा रूपी भ्रमर गुंजार करता है; क्रीड़ा करता है। लेकिन उसे पाने के लिए सतगुरु का साहचर्य आवश्यक है। सतगुरु न मिलने पर तो निश्चित ही यह जीवन व्यर्थ चला जाएगा। केले के पुष्प के भीतर जहां दस अंगुल भर का रिक्त स्थान होता है तू वहाँ पर द्वार को खोज ले अन्यथा तेरा यह जीवन व्यर्थ चला जाएगा। यदि तू उस ब्रह्म को खोज पाया तो जन्म–मरण के इस कुचक्र से हमेशा के लिए मुक्ति पा जाएगा।

टेढ़ी नली अर्थात् कुंडलिनी के भीतर जो पश्चिम दिशा का मार्ग है वहाँ भँवर गुफा अर्थात् आज्ञा चक्र का घाट है। जब कुंडलिनी शक्ति पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाती है तब ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति आ जाती है। त्रिवेणी अर्थात् इडा, पिंगला और सुषुम्ना

आदि का सामंजस्य ही हमें उस मार्ग पर ले जाता है। वहाँ पहुँचने पर मार्ग का अंत हो जाता है और हम ब्रह्म के करीब जा पहुँचते हैं।

टिप्पणी

गगन की गर्जना होने पर हमारी चेतना पूरी तरह जाग्रत हो जाती है और हमें अनंत तारों से भरा गगन (अपार ब्रह्म) दिखने लगता है। तब ज्ञान की बिजली बार–बार प्रकाशित होती है और उस ब्रह्मरंध्र से गिरने वाली अमृत बूँदों से योगी परमानंद में भीगते हैं।

जब सोलह पंखुड़ियों वाले कमल तक हमारी गति पहुँच जाएगी तभी हमें परमानंद स्वरूप कृष्ण अर्थात् ब्रह्म का साक्षात्कार होगा। उसके बाद ही मनुष्य सभी सांसारिक दुखों व पीड़ाओं से मुक्ति पा जाएगा। इस मार्ग पर बिना गुरु के सहयोग के नहीं चला जा सकता। कबीर कहते हैं कि वे इसी परमानंद स्थिति में रमण करते हैं और उसी समाधि में आनंदपूर्वक स्थित रहते हैं।

विशेष

- अनुप्रास अलंकार के साथ–साथ चरण–कँवल में रूपक तथा सनकादिक मिलिहै, साथि रे में सहोक्ति अलंकार है। योग संबंधी शब्दों को संकेत से समझाए जाने के कारण अन्योक्ति अलंकार है।
- यह पद गहन गूढ़ात्मक है तथा इसमें कुंडलिनी समेत योग की गहन स्थितियों का वर्णन किया गया है।
- कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है, जिसे छंदोबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(5) गोकल नाइक बीठुला, मेरी मन लागौ तोहि रे।
बहुतक दिन बिछुरै भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे।।
करम कोटि कौ ग्रेह रच्यो रे, नेह कये की आस रे।
आपहिं आप बँधाइया, द्वै लोचन मरहिं पियास रे।।
आषा पर संमि चीन्हियें, दीसैं सरब सँमान।
इहि पद नरहरि भेटिये, तूँ छाड़ि कपट अभिमान रे।।
नाँ कलहूँ चलि जाइये नाँ सिर लीजै भारे।
रसनाँ रसहिं बिचारिये, सारँग श्रीरँग धार रे।।
साधै सिधि ऐसी पाइये, किंवा होइ महोइ।
जे दिठ ग्यान न ऊपजै, तो आहुटि रहै जिनि कोइ रे।।
एक जुगति एकै मिलैं किंबा जोग कि भोग।
इन दून्यूँ फल पाइये, राम नाँम सिधि जोग रे।
प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अमृत अरिषै चंद रे।।
आपही आप बिचारिये, तब कंता होइ अनंद रे।।
तुम्ह जिनि जानौं गीत है, यहू निज ब्रह्म विचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे।
चरम कँवल चित लाइये, राम नाम गुन गाइ।।
कहै कबीर मंसा नहीं, भगति मुकति गीत पाइ रे।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

टिप्पणी

प्रसंग– इस पद में 'आत्मा व परमात्मा' के परस्पर मधुर संबंध को अभिव्यंजित किया गया है।

व्याख्या– कबीर भक्त के रूप में पुकारते हुए कहते हैं कि ओ गोकुल के नायक मेरे विट्ठल प्रभु (श्रीकृष्ण) मेरा मन तो अहर्निश तुम्हारे ही ध्यान में लगा रहता है। इस जीव को तुम ब्रह्म से बिछुड़े अब कितने दिन हो चुके हैं और तुम्हारी याद में यह मन व्याकुल रहता है। मैं इस संसार के मायाजाल के करोड़ों फंदों में फंसा भटकता रहता हूँ और एक तुम्हारी ही आशा मेरा सहारा है।

कबीर कहते हैं कि जब तक हमारे भीतर से अपने और पराए का भेद पूरी तरह नहीं मिट जाता तब तक हमारे भीतर समदर्शिता नहीं आएगी, अर्थात् हम तब तक सबको समान रूप से नहीं देख पाएंगे। इसी प्रकार, सब कपट व अभिमान छोड़कर ही ईश्वर की प्राप्ति होगी। इसके अतिरिक्त न तो किसी तीर्थ आदि पर जाने का लाभ है और न ही पुस्तकीय ग्रंथीय ज्ञान से अपने सिर को भारी करने का। क्योंकि ऐसा करने भर से हमें ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके विपरीत यदि हम घर बैठकर सारंग श्रीरंगधार (सारंग धनुष को धारण करने वाले राम) ब्रह्म का नाम सच्चे मन से स्मरण करें तो ईश्वर की प्राप्ति संभव है।

यूं तो साधना करने से भी ईश्वर सिद्धि प्राप्त हो जाती है किंतु इसकी कोई निश्चितता नहीं है अर्थात् ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी। यह निश्चित ही है कि एक मार्ग पर चलकर एक ही प्राप्ति हो सकती है फिर चाहे वह मार्ग योग का हो अथवा भोग का। किंतु राम का नाम सर्वकल्याणकारी है। राम के नाम में ही सब समाया हुआ है। मेरा यह पद कोई आम मनोरंजन करने वाला गीत नहीं है बल्कि इसमें ब्रह्म का विचार समाया हुआ है। इसमें आत्मा व परमात्मा को समझने का साधन समाहित है जो केवल कहकर समझाया गया है।

हमें निःसंदेह अपना ध्यान श्रीराम के कमल चरणों में अर्थात् ब्रह्म में लगाना चाहिए। ऐसा इसलिए कि ऐसा करते ही भक्ति, योग व मुक्ति सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

विशेष

- इस पद में कबीर ने ईश्वर सिद्धि का मार्ग सहज साधना को बतलाया है। इसमें उनके आध्यात्म दर्शन का सार समाहित है।
- कबीर ने इस पद में अनेक स्थानों पर ईश्वर के सगुण रूपों (कृष्ण, राम) की चर्चा की है किंतु इससे व सगुणोपासक नहीं हो जाते। वे साधारण जन को अपनी बात समझाने के लिए ही बतौर उदाहरण ऐसा कहते हैं। तभी वे आगे चलकर अन्यत्र स्पष्ट करते हैं कि–

  दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना
  राम नाम को मर्म न जाना।

- अनुप्रास अलंकार के साथ–साथ, 'कदम–कोटि', 'चरन–कंवल' में रूपक अलंकार है।
- पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग है।

1.3 सूरदास

टिप्पणी

उद्धव संदेश

(1) ऊधौ तुम यह निश्चय जानौ।
मन, बच, क्रम, मैं तुमहिं पठावत, ब्रिज कौं तुरत पलानौ।।
पूरन ब्रह्म सकल अविनासी, ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख न रूप जाति कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता।
यह मत दै गोपिनि कौं आवहु, बिरह नदी मैं भासत।
सूर तुरत तुम जाइ कहौ यह, ब्रह्म बिना नहि आसत।।

संदर्भ– उपरोक्त पद भक्तिकाल के प्रसिद्ध कृष्णभक्त संत कवि सूरदास जी द्वारा रचित है जिसे उनके ग्रंथ 'भ्रमरगीतसार' से लिया गया है।

प्रसंग– श्रीकृष्ण अपने प्रिय मित्र उद्धव को अपने संदेशवाहक के रूप में गोपियों के पास ब्रज भेजते हुए अपना संदेश दे रहे हैं।

व्याख्या– श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि हे उद्धव तुम इस बात को निश्चित रूप से जान–समझ लो कि मैं मन, वचन और कर्म से तुमको ब्रज भेज रहा हूँ। अतः तुम तुरंत ही ब्रज की ओर प्रस्थान कर जाओ। तुम पूर्ण व सकल अविनाशी ब्रह्म के पूरे ज्ञाता हो। ईश्वर के उस निर्गुण, निराकार रूप का तुम्हें वास्तविक ज्ञान हो गया है जिसका न कोई रंग–रूप है, न आकार है, न जाति है, न कुल है और न ही जिसे कोई जन्म देने वाला है अर्थात् जो जन्म व मृत्यु के परे है। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि जाकर ब्रज की गोपियों को यह तत्व ज्ञान प्रदान करो ताकि वे विरह की नदी में डूबने से बच सकें। तुम जाकर उन्हें समझाओ कि इस संसार में ब्रह्म को जाने बिना मुक्ति संभव नहीं है, अर्थात् वे योग व ब्रह्म की ओर अपना ध्यान लगाएँ।

विशेष

- श्रीकृष्ण उद्धव को ब्रज जाने का संदेश दे रहे हैं, किंतु इस पद में निर्गुण ब्रह्म के बारे में व्यंग्य (उद्धव के ज्ञान के अहंकार को दूर करने के प्रयोजन से) अंतर्निहित है जो भ्रमरगीतसार में आगे जाकर और स्पष्ट होता है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया पद है।
- 'विरह नदी' में रूपक अलंकार है।

(2) ऊधौ मन अभिमान बढ़ायो।
जदुपति जोग जानि जिय साँचौ, नैन अकास चढ़ायौ।।
नारिनि पै मोकौं पठवत हैं, कहत सिखावन जोग।
मन ही मन अप करत प्रसंसा, यह मिथ्या सुख–भोग।।
आयसु मानि लियौ सिर ऊपर, प्रभु आज्ञा परमान।
सूरदास प्रभु गोकुल पठवत, मैं क्यौं हों कि आन।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– श्रीकृष्ण जब उद्धव से ब्रज जाकर गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने का निवेदन करते हैं तो उद्धव का अभिमान गहरा हो उठता है।

व्याख्या– जब श्रीकृष्ण उद्धव के निर्गुण ब्रह्म व तत्व ज्ञान संबंधी ज्ञान की प्रशंसा करते हुए उन्हें मोहग्रस्त गोपियों के उद्धार के लिए ब्रज जाने का अनुरोध करते हैं तो उद्धव के मन में ज्ञान का अभिमान और अधिक बढ़ जाता है। उद्धव को लगता है कि श्रीकृष्ण उनके 'योग' से (निर्गुण ब्रह्म व तत्व ज्ञान से) प्रभावित हो गए हैं और उसे उन्होंने सच्चा मान लिया है। यह जानकर उद्धव की निगाहें आसमान में चढ़ गईं अर्थात् वे गर्व से भर उठे। उन्होंने सोचा कि अब श्रीकृष्ण भी मुझसे (मेरे ज्ञान से) प्रभावित हो गए हैं जो वे गोपियों को ज्ञान प्रदान करने तथा उनका उद्धार करने के लिए ब्रज भेज रहे हैं। निश्चय ही वे मन ही मन मेरी प्रशंसा करते हुए कहते होंगे कि सभी सांसारिक सुख–भोग मिथ्या हैं।

ऐसा सोचकर उद्धव ने श्रीकृष्ण का आशीर्वाद लेकर जाने की आज्ञा शिरोधार्य कर ली। वे कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण स्वयं ही मुझे भेज रहे हैं तब तो इसमें संशय की कोई बात ही नहीं। अर्थात् मुझे यथाशीघ्र जाना ही चाहिए।

विशेष

- उद्धव के ज्ञान के अभिमान को गहराई से प्रस्तुत किया गया है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया पद है।
- 'नयन अकास चढ़ायो' में मुहावरे का प्रचलित प्रयोग है।

(3) स्याम कर पत्री लिखी बनाई।
नंद बाबा सौं बिनै, कर जोरि जसुदा माई।।
गोप ग्वाल सखान कों, हिल–मिलन कंठ लगाइ।
और ब्रज–नर नारि जे हैं, तिनहिं प्रीति जनाइ।।
गोपिकनि लिखि जोग पठयो, भाव जानि न जाइ।
सूर प्रभु मन और यह कहि, प्रेम लेत दिढ़ाई।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– श्रीकृष्ण ने ब्रज भिजवाने के लिए पत्र लिखकर तैयार कर लिया है और उसे उद्धव को सौंप रहे हैं।

व्याख्या– श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से पत्र लिखकर तैयार कर लिया है। उन्होंने नंद बाबा को आदर व विनयपूर्वक प्रणाम लिखा तथा माँ यशोदा को हाथ जोड़कर नमन किया। ब्रज के गोप–ग्वालों को प्रेम से भरकर गले लगाने का संदेश लिखा और ब्रज के सभी स्त्री–पुरुषों के लिए अपना प्रेम भेजा। किंतु गोपियों के लिए उन्होंने योग अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की आराधना करने का संदेश लिखा। इसके पीछे का छिपा हुआ मर्म तो श्रीकृष्ण ही जानते हैं जिन्हें इस बात का पूरा ज्ञान है कि गोपियों का प्रेम कितना सच्चा व दृढ़ है। वह इस प्रकार के किसी भी ज्ञान से हिलने वाला नहीं है। अर्थात् श्रीकृष्ण जानते हैं कि उद्धव किसी भी प्रकार से गोपियों को उनके प्रेम से नहीं डिगा पाएँगे।

विशेष

- श्रीकृष्ण की पाती (चिट्ठी) का रोचक वर्णन है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया पद है।

टिप्पणी

(4) ऊधौ इतनी कहियौ जाइ।
हम आवैं गे दोऊ भैया, मैया जानि अकुलाइ।।
याकौ बिलग बहुत हम मान्यो, जो कहि पठयौ धाइ।
वह गुन हमकौं कहा बिसरिहै, बड़े किए पय प्याइ।।
अरू जब मिल्यौ नंद बाबा सौं तब कहियौ समुझाइ।
तौ लौं दुखी होन नहिं पावैं, धौरि धूमरि गाइ।।
जद्यपि इहां अनेक भाँति सुख, तदपि रह्यौ नहिं जाइ।
सूरदास देखौं ब्रजवासिनि, तबहीं हियौ सिराइ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– श्रीकृष्ण उद्धव के ब्रज जाने से पहले उन्हें पत्र देते हुए अपना मौखिक संदेश दे रहे हैं।

व्याख्या– श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि ब्रज जाकर माँ से कहना कि वे धैर्य रखें और अपना मन व्याकुल न करें; हम दोनों भाई जल्दी ही ब्रज आएंगे। उनसे यह भी कहना कि उन्होंने मुझे अपने से इतना अलग कैसे मान लिया कि मथुरा से एक बार ही संदेशा आने पर ब्रज से यहाँ भिजवा दिया। माँ से कहना कि उनका वह प्यारा स्वरूप कैसे भूला जा सकता है जिसके तहत उन्होंने कृष्ण को अपना दूध पिलाकर और पाल–पोसकर बड़ा किया। हे उद्धव, जब तुम नंद बाबा से मिलना तो उन्हें भी सांत्वना देते हुए कहना कि मेरी प्यारी चितकबरी गैया का खूब ख्याल रखें और मेरी अनुपस्थिति में उसे बिल्कुल भी दुखी न होने दें। उनसे कहना कि हालांकि यहाँ मथुरा में हर प्रकार का सुख, आनंद और वैभव है किंतु तब भी ब्रज की इतनी याद आती है कि यहाँ तनिक भी मन नहीं लगता। ऐसा लगता है कि ब्रजवासियों को देखकर ही अब यह मन शांत होगा।

विशेष

- श्रीकृष्ण की ब्रज स्मृतियों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस पद में किया गया है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया पद है।
- पद में उलाहना को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

(5) नीकैं रहियों जसुमति मैया।
आवैंगे दिन चारि पाँच मैं, हम हलधर दोउ भैया।।
नोई, बेंत, बिषान, बाँसुरी द्वार अबेर सबेरैं।
लै जनि जाइ चुराइ राधिका, कछुक खिलौना मेरैं।।
जा दिन तैं हम तुमतै बिछुरे, कोउ न कहत कन्हैया।
उठि न सबेरे कियौ कलेऊ, साँझ न चीषी घैया।।
कहिये कहा नन्द बाबा सौं, जितौ निठुर मन कीन्हौ।
सूरदास पहुँचाइ मधुपुरी, फेरि न सोधौ लीन्हौ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां कृष्ण ने अपने बचपन की स्मृतियों को साकार किया है।

टिप्पणी

व्याख्या– श्रीकृष्ण उद्धव को खत देते हुए तथा अपना संदेश सुनाते हुए कहते हैं कि हे उद्धव! यशोदा माँ से कहना कि वे अपना ध्यान रखें और अच्छे से रहें। चार–पांच दिन में मैं और भैया बलराम व्रज आएंगे। माता से यह भी कहना कि वह मेरी वंशी को संभालकर रखें क्योंकि वह मुझे अत्यंत ही प्रिय है। कहीं ऐसा न हो कि देर–सबेर मौका पाकर राधिका उसे चुरा ले जाए। माँ से कहना कि जब से हम तुमसे बिछड़कर दूर हो गए हैं तब से किसी ने हमें कन्हैया कहकर नहीं पुकारा। ब्रज में माँ जिस प्रकार सुबह उठते ही कलेवा (नाश्ता) कराती थी, वह यहाँ मथुरा में कभी प्राप्त नहीं हुआ और न ही शाम के समय गाय के थन से छूटती दूध की मीठी कच्ची धार ही चखने को मिली। नंदबाबा से जाकर कहना कि हमारे प्रति उन्होंने इतना कठोर हृदय क्यों कर लिया है कि जब से वे हमें मथुरा छोड़कर गए हैं तब से लौटकर एक बार हाल भी नहीं लिया कि, यहां हम कैसे हैं?

विशेष

- इस पद में श्रीकृष्ण की बाल्यकालीन स्मृतियों को बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया गया है।
- वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है।
- 'अवेर–सबेर' मुहावरे का सुंदर प्रयोग है।
- व्रज भाषा का माधुर्यपूर्ण प्रयोग है।

(6) तौ तू उड़ि न जाइ रे काग।
जौ गुपाल गोकुल कौं आवैं, तौ ह्वै है बड़भाग।।
दधि ओदन भरि दोनों दैहौं अरू अंचल की पाग।
मिलि हौं हृदय सिराइ स्रवन सुनि, मेटि बिरह के दाग।।
जैसें मातु पिता नहिं जानत, अंतर कौ अनुराग।
सूरदास प्रभु करैं कृपा, जब तैं देह सुहाग।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– ब्रज में काले कौवों को छत पर बैठा देखकर गोपी सगुन मानकर सोच रही है कि कहीं कृष्ण तो नहीं आने वाले। यह सोचकर उसका मन पुलकित हो रहा है।

व्याख्या– छत पर कौवे को बैठा देखकर गोपी प्रसन्न होकर मन ही मन सोच रही है कि हे काग! काश कि तुम्हारा यहाँ बैठना शुभ ही हो। जैसा कि होता ही है कि छत पर कौवे के बोलने से घर में अतिथि आते हैं। आज सचमुच ही कृष्ण यहाँ आ पहुँचे। यदि वे आज गोकुल आ पधारेंगे तो यह मेरे लिए बड़े ही सौभाग्य की बात होगी। कृष्ण आएंगे तो मैं उन्हें दूध, दही और मक्खन से दोने भर–भरकर खाने को दूँगी और अपने अंचल को पगड़ी की तरह उनके सिर पर धारण करूंगी। उनकी मोहक वाणी सुनकर ही अब हृदय शांत होगा और दिल पर लगे विरह के दाग मिट सकेंगे। हमारे इस अनुराग व प्रेम को आखिर माता–पिता भला किस प्रकार जान सकते हैं, यह प्रेम तो बहुत भीतर समाया हुआ है और बाहर से इसे देख व समझ पाना बहुत कठिन होता है।

सूरदास कहते हैं कि अब प्रभु श्रीकृष्ण की कृपा से ही यह देह सुहाग हो सकेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि गोपी का जीवन पूरी तरह कृष्ण प्रेम को समर्पित है।

विशेष

टिप्पणी

- लोक मान्यता के अनुसार घर की मुंडेर पर कौवे का बैठना अतिथि आगमन का सूचक है।
- कृष्ण के आने का शुभ सगुन किस तरह गोपियों को रोमांचित कर देता है, इसका बड़ा भावुक चित्रण सूरदास ने इस पत्र में किया है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया छंद है।

(7) है कोउ वैसी ही अनुहारि।
मधुबन तन तैं आवत सखि री, देखौ नैन निहारि।।
वैसोइ मुकुट मनोहर कुँडल, पीत बसन रुचिकारि।
वैसेहिं बात कहत सारथि सौं ब्रज तन बाहं पसारि।।
केतिक बीच कियौ हरि अंतर, मनु बीते जुग चारि।
सूर सकल आतुर अकुलानी, जैसें मीन बिनु बारि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गोपियाँ दूर से रथ पर आते हुए उद्धव को कृष्ण समझ लेती हैं और उत्साह में बढ़कर एक दूसरे से पूछने–बतियाने लगती हैं।

व्याख्या– एक सखी दूसरी सखी से कहती है (दूर से आते उद्धव को कृष्ण समझकर) कि हे सखी! देखो कोई वैसी ही आकृति व रंग रूप का चला आ रहा है। इसे ध्यानपूर्वक देखो क्योंकि ये जो भी है, मथुरा से इधर ही चला आ रहा है अर्थात् अवश्य ही वे श्रीकृष्ण हो सकते हैं।

उसके मस्तक पर वैसा ही सुंदर मुकुट है कानों में सुंदर कुंडल हैं तथा अपने शरीर पर पीतांबर, यानि कि पीला वस्त्र धारण किया हुआ है। वह अपने सारथी को ब्रज की ओर संकेत करता हुआ कुछ कह रहा है। संभव है कि इधर आने का मार्ग बता रहा हो।

हे सखी, यह व्यक्ति कुछ–कुछ परिचित सा जान पड़ता है और इसे देखकर लगता है कि देखने के न जाने कितने युग बीत गए हैं। अर्थात् कृष्ण से बिछुड़े बहुत दिन बीत जाने के कारण गोपियों को पहचान में दिक्कत हो रही है।

सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण के प्रेम विरह में गोपियों की दशा बिना पानी की मछलियों जैसी ही है।

विशेष

- गोपियों की विरह वेदना को खूबसूरती से प्रस्तुत किया गया है।
- भ्रांतिमान व स्मरण अलंकार का सुंदर प्रयोग
- 'मनु बीते जुग चारि' में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा 'जैसे मीन बिनु बारि' में दृष्टांत अलंकार है।
- ब्रजभाषा का माधुर्यपूर्ण प्रयोग है।

टिप्पणी

(8) कोई माई आवत है तनु स्याम।
वैसे पट बैसिय रथ बैठनि, वैसीयै उर दाम।।
जो जैसें तैसें उठि धाई, छाँड़ि सकल गृह काम।
पुलक रोम गदगद तेहीं छन, सोभित अँग अभिराम।।
इतने बीच आई गए ऊधौ, रहीं ठगी सब बाम।
सूरदास प्रभु ह्यां कत आवैं, बँधे कुबिजा–रस–दाम।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– उद्धव को आते देखकर, उन्हें कृष्ण समझने वाली गोपियों का जब भ्रम टूटता है तब उनकी स्थिति में जो बदलाव आता है; उसका चित्रण यहां किया गया है।

व्याख्या– एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि हे सखी! श्याम वर्ण वाला कोई व्यक्ति इधर ही चला आ रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो कृष्ण ही चले आ रहे हों। इसका पीतांबर भी वैसा ही है और रथ पर बैठने का तरीका भी वैसा ही है जैसा कृष्ण का। उसकी छाती पर सुंदर माला बैजयंती की माला जैसी ही सुशोभित हो रही है।

गोपियाँ उस व्यक्ति को देखकर जहाँ और जैसी भी अवस्था में थीं वैसी ही उठकर दौड पड़ीं। उद्धव के शरीर को कृष्ण का जानकर उनका रोम–रोम जैसे पुलकित हो उठा। इसी सोच–विचार के बीच ही उद्धव का रथ काफी पास आ पहुँचा और वे उतरकर गोपियों के नजदीक आ पहुँचे।

यह जानकर कि यह तो कृष्ण नहीं बल्कि कोई और है, गोपियाँ निरुत्साह से जैसे ठगी–सी रह गईं। सूरदास कहते हैं कि तब गोपियाँ मन में व्यंग्यपूर्वक विचार करने लगीं कि हाँ, भला कृष्ण कुब्जा के प्रेम–सौंदर्य को छोड़कर यहाँ क्यों आएंगे?

विशेष

- इस पद में गोपियों की विरह दशा का मार्मिक चित्रण है।
- ब्रजभाषा का माधुर्यपूर्ण प्रयोग है।
- भ्रांतिमान अलंकार है।

(9) देन आए ऊधौ मत नीकौ।
आवहु री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस कौ टीकौ।।
तजन कहत अंबर आभूषन, गेह नेह सुत ही कौ।
अंग भस्म करि सीस जटा धरि, सिखवत निरगुन फीकौ।।
मेरे जान यहै जुवतिनि कौ, देत फिरत दुख पी कौ।
ता सराप तैं भयौ स्याम तन, तउ न कहत डर जी कौ।।
जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली बुरी कौ।
जैसे सूर व्याल रस चाखैं, मुख नहिं होत अमी कौ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां उद्धव के ब्रह्म ज्ञान को सुनकर गोपियां उसका व्यंग्यात्मक उपहास कर रही हैं।

टिप्पणी

व्याख्या– उद्धव के शुष्क व नीरस ब्रह्म ज्ञान का उपहास उड़ाते हुए ब्रज की गोपियाँ एक दूसरे से कह रही हैं कि प्रिय सखियों! आओ देखो ये उद्धव मथुरा से कितने सुंदर मत (ब्रह्मज्ञान) का ज्ञान देने के लिए ब्रज आए हैं। यह बड़ा सुनहरा मौका है। अतः तुम सब भी इसका लाभ उठाकर यश कमाओ। ये महानुभव हम सभी को वस्त्र, आभूषण सहित घर व प्रेम–स्नेह आदि सब कुछ त्याग देने का संदेश दे रहे हैं और कह रहे हैं कि अपने पूरे शरीर पर भस्म लगाकर जटाएँ धारण कर ली जाएँ।

इनका यह निर्गुण ब्रह्म तो कितना नीरस है। इनकी ऐसी बातों से हम विरही प्रेमियों के मन को अत्यंत पीड़ा पहुँच रही है। इनके उपदेश बाणों की तरह चुभते हैं और इन्हीं विषैले बाणों का परिणाम है कि इनका तन इतना काला हो गया है। किंतु तब भी इन्हें भय नहीं लगता और यह अपने बाणों से दूसरों को आहत करते रहने की प्रवृत्ति से बाज नहीं आते।

सखी! सबका अपना–अपना जन्मजात स्वभाव होता है और वह वैसा ही रहता है। जिस प्रकार सर्प के काट लेने से कोई भी व्यक्ति तत्काल मर जाता है किंतु इससे सर्प के मुख में अमृत की बूँदें नहीं गिर जातीं। अर्थात् सर्प को कोई लाभ नहीं होता तब भी सर्प दूसरों को डस लेने की अपनी प्रवृत्ति से बाज नहीं आता। उसी प्रकार उद्धव भी अपनी आदत से मजबूर होकर हमारे मन को व्यथित किए जा रहे हैं। यह तो इनके अपने स्वभाव की बात है। अब इसमें इनका क्या दोष माना जाए?

विशेष

- इस पद में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग है। गोपियों द्वारा उद्धव के ज्ञान पर प्रहार किया गया है।
- प्रथम व द्वितीय पंक्ति में विपरीत लक्षणा का प्रयोग हुआ है, छठी पंक्ति में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार तथा अंतिम पंक्ति में सर्प के उदाहरण से दृष्टांग अलंकार का सुंदर प्रयोग किया गया है।
- 'लेहु न जस को टीको' में मुहावरे का प्रयोग है।

(10) प्रकृति जो जाकैं अंग परी।
स्वान पूँछ कोउ कोटिक लागै, सूधी कहूँ न करी।।
जैसें काग भच्छ नहिं छाँड़े, जनमत जौन घरी।
धोए रंग जात नहिं कैसेहुँ, क्यौं कारी कमरी।।
ज्यौं अहि डसत उदर नहिं पूरत, ऐसी धरनिं धरी।
सूर होइ सो होइ सोच नहिँ, तैसेइ एऊ री।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां गोपियां विविध प्रकार के उदाहरण देकर 'स्वभाव न बदलने' की यथार्थता बता रही है ओर उद्धव के तत्व ज्ञान को उनका स्वभावगत दोष सिद्ध कर रही हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव के प्रति व्यंग्यपूर्ण कठोर वचन कहते हुए बता रही हैं कि हे सखी, ये तो स्वभाव–स्वभाव की बात है। जिसका जो स्वभाव एक बार बन जाता है फिर वह बदलता नहीं है। जैसे कुत्ते की पूँछ स्वभाव व प्रकृति से टेढ़ी होती है और उसे सीधा करने का कितना भी प्रयास क्यों न कर लिया जाए वह सीधी हो ही नहीं पाती। कौआ

टिप्पणी

जन्म से ही अभक्ष्य (न खाने योग्य वस्तुएँ) खाना आरंभ कर देता और आगे चलकर वह अपनी यह प्रवृत्ति कभी नहीं त्यागता। उसे कितना अच्छा–अच्छा भोजन कराया जाए, किंतु वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। काले कंबल को चाहे कितना ही धो डालो उसके काले रंग में कोई कमी नहीं आती जबकि अन्य रंग वस्त्रों से उतर जाते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि बुरे स्वभाव की तुलना में अच्छा स्वभाव जल्दी बदल जाता है। जिस प्रकार दूसरों को डँस लेने से सर्प का पेट नहीं भरता, अर्थात् उसको स्वयं कोई लाभ नहीं पहुँचता तब भी वह अपनी इस कु–प्रवृत्ति का त्याग नहीं करता, उसी प्रकार ये उद्धव भी अपने स्वभाव के मारे हैं। ये भी अपने बुरे स्वभाव को नहीं बदलने वाले। इनकी निर्गुण कथा बंद नहीं होने वाली और ये हमारे मन को ऐसे ही घायल करते रहेंगे।

विशेष

- इस पद में उद्धव की अत्यंत कटु आलोचना गोपियों द्वारा की गई है। इससे अप्रत्यक्ष रूप से गोपियों का कृष्ण के प्रति अटूट व अनन्य प्रेम उद्घाटित होता है।
- दूसरी पंक्ति में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा पूरे पद में दृष्टांत अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- राग धनाश्री आधारित यह छंद ब्रज भाषा में लिखा गया है।

(11) अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहतिं कमलनैन को, निसि–दिन रहतिं उदासी।।
आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, बृंदावन के बासी।।
काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी।
सूरदास–प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करवट लैहौं कासी।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में गोपियों ने कृष्ण को अपना आराध्य बताकर उनके प्रति अपना अनन्य प्रेम व्यक्त किया है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव हमारी आँखें तो सिर्फ हमारे आराध्य, हमारे प्रेमी श्रीकृष्ण के दर्शन की ही प्यासी हैं। इसके अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु को देखने की इन्हें कोई चाह ही नहीं है। हमारी आँखें तो उस कमल के समान सुंदर नेत्र वाले कान्हा को ही देखना चाहती हैं और उनकी आस में दिन–रात उदास रहती हैं (क्योंकि उनके दर्शन ही नहीं मिलते)।

गोपियाँ एक–दूसरे से आगे कहती हैं कि ये उद्धव भी हमारे आँगन में भले आए जो हमारे गले में फाँसी का फंदा डाल दिए। अर्थात् इनके आने से हमारी पीड़ा और भी कई गुना बढ़ गई है।

केसरिया तिलक लगाए और मोतियों की माला पहने उस वृंदावन के वासी (अर्थात् कृष्ण को) को अब हमारी पीड़ा से क्या मतलब? अब तो जैसे हमारे मन के

टिप्पणी

भीतर ही यह फंदा पड़ गया है जो हमें दिन–रात डराता रहता है किंतु इससे किसी और को क्या फर्क पड़ता है? जिसे पीड़ा होती है वही उस पीड़ा को समझता है।

सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव के कठोर वचन सुनकर कृष्ण के मथुरा से आने की सारी उम्मीदें बेकार हो गई हैं। अतः अब मथुरा की ओर देखना व्यर्थ है। इसलिए वे काशी की ओर मुड़ने और उधर जाकर कृष्ण के दर्शन करने की बात कहती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसी मान्यता है कि जिसकी मृत्यु काशी में होती है उसे मोक्ष अर्थात् भगवान मिल जाते हैं। गोपियाँ भी निराश होकर कहती हैं कि अब कृष्ण से भेंट शायद मरने के बाद ही हो सकती है।

विशेष

- गोपियों की विरह पीड़ा का मार्मिक अंकन इस पद में किया गया है।
- अनुप्रास अलंकार तथा 'कमल नैन' में रूपक अलंकार का प्रयोग है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया छंद है।

(12) जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
मूरी के पातनि के बदलैं, को मुक्ताहल दैहै।।
यह ब्यौपार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसैं ही धरयौ रैहै।
जिन पै तैं लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै।।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै।
गुन करि मोही सूर साँवरैं, को निरगुन निदबैहै।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गोपियाँ उद्धव के ज्ञान की बातों को ठगी कहकर व्यंग्य कर रही हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव को उलाहना व चेतावनी देते हुए कहती हैं कि हे उद्धव! योग के नाम पर तुम्हारी यह ठगी ब्रज में कहीं नहीं चल पाएगी क्योंकि यहाँ सभी श्रीकृष्ण के प्रेमी हैं। यहाँ तुम्हारा योग और ज्ञान का सामान नहीं बिकने वाला।

तुम्हारा ज्ञान तो मूली के पत्तों जैसा व्यर्थ है जिसके बदले कोई भी मणियों की माला के समान सुंदर व अनमोल कृष्ण प्रेम नहीं देने वाला। तुम्हारा यह व्यापार; तुम्हारी यह वस्तुएँ तुम्हारे ही पास धरी रह जाएँगी अर्थात् उन्हें कोई नहीं लेने वाला। ऐसा करो कि यह ब्रह्मज्ञान देकर जिन्होंने (श्रीकृष्ण ने) तुम्हें हमारे पास भेजा है, इसे उन्हीं के पास लौटा ले जाओ। यहाँ मीठे अंगूरों को छोड़कर यह कड़वी निबौरी चखने वाला कोई भी नहीं है। अपने प्रिय सगुण साकार ब्रह्म–स्वरूप कृष्ण को छोड़कर तुम्हारा यह नीरस ब्रह्म कौन उपासेगा?

विशेष

- ज्ञान की जगह प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।
- निर्गुण ब्रह्म की आलोचना मीठे शब्दों में की गई है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया छंद है।

टिप्पणी

(13) ऊधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को आराधै ईस।।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहिति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस।।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारे नंद–नँदन बिनु, और नहीं जगदीस।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हमारे पास एक ही मन था जो कृष्ण के पास चला गया। अब तुम्हारे ब्रह्मज्ञान की आराधना किससे संभव हो।

व्याख्या– गोपियाँ निर्गुण पंथी तथा तत्व ज्ञानी उद्धव द्वारा योग अपनाने की सलाह दिए जाने पर उनसे कहती हैं कि हे उद्धव! हमारे पास कोई दस–बीस मन अर्थात हृदय नहीं हैं। एकमात्र हृदय था उसे तो श्रीकृष्ण अपने साथ ले गए। अर्थात् हमारे मन में तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही बसे हुए हैं। अब उन्हें छोड़ किसी और में मन लगाना हमारे वश की बात नहीं है।

कृष्ण के बिना देखो कैसे हमारे शरीर की सब इंद्रियाँ ही शिथिल हो गई प्रतीत होती हैं। ऐसा लगता है कि हमारा शरीर बिना मस्तिष्क के हो गया है। अर्थात् उसकी चेतना ही चली गई है। बस एक ही आशा है कि कभी तो कृष्ण आकर अपने दर्शन देंगे। इसी आशा में हम किसी प्रकार जीते चले जाते हैं और सदा ऐसे ही जीते रहेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि बिना कृष्ण को देखे यह शरीर प्राण भी नहीं छोड़ने वाला।

हे उद्धव! तुम तो कृष्ण के सखा हो और सभी प्रकार के योगों तथा ज्ञान से युक्त इतना जान लो कि हमारे लिए तो इस पूरे संसार में कृष्ण के बिना और कोई आराध्य नहीं है। कृष्ण ही हमारे एकमात्र आराध्य, प्रेमी, सखा अर्थात् सर्वस्व हैं।

विशेष

- मन न भए दस बीस : समग्रतः किसी एक के प्रति ही समर्पण संभव है।
- गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम व भक्ति सुंदरता से इस पद में अंकित हुई है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया छंद है।

(14) विलग जानि मानौ ऊधौ कारे।
वह मथुरा काजर की ओबरी, जे आवैं ते कारे।।
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे कुटिल सँवारे।
कमलनैन को कौन चलावे, सबहिनि मैं मनियारे।।
मानौ नील माट तैं काढ़े, जमुना आइ पखारे।
तातैं स्याम भई कालिंदी, सूर स्याम गुन न्यारे।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में गोपियाँ उद्धव की नीरस बातें सुनकर, इसके लिए मथुरा को दोषी बताते हुए उद्धव को व्यंग्यभरी खरी–खोटी सुना रही हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव को खरी–खोटी सुनाते हुए कहती हैं कि हे उद्धव! हमारी बातों का तनिक भी बुरा मत मानो। वस्तुतः तुम्हारे इस प्रकार के होने में तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। यह सारा दोष तो उस मथुरा नगरी का है जो काजल की कोठरी के समान है। वहाँ जो भी रहता है वह ऐसा ही काला हो जाता है। अर्थात् उसके मन में कलुष समा जाता है। देखो, तुम मथुरा से आए हो, तुम भी इसी प्रकार काले हो। वे सुफलक सुत अक्रूर जी भी काले ही थे जो एक दिन मथुरा से अचानक आए और हमारे प्रिय कृष्ण जी को हमसे छीनकर ले गए। मथुरा की ओर से उड़कर आने वाले सभी भँवरे भी काले ही हैं। इन सभी काले व्यक्तियों के बीच श्रीकृष्ण और भी अधिक सुहाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो सब एक ही नील के मटके से भिगोकर निकाले गए हैं। तभी तो सबका रंग एक ही जैसा है। ऐसे लोगों के स्नान से तथा उनको साफ करते रहने से ही मानो यमुना नदी और भी काली हो गई हैं।

सूरदास कहते हैं कि यह सब बताकर गोपियाँ कहने लगीं कि श्याम वर्ण अर्थात् काले रंग के लोगों के तो गुण ही अलग होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि वे सभी पीड़क स्वभाव के होते हैं और सबको छलने वाले होते हैं। अतः उनसे सावधान ही रहना चाहिए।

विशेष

- इस पद में गोपियों द्वारा उद्धव व श्रीकृष्ण के लिए कटु व्यंग्य किया गया है किंतु वह उनका प्रेम ही है।
- अनुप्रास तथा दृष्टांत अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया छंद है।

(15) काहे कौं रोकत मारग सूधौ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तै, राजपंथ क्यौं रूधौं।।
कै तुम सिखि पठए हौ कुबिजा, कह्यौ स्यामधनहूं धौं।
वेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौ, जुवतिनि जोग कहूं धौं।।
ताकौ कहा परैंखौ कीजै, जानै छाँछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गयौ लै, व्याज निबेरत ऊधौ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में गोपियाँ अपनी प्रेमाभक्ति के मार्ग की तुलना निर्गुण भक्ति के मार्ग से करती हैं तथा के अपने मार्ग को सीधा, सरल व श्रेष्ठ बताती हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव को समझाते हुए कहती हैं कि हे उद्धव! तुम हमारी प्रेममय भक्ति का सीधा सरल मार्ग रोककर हमें भटका देने की कोशिश क्यों कर रहे हो? हे भ्रमर! तुम हमारे प्रेम रूपी राजमार्ग को निर्गुण आराधना के काँटों से रुँधकर उसे दुष्कर क्यों बना देना चाहते हो? हमारे लिए तो आराध्य तक पहुँचने का यही प्रेम मार्ग सर्वश्रेष्ठ है।

कहीं ऐसा तो नहीं कि हमसे ईर्ष्या करने वाली मथुरा की कुब्जा ने हमें कृष्ण के रास्ते से हटा देने के लिए पढ़ा–सिखाकर तुमको यहां भेजा है? अथवा श्रीकृष्ण ने ही सचमुच तुम्हें ऐसा समझाने के लिए हमारे पास भेजा है? हमें तो तुम्हारी बातों पर कुछ भी यकीन नहीं आता।

तुम्हीं बताओ कि इतने वेदों, पुराणों व स्मृतियों सहित आखिर ऐसा कौन–सा ग्रंथ है जहाँ हम युवतियों (स्त्रियों) के लिए योग करने की बात लिखी गई है; अर्थात् हमारे लिए तो योग व साधना का वैसे भी कोई मार्ग नहीं है। हमारे पास तो एक यही प्रेमरूपी मार्ग है जिस पर चलकर हम हमारे आराध्य श्रीकृष्ण को प्राप्त कर सकती हैं।

जब उद्धव प्रभावित हुए नहीं दिखते तब गोपियाँ आपस में एक–दूसरे से कहती हैं कि इनको अब क्या समझाया जाए जिन्हें दूध और छाछ के बीच का अंतर भी नहीं पता। गोपियाँ दुखी होकर कहती हैं कि पहले तो मथुरा से अक्रूर जी आए और कृष्ण के रूप में हमारा सारा मूलधन लेकर चले गए और अब ये उद्धव आए हैं जो हमारे पास बचा–खुचा प्रेम व विरह रूपी ब्याज धन भी हमसे छीनकर ले जाना चाहते हैं। इस प्रकार ये हमें पूरी तरह कंगाल बना देना चाहते हैं।

विशेष

- इस पद में निर्गुण व सगुण भक्ति की रोचक व सरल विवेचना गोपियों के माध्यम से की गई है।
- 'निर्गुन कंटक' में रूपक तथा 'राजपंथ' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया, भक्ति रस से ओत–प्रोत छंद है।

1.4 तुलसीदास

तुलसीकृत विनय पत्रिका, कवितावली एवं रामचरितमानस के अयोध्याकांड के निर्धारित काव्यांशों की व्याख्या पृथक–पृथक् इस प्रकार है–

1.4.1 विनय पत्रिका

(श्री गणेश स्तुति)

गाइये गनपति जगबंदन। संकर–सुवन भवानी–नन्दन।।1।।
सिद्धि–सदन गज–बदन बिनायक। कृपा सिंधु, सुन्दर सब लायक।।2।।
मोदक प्रिय मुद–मंगल दाता। बिद्या–बारिधि बुद्धि बिधाता।।3।।
मांगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे।।4।।

संदर्भ– प्रस्तुत काव्यांश भक्तिकाल के प्रसिद्ध संत शिरोमणि कवि तुलसीदास के ग्रंथ 'विनय पत्रिका' से उद्धृत हैं।

प्रसंग– इस पद में तुलसीदास ने प्रथम आराध्य श्री गणेश जी की स्तुति की है।

व्याख्या– आइये हम सभी श्री गणेश जी की वंदना करें। वे शिव–पार्वती के पुत्र हैं तथा उनको सदा प्रसन्न करने वाले हैं। वे सभी अष्ट सिद्धियों के दाता हैं; उनका मुख हाथी का है तथा वे भक्तों के सब संकटों व विघ्नों को हरने वाले हैं। श्री गणेश जी कृपा के सागर हैं अर्थात् वे सबपर अपनी कृपा दृष्टि बरसाने वाले हैं। वे सब देवी–देवताओं में हर प्रकार से श्रेष्ठ तथा योग्य हैं। उन्हें मोदक, अर्थात् लड्डू विशेष प्रिय हैं तथा वे सभी के जीवन में आनंद व मंगल प्रदान करने वाले हैं। श्री गणेश जी विद्या के सागर के समान हैं; वे बुद्धि के भी भगवान हैं। तुलसीदास हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि हे गणेश जी, आपकी कृपा से प्रभु राम सीता के साथ सदैव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

विशेष

- प्रथम आराध्य श्री गणेश की स्तुति से कार्यारम्भ की परंपरा का निर्वाह किया गया है।
- यह छंद राग बिलावल आधारित है।
- शांत रस व भक्ति रस का परिपाक है तथा अवधी भाषा का प्रयोग है।

(सूर्य–स्तुति)

दीन दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा।1।।
हिम–तम–करि–केहरि करमाली। दहन दोष–दुख–दुरित–रूजाली।2।।
कोक–कोकनद–लोक–प्रकासी। तेज–प्रताप–रूप–रस–रासी।3।।
सारथि–पंगु, दिब्य रथगामी। हरि–संकर–बिधि–मूरति स्वामी।4।।
बेद–पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी राम–भगति बर मांगै।।5।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इसमें तुलसीदास ने सूर्य भगवान की वंदना प्रस्तुत की है।

व्याख्या– तुलसीदास सूर्यदेव की वंदना करते हुए कहते हैं कि गरीबों पर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखने वाले सूर्यदेव, मुनि, मनुष्य, देवता और राक्षस सहित सभी आपका सम्मान करते हैं; आपकी सेवा करते हैं। किरणों की माला धारण करने वाले हे प्रभु आप हिम अर्थात् बर्फ और अंधकाररूपी हाथियों को मारने वाले सिंह के समान हैं। आपकी ऊष्मा से हिम पिघलता है और जीवों व वनस्पतियों को नये प्राण, नई ऊर्जा मिलती है। आपके उदय होते ही अंधकार का नाश हो जाता है। आप समस्त दुखों, पापों और रोगों के समूह को जलाकर नष्ट कर डालने वाले हैं। आप चकवा व चकवी पक्षियों के बिछोह को दूर कर उन्हें प्रसन्न करने वाले तथा उनकी विरह पीड़ा का अंत करने वाले हैं।

जैसा कि सर्वविदित है कि चकवा–चकवी रात्रि होते ही एक–दूसरे से बिछड़ जाते हैं और प्रातः होते ही उनका पुनर्मिलन हो जाता है।

आपके उदय होते ही कमल प्रफुल्लित होकर खिल जाते हैं तथा समूचा ब्रह्मांड आपके अतुलित प्रकाश से जगमगा उठता है। आप तेज, बल, प्रताप और रस की विपुल राशि है। आप दिव्य और तेजोमय रथ पर चलते हैं किंतु आपका सारथी अरुण अंगविहीन है। हे प्रभु! आप शिव, ब्रह्म और विष्णु के साक्षात रूप हैं अर्थात् आपमें तीनों समाहित हैं। आपका यह अमर यश वेदों व पुराणों सहित सभी ग्रंथों में जगमगा रहा है।

तुलसीदास प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु सूर्यदेव! मैं आपसे मेरे प्रिय प्रभु श्रीराम की भक्ति का वर प्रदान करने की विनती करता हूं।

विशेष

- प्रकाश के देवता सूर्यदेव की प्रशंसा व अर्चना पर आधारित ये पंक्तियां अवधी भाषा में हैं।
- भक्ति रस व शांत रस का परिपाक हुआ है।
- अनुप्रास एवं रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग।

टिप्पणी

(शिव–स्तुति)

(1) को जाँचिए संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत–आरति–हर, सब प्रकार समरथ भगवान।।1।।
कालकूट–जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि किये विषपान।
दारून दनुज, जगत दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान।।2।।
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान।
सो गति मरन–काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान।।3।।
सेवत सुलभ उदार कल्पतरू, पारबती–पति परम सुजान।
देहु काम–रिपु राम–चरन–रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान।।4।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इसमें तुलसीदास जी ने भगवान शिव की महिमा का वर्णन करते हुए उनकी प्रार्थना की है।

व्याख्या– तुलसीदास भगवान शिव की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि शिव जी को छोड़कर अब और किससे याचना की जाए। भगवान शिव दोनों पर दया करने वाले हैं तथा वे अपने भक्तों के सब कष्ट हर लेते हैं। वे हर प्रकार से सर्व–सामर्थ्यवान हैं तथा ऐश्वर्य व वैभव के भंडार हैं। समुद्र मंथन के उपरांत जब हलाहल की भयानक ज्वाला से देवी–देवता व दानव आदि सभी जलने लगे तब आपने ही उस भयानक विष को अपने कंठ में धारण कर लिया। पूरे ब्रह्मांड को पाप और अत्याचार से आतंकित कर त्राहि–त्राहि मचा देने वाले दुष्ट त्रिपुरासुर को आपने एक ही बाण से मार डाला था। संतों, वेदों व पुराणों के अनुसार महामुनियों, बड़े–बड़े ऋषियों व तपस्वियों के लिए भी जो गति पाना दुर्लभ व कठिन है, वह गति आप अपनी नगरी काशी में मरने वालों को यूँ ही प्रदान कर दिया करते हैं। इससे आपकी महान दयालुता का पता चलता है। आपको प्रेम, भक्ति व सेवा से प्रसन्न करना बहुत ही आसान है क्योंकि आप सहज ही प्रसन्न हो जाते हैं।

हे पार्वती के पति, हे परमज्ञानी प्रभु! आप कल्पवृक्ष के समान उदार हैं। आप कामदेव को अर्थात् काम–वासना को भस्म कर देने वाले हैं। आपसे यह तुलसीदास विनती करता है कि मुझे प्रभु श्रीराम के चरणों की चिर–भक्ति प्रदान करने की कृपा कीजिए।

विशेष

- शिव के 'भोलेनाथ' नाम की अर्थवत्ता अभिव्यांकित है।
- पुराणों में वर्णित कई आख्यानों अथवा प्रसंगों का इस पद में संकेत दिया गया है जैसे–त्रिपुरासुर वध व सागर मंथन।
- भक्ति रस, अनुप्रास व रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- राग बिलावल पर आधारित यह छंद अवधी भाषा में रचित है।

(2) दानी कहुँ संकर–सम नाहीं।
दीन–दयालु दिबोई भवै, जाचक सदा सोहाहीं।।1।।
मारिकै मार थप्यौ जग में, जाकी प्रथम रेख भट माहीं।

टिप्पणी

ता ठाकुर कौ रीझि निवाजिबौ, कह्यौ क्यों परत मो पाहीं।।2।।
जोग कोटि करि जो गति हरिसों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद–बिदित तेहि पद पुरारि–पुर, कीट पतंग समाहीं।।3।।
ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अधाहीं।।4।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस छंद में तुलसीदास ने भगवान शिव की दानशीलतापूर्ण उदारता का वर्णन किया है।

व्याख्या– तुलसीदास भगवान शंकर की प्रशंसा व वंदना करते हुए कहते हैं कि इस समस्त ब्रह्मांड में भगवान शिव के समान कोई दानी नहीं है क्योंकि वे इतने भोले हैं कि देते समय पात्र–कुपात्र में तनिक भी भेद नहीं करते। वे इतने दीनदयालु हैं कि उन्हें हमेशा देते रहना ही अच्छा लगता है। वे भक्तों से विशेष प्रेम करते हैं तथा उनका विशेष ध्यान रखते हैं।

योद्धाओं में अग्र तथा अपनी पहली रेखा से ही पराजित कर देने वाले कामदेव को उन्होंने अपने क्रोध की अग्नि में जलाकर भस्म तो कर दिया किंतु फिर भी उसे संसार में रहने दिया। ऐसे प्रभु शिव मुझ पर भी अपनी दया व कृपा बरसाते हैं तथा मेरी दीनता को दूर करते हैं। जिस मोक्ष को पाने के लिए ऋषि–मुनि कठोर तप किया करते हैं तथा जिसे 'योग' के कठोर अभ्यास व नियम के उपरांत भी भगवान से माँगने में संकोच करते हैं वही मोक्ष पद शिव की काशी में रहने वाले कीट–पतंगें भी सरलता से प्राप्त कर लेते हैं। यह भगवान शिव की ही कृपा का सूचक है।

तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे दयालु, ऐश्वर्यशाली, परम उदार प्रभु शिव को छोड़कर जो लोग अन्यत्र कुछ भी माँगने जाते हैं उनसे अधिक मूर्ख इस संसार में कोई नहीं है। ऐसे मूर्खों का पेट माँगने से कभी नहीं भरता क्योंकि उन्हें माँगने से कभी भी पर्याप्त नहीं मिलता। जो याचक भक्तिपूर्वक भगवान शिव की शरण में जाकर कुछ माँगते हैं उन्हें प्रभु अधिक ही देकर न केवल संतुष्ट करते हैं बल्कि उनके रोग, शोक व समस्त दुख भी हर लेते हैं।

विशेष

- भगवान शंकर के दानी रूप की महिमा का वर्णन किया गया है।
- अनुप्रास व रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- राग धनाश्री पर आधारित यह छंद अवधी भाषा में रचित है।
- भक्ति रस का परिपाक हुआ है।

(3) बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद–बड़ाई भानी।।1।।
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री–सारदा सिहानी।।2।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी।।3।।

दुख–दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी।।4।।
प्रेम–प्रसंसा–बिनय–ब्यंगजुत, सुनि बिधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत–मातु मुसुकानी।।5।।

टिप्पणी

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– शिव की दानवृत्ति पर ब्रह्मा की व्यंग्योक्ति का उदाहरण देकर तुलसीदास ने यहां शिव के विलक्षण व्यक्तित्व को उभारा है।

व्याख्या– भगवान शिव अत्यधिक उदार हैं और वे निरंतर दीन–दुखियों व दरिद्रों को देते ही रहते हैं। उनके इस स्वभाव को देखकर एक दिन ब्रह्मा जी पार्वती जी के पास जाकर कहने लगे कि हे भवानी! आपके पतिदेव पागल की भांति हैं। उन्हें भी देने में लगे रहते हैं जिन्होंने न तो कभी किसी को कुछ दिया है और न ठीक से भक्ति ही की है। उनकी यह प्रशंसा तो वेदों द्वारा भी कही जाती है। अब आप ही इस बात पर ध्यान दो क्योंकि आप तो परम ज्ञानी व समझदार हैं। शिव की दी हुई अपार संपत्ति (ज्ञान और धन दोनों की संपत्ति) को देखकर तो लक्ष्मी और सरस्वती भी घबराती हैं। इतना दान कोई कैसे दे है। सकता जिनके भाग्य में मैंने तमाम दुख, कष्ट और चिंताएँ लिखी थीं, अर्थात् सुख का नामोनिशां तक नहीं लिखा था, उन अभागों व कंगालों के लिए भी स्वर्ग जैसी सजावट करता हुआ अब मैं तंग आ चुका हूँ। यहाँ तक कि दुख, दीनता और याचकता स्वयं दुखी हो चुके हैं क्योंकि शिव की अपार दयालुता व उदारता के कारण अब पूरे संसार में उनके रहने के लिए कोई स्थान ही नहीं बचा है। ब्रह्मा जी कहते हैं कि अच्छा हो कि भाग्य लिखने का मेरा काम अब किसी और को दे दिया जाए; क्योंकि मेरे लिखे हुए का कोई महत्व ही नहीं रह गया है। इससे तो यही अच्छा होगा कि मैं भिक्षा माँगकर अपना जीवन व्यतीत करूं। तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्माजी के व्यंग्य में छुपी प्रशंसा व प्रेम को जानकर भगवान शिव मन ही मन प्रसन्न हो उठते हैं और पार्वती जी आनंद से मुस्कुराने लगती हैं।

विशेष

- ब्रह्म–पार्वती संवाद के रोचक पौराणिक प्रसंग द्वारा भगवान शंकर की दयालुता व उदारता को व्यक्त किया गया है।
- अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
- राग धनाश्री पर आधारित यह छंद अवधी भाषा में सृजित है।

1.4.2 कवितावली

(1) अवधेस के द्वारें सकारे गई सुत गोद के भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि–रही, जे न ठगे धिक–से।।
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक–से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरूह–से बिकसे।।

संदर्भ– प्रस्तुत पद भक्तिकाल के संत शिरोमणि कवि तुलसीदास द्वारा रचित काव्यग्रंथ 'कवितावली' से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में तुलसीदास ने प्रभु राम के बाल स्वरूप का वर्णन किया है।

व्याख्या– दशरथ जी के महल से सुबह घूमकर आई एक सखी दूसरी सखी से प्रभु राम के बाल रूप का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखी, मैं आज प्रातः काल दशरथ जी के महल गई थी कि अपने पुत्र राम को गोद में लिए राजा महल से बाहर आ गए। रामचंद्र का सौंदर्य ऐसा था कि जिसे देखते ही सब प्रकार के दुःख व शोक समाप्त हो जाएं। उनके इस सौंदर्य को देखकर जो लोग ठगे न रह जाएं उनको तो धिक्कार ही है। उनकी आंखों में काजल ऐसे शोभायमान हो रहा था कि जैसे चंद्रमा रूपी सरावल में दो समान सुदंरता वाले नीलकमल खिल आए हों। उनकी आंखें खंजन पक्षी के शावक जैसी अति सुदंर थी। उनका यह सौंदर्य सहज ही मन को मोह ले गया।

विशेष

- राम के बाल रूप का सहज व सुदंर वर्णन है।
- काव्य परंपरा के अनुरूप नेत्रों की सुदंरता की उपमा खंजन पक्षी की आंखों से की गई है।
- 'जैन सुखंजन–जातक से' तथा 'सरोरूह–से' में उपमा अलंकर का प्रयोग है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया छंद है।

(2) पग नुपुर औ पहुँची कर कंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृपु गोद लिएँ।।
अरबिन्दु सो आननु रूप मरन्दु अनंदित लोचन–भृंग पिएँ।
मनमो न बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी जग में फलु कौन जिएँ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– राम के आकर्षक बालरूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यह रूप मन में न बसे तो समझो धरती पर जन्म लेना व्यर्थ है।

व्याख्या– राम के पैरों में सुदंर नुपूर (छोटे घुंघरू) बंधे हैं। जब वे चलते हैं तो उनसे मृदुल ध्वनि होती है। उनके हाथ कमल के फूल के समान सुंदर व कोमल हैं जिसमें उन्होंने पहुंची (एक बाल आभूषण) धारण की हुई है। उनके हृदय पर मणियों की सुंदर माला सुशोभित है। उनका नीलवर्णी शरीर पीले वस्त्रों के बीच बड़ी सुदंरता से झिलमिला रहा है। राजा दशरथ उनको गोद में लिए आनंद से बारंबार पुलकित हो रहे हैं। उनका (श्री राम का) चेहरा कमल के समान है। उसका लवणमयी सौंदर्य मकरंद के समान है जिसका पान उनके (राजा दशरथ) भ्रमर समान नेत्र निरंतर कर रहे हैं। अर्थात् राजा दशरथ उन्हें देखकर अति आनंदित हो रहे हैं। इस प्रकार राम के बाल स्वरूप के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि यदि ऐसा मनोहर बाल रूप सदा के लिए मन में न बस जाए तब तो समझो इस धरती पर जन्म लेना ही व्यर्थ है।

विशेष

- राम के बाल्यकालीन सौंदर्य का सरस वर्णन है।
- राजा दशरथ के माध्यम से वात्सल्य रस की सृष्टि है।
- उपमा तथा रूपक अलंकार का सुदंर प्रयोग है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया छंद है।

टिप्पणी

(3) तनकी दुति स्याम सरोरूह लोचन कंजकी मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं।।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यौं किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां राम के बालरूपी सौंदर्य के सामने कामदेव के सौंदर्य को फीका बताया गया है।

व्याख्या– तुलसीदास राम के बाल स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम के शरीर की कांति श्यामवर्णी कमल के समान है। उनके नेत्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कमल के फूलों की सारी कोमलता चुरा ली है। खेलते हुए वे धूल में सन गए हैं और इस अवस्था में भी वे इतने सुंदर लग रहे हैं कि कामदेव का सौंदर्य भी उनके सामने फीका पड़ गया है। उनके दूध के दांत ऐसे चमकते हैं जैसे आसमान में बिजली। वे किलकारियां मारते हुए अपने तीनों भाइयों के साथ खेल रहे हैं। तुलसीदास प्रार्थना करते हैं कि उन चारों भाईयों का यह मनोहारी रूप सदा–सर्वदा उनके मन में बसा रहे।

विशेष

- राम की बाल चेष्टाओं को सहजता से अंकित किया गया है।
- वात्सल्य व भक्ति रस का परिपाक हुआ है।
- रूपक, प्रदीप तथा उपमा अलंकार की सृष्टि है।

(4) कबहूँ ससि मांगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में राम की बाल लीला का सरस वर्णन किया गया है।

व्याख्या– तुलसीदास राजप्रासाद में चारों पुत्रों – राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न की बाल लीलाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कभी वे चंद्रमा को लेने की हठ करते हैं तो कभी अपने ही परछाई देखकर भयभीत होते हैं। कभी तालियां बजाते हुए आनंदित होकर नाचने लगे हैं तो कभी किसी वस्तु के लिए राजा व रानी से जिद्द करने लगते हैं और तब तक नहीं मानते जब तक वे उसे प्राप्त नहीं कर लेते। तुलसीदास यह प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि इन चारों भाइयों का यह मनोहारी रूप सदा–सर्वथा उनके मन में बसा रहे।

विशेष

- चारों राजकुमार भाइयों की बाल–लीलाओं का रोचक वर्णन किया गया है।
- वात्सल्य रस का परिपालन हुआ है।
- अनुप्रास, स्वभावोक्ति तथा दीपक अलंकर का प्रयोग है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया छंद है।

टिप्पणी

(5) बर दन्त की पंगत कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगैं छबि मोतिन माल अमोलन की।।
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्रान करै तुलसी बलि जाउं लला इन बोलन की।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में राम के दांतों, होठों एवं बालों आदि के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की गई है।

व्याख्या– तुलसीदास राम के बाल सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनके दांतों की पंक्ति कुद (एक प्रकार का दुबा) के समान सुंदर प्रतीत होती हैं। जब वे होठों को खोलते और बंद करते हैं तो ऐसा लगता है मानो कोंपल बार–बार हिलडुल रहे हों। उनके शरीर पर मोतियों की सुंदर माला ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे बादलों के बीच से बिजली चमकती है। उनके घुंघराले बाल मुंह पर लटक रहे हैं और कुंडल हिलते हुए गालों को छूते हैं। उनकी तोतली बोली पर तुलसीदास कहते हैं कि मैं अपने प्राणों को भी न्योछावर कर दूं।

विशेष

- राम की बाल सुलभ क्रीडाओं का मनोहारी वर्णन है।
- भक्ति रस का परिपूर्ण छंद है।
- उपमा व रूपक अलंकार का प्रयोग है।
- ब्रजभाषा में लिखा गया छंद है।

1.4.3 अयोध्याकांड (रामचरितमानस–तुलसीदास)

(1) अति सप्रेम सिय पाँय परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस।।1।।
पारबती सम पति प्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू।।
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी।।
दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पियासी।।
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं।।
तबहिं लखन रघुबर रूस जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी।
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी।।
मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने।।
समुझि करम गति धीरजु कीन्हां सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा।।

संदर्भ– उपरोक्त काव्यांश भक्तिकाल के संत शिरोमणि कवि तुलसीदास द्वारा रचित ग्रंथ 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड से उद्धृत है।

प्रसंग– इसमें श्रीराम की पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण सहित वनगमन के समय के मार्ग का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– वनगमन के समय मार्ग में पड़ने वाले गांवों की स्त्रियां सीताजी व दोनों भाईयों को देखकर अचरज में पड़ गईं क्योंकि वे न तो ग्रामीणों जैसे थे और न ही

टिप्पणी

वनवासियों जैसे। जब उन्हें सीता से परिचय मिला तो वे अत्यंत प्रेम में भरकर उनके पैरों में गिरकर उन्हें आशीष देने लगीं कि जब तक शेषनाग ने अपने सिर पर पृथ्वी को धारण किया हुआ है तब तक तुम सदा सुहागन रहो। तुम पार्वती जी की तरह अपने पति को प्रिय हो और हमारे ऊपर अपनी कृपा बनाए रखो।

वे बार–बार हाथ जोड़ते हुए उनसे विनती करती हैं कि आप फिर से इसी रास्ते से लौटना। वे कहती हैं कि हमें अपनी सेविका जानकर फिर दर्शन देना। इस प्रकार सीता जी ने उन सबके अपार प्रेम को अनुभव करने के बाद उन्हें मीठे–मीठे वचन कहकर उनको संतुष्ट किया जैसे चांदनी ने कुमुदिनियों को खिलाकर पुष्ट कर दिया हो।

उसी समय प्रभु श्रीराम के संकेत को समझकर लक्ष्मण ने कोमल वाणी से लोगों से आगे जाने का मार्ग पूछा। यह सुनते ही वहां खड़े सभी स्त्री पुरुष दुखी हो गए। उनके शरीर पुलकित हो उठे और आंखों में आंसू भर आए। उनका सारा आनंद समाप्त हो गया और उन्हें देख ऐसा लगने लगा जैसे कि विधाता ने उन्हें दी हुई सारी संपत्ति छीन ली है। फिर उन्होंने किसी प्रकार अपने मन को समझाते हुए और श्री राम रटते हुए उन्हें आगे जाने का मार्ग बता दिया।

विशेष

- आमजनों का प्रभु श्री राम, पत्नी सीता व भाई लक्ष्मण के प्रति विशेष प्रेम इस अंश में अति भावात्मक रूप में चित्रित हुआ है।
- दोहा तथा चौपाई छंद एवं अवधी भाषा का प्रयोग है।
- अनुप्रास व उपमा अलंकार की सुदंर छटा है।

(2) लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ।।2।।
फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहिं दोषु देहिं मन माहीं।।
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं।।
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरूज सकलंकू।।
रुख कल्पतरू सागरू खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा।।
जौं पे इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू।।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना।
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता।।
तरूबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस अंश में वनगमन करते हुए प्रभु श्री राम के मार्ग में आने वाले गांवों के निवासियों चित्रण है। यहां बताया गया है कि वहां के निवासी श्री राम को पत्नी व भाई सहित वन को जाते हुए देखकर कैसा अनुभव कर रहे हैं।

व्याख्या– वन में जाते हुए दोनो भाई व सीता को देखकर सभी स्त्री–पुरुष मन बहुत पछताने लगे और अपने–अपने घर की ओर लौटने लगे। वे विधाता को दोष देते हुए कह रहे थे कि उसके सभी काम उल्टे ही होते हैं। विधाता तो बिल्कुल ही कठोर, निरंकुश और निर्दयी है। जिसने चंद्रमा को भी रोगों अर्थात् कभी घटने कभी बढ़ने वाला

बना दिया; जिसने सकलतरू को वृक्ष बना दिया और विशाल जल राशि वाले समुद्र को खारा। उसी हठी विधाता ने इन सुकोमल राजकुमारों को भी वन में भेज दिया है। जब ऐसे राजकुमारों को वन में ही भेजना था तब तो उसने इस संसार में तमाम सुख और भोग–विलास व्यर्थ ही बनाए। जब ऐसे राजकुमारों को वन में नंगे पांव विचरना पड़ रहा है तब तो विधाता ने अनेक वाहन (सवारियां) व्यर्थ ही बनाए। जब इन्हें कुश और पत्ते बिछाकर जमीन पर ही सोना पड़ता है तब विधाता सुंदर पलंग किसलिए बनाता है। यदि ऐसे राजकुमारों को पेड़ों के नीचे रहना पड़ रहा है तो संसार भर के उज्ज्वल महल विधाता ने व्यर्थ ही बनाए।

विशेष

- ग्रामीणों के श्री राम के प्रति अपार स्नेह तथा सहानुभूति का भावुक चित्रण किया गया है।
- दोहा तथा चौपाई छंद का प्रयोग किया गया है जिन्हें अवधी भाषा में लिखा गया है।

(3) जौ ए मुनि पट धर जटिल सुन्दर सठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार।।
जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं।।
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए।।
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवण नयन मन गोचर बरनी।।
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी।।
इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा।।
कीन्ह बहुत श्रम एक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए।।
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं।।
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखें।।
एहि बिधि कहि कहिज बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर।।4।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां वन–गमन कर रहे श्रीराम, सीता व लक्ष्मण को देखकर स्थानीय ग्रामीणों द्वारा ब्रह्मा की नीयत पर सवाल उठाया गया है।

व्याख्या– ग्रामीण श्रीराम, लक्ष्मण व सीता जी की दशा देखकर बहुत दुःख अनुभव करते हैं। एक दूसरे से कहते हैं कि जो ये सुंदर और कोमल राजकुमार ऋषियों–मुनियों जैसे वल्कल वस्त्र पहनते हैं और जटा धारण करते हैं तो फिर विधाता ने भांति–भांति के सुंदर गहने एवं वस्त्र आदि व्यर्थ ही बनाए। यदि इन जैसे राजकुमारों को कंद, मूल व फल खाना पड़ रहा है तो इस संसार में अमृत सहित सभी स्वादिष्ट खाद्य व पेय पदार्थ व्यर्थ ही हैं।

इन ग्रामीणों में से कोई एक उनके सौंदर्य पर रीझकर कहता है कि मुझे तो ये ब्रह्म के बनाए हुए नहीं मालूम होते, बल्कि ये स्वयं ही इस धरा पर प्रकट हुए हैं। अर्थात् ऐसा सौंदर्य तो स्वयं ब्रह्म भी नहीं रच सकते। हमने अब तक विधाता की करनी को मन से, नेत्रों से तथा कानों से जितना भी देखा, सुना या अनुभव किया है वहां तक चौदह

टिप्पणी

लोकों में भी ऐसे पुरुष व स्त्रियां कहीं नहीं हैं। इन्हें देखकर विधाता भी मोहित हो गया होगा और इन्हीं के समान सुंदर स्त्री–पुरुष बनाने का प्रयास उसने किया होगा।

जब ब्रह्मा ने किसी भी प्रकार एक भी स्त्री–पुरुष ऐसा नहीं रच सका तो उसने ईर्ष्या के वशीभूत होकर इन्हें जंगल में लाकर छुपा देने का यह क्रूर खेल खेला। उन्हीं ग्रामीणों में से कोई एक अन्य कहता है कि भाई मैं बहुत तो नहीं जानता किंतु इतना अवश्य जानता हूं कि हम सभी बड़े ही सौभाग्यशाली हैं जो इनके साक्षात् दर्शन कर रहे हैं। वे ग्रामीण बार–बार कहते हैं कि ये कोमल शरीर वाले इतने कठिन व कठोर वन मार्गों पर कैसे चलेंगे?

विशेष

- इस पद में श्री राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिए ग्रामीणों के प्रेममय विषाद का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण है।
- दोहा तथा चौपाई छंद प्रयुक्त है जिन्हें अवधी भाषा में लिखा गया है।

(4) नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं।।
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी।।
परसत मृदुल चरन अरूनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे।।
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा।।
जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं।
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए।।
सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई।।
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई।।

दोहा–

अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।
होंहि प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिँ।।5।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां वन गमनरत श्रीराम, सीता व लक्ष्मण के कारण शोकाकुल होते हुए ग्रामीण जन उन्हें अभागे बता रहे हैं जो इनके दर्शन के लिए यहां नहीं आ पाए।

व्याख्या– श्रीराम, लक्ष्मण व सीता जी को वन मार्ग पर जाते हुए गांव की स्त्रियां प्रेमवश वैसे ही व्याकुल हो उठती हैं जैसे संध्या का समय नजदीक आने पर चकवी निकट बिछोह के डर से पहले ही शोकाकुल होने लगती है।

तीनों के कमल के समान–कोमल पैरों और मार्ग की कठोरता को जानकर व दुखीः हृदय से कहती हैं कि इनके कोमल और लाल–लाल तलुओं को छूते ही पृथ्वी ऐसे सकुचा जाती है जैसे इस समय हमारे हृदय लज्जित हो रहे हैं। यदि विधाता को इन्हें यह वनवास देना ही था तो सभी वनमार्गों को फूलों से भर क्यों नहीं दिया, ताकि कम से कम इनके कोमल चरण तो आहत नहीं होते। यदि मुझे ब्रह्म से वरदान मांगने को मिले तो हे सखी! मैं तो उनसे यही मांगूगी कि मैं इन तीनों को सदा अपनी आंखों में रख सकूं।

जो स्त्री–पुरुष इस अवसर पर नहीं आ पाए वे बेचारे कितने दुर्भाग्यशाली हैं कि इन तीनों के दिव्य दर्शन से वंचित रह गए। उनके आगे निकल जाने पर जो लोग दर्शन नहीं कर पाए वे व्याकुल होकर पहले से खड़े लोगों से पूछते हैं कि हे भाई वे अब तक कहां तक पहुंचे होंगे? जो समर्थ हैं वे दौड़ते हुए चले जाते हैं और उनका दर्शन कर लेने के उपरांत जन्म का परम फल पाकर विशेष आनंदित होते हुए लौटते हैं। किंतु गर्भवती, प्रसूता, अबला स्त्रियां, बच्चे व बूढ़े जो दूर तक दौड़कर भी नहीं जा सकते हैं, वे बेचारे हाथ मलते हुए बार–बार पछताते हैं।

इस प्रकार प्रभु श्री राम लक्ष्मण व सीता के साथ जहां–जहां जाते हैं, वहां–वहां लोग उनके प्रेम के वश में हो जाते हैं।

विशेष

- सत्य का दर्शन भाग्यवानों को ही होता है– इस मान्यता की पुष्टि की गई है।
- कवि ने श्री राम के दर्शन की दिव्यता तथा ग्रामीणों के रोमांच का बड़ा सहज व भावात्मक चित्रण किया है।
- दोहा तथा चौपाई छंद का प्रयोग है–जिन्हें अवधी भाषा में लिखा गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'रात्यूँ रूँनी बिरहनी, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज' में कौन–सा अलंकार है?
   (क) उपमा (ख) रूपक
   (ग) उत्प्रेक्षा (घ) यमक
2. गोपियों के लिए ज्ञानयोग का संदेश कृष्ण किससे भिजवाते हैं?
   (क) बलराम से (ख) उद्धव से
   (ग) अक्रूर से (घ) सैनिक से
3. कवितावली में राम के किस जीवनकाल का वर्णन किया गया है?
   (क) बाल्यकाल (ख) वनगमन काल
   (ग) सीता की खोज का समय (घ) युद्ध काल

1.5 बिहारी

(1) मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं स्यामु हरित–दुति होईं।।

संदर्भ– प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि 'बिहारी' द्वारा रचित एवं उनकी कृति 'बिहारी सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग– यह दोहा 'बिहारी सतसई' की बाधारहित पूर्णता के लिए राधा जी की स्तुति के रूप में लिखा गया है।

व्याख्या– कवि राधा की स्तुति करते हुए कहता है कि जिस प्रकार आपकी परछाईं पड़ने से श्याम वर्ण वाले कृष्ण का रंग हरा हो जाता है, उसी प्रकार आप मेरे जीवन के कष्टों व बाधाओं का हरण करने की कृपा करें।

टिप्पणी

विशेष

- इस दोहे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अर्थ की दृष्टि से यह बहुत सघन व बहुपर्ती है जिसके कई अर्थ लिए जा सकते हैं।
- कृष्ण रंग, अर्थात काले से अभिप्राय दुख, पीड़ा, कष्ट आदि से भी है। राधा का वर्ण पीत है जो प्रेम व भक्ति का प्रतीक है। हरा रंग हरियाली, विकास, प्रसन्नता व आनंद का प्रतीक माना जा सकता है। जैसे काले रंग में जब पीला रंग मिलाया जाता है तो वह हरा हो जाता है वैसे ही प्रेम व भक्ति जीवन के कष्टों को दूर कर देते हैं तथा हमें आनंद व प्रसन्नता प्रदान करते हैं।
- ब्रज भाषा में रचा गया दोहा छंद है।

(2) सनि–कज्जल चख–झख–लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में नायिका के सुंदर नेत्रों का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि नायिका के नेत्रों की सुंदरता का बखान करते हुए कहता है कि उसकी आँख का काजल शनि ग्रह के समान है। ऐसी चख–रूपी मीन लग्न में जब शनि उपस्थित होता है तो वह बहुत सौभाग्यशाली योग बनाता है। इसी तरह कागज में पगे नेत्रों को देखकर नायक के मन में स्नेह रूपी बालक ने जन्म ले लिया है जो हर प्रकार से इस बेहतर योग का आनंद भोगेगा। यहाँ युवा अवस्था की ओर भी संकेत किया गया है जो श्रेष्ठ दिनों का प्रतीक है।

विशेष

- दोहे में ज्योतिष ज्ञान का सुंदर प्रयोग है तथा मीन लग्न में शनि की तुलना काजल भरे नेत्रों से की गई है जिससे अर्थ का चमत्कार पैदा हुआ है।
- चख–झख लगन में बहुब्रीहि समास का सुंदर प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में रचा गया दोहा छंद है।

(3) सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसत नाँहि।
मनमथ–नेजा–नोक सी, खुभी खुभी जिय माँहि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में नायक की नायिका से की मिलनोत्कंठा का जिक्र किया गया है।

व्याख्या– नायक नायिका के प्रति अपने प्रेम की तीव्रता व उससे मिलने की तीव्र उत्कंठा को व्यक्त करते हुए कहता है कि उसकी खुशी हृदय में ऐसी चुभ गई है जैसे कामदेव का भाला भीतर समा गया हो और उसकी नोंक टूटकर घाव के भीतर ही रह गई हो। कहने का तात्पर्य यह है कि नायिका की छवि की याद नायक को विह्वल बनाए दे रही है।

विशेष

- पद में नायक की नायिका से मिलनोत्कंठा को खूबसूरती से अभिव्यंजित किया है। बिहारी ने शस्त्र व आघात संबंधी ज्ञान का बखूबी प्रयोग किया है।

टिप्पणी

- खुशी शब्द में श्लेष अलंकार है। खुशी यानी प्रसन्नता/एक कर्णाभूषण।
- ब्रज भाषा तथा दोहा छंद का प्रयोग है।

(4) जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।
सौंधे के डोरैं लगी अली चली सँग जाइ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में शुक्लाभिसारिका नायिका के गौरवर्ण तथा उसके सौंदर्य का वर्णन उसकी सखियों के द्वारा किया गया है।

व्याख्या– सखी नायिका के गौरवर्ण तथा सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहती है कि नायिका चाँदनी रात में चलती हुई चाँदनी में ऐसे खो गई है कि ठीक से दिख ही नहीं रही। सखी इस असुविधा से बचने के लिए उसकी सुगंधि को ही महसूस करके साथ–साथ चली जा रही है। अर्थात् शरीर न दिखने पर उसने नायिका के शरीर से आने वाली सुगंध को ही अपना संबल बना लिया है।

विशेष

- नायिका के सौंदर्य का चमत्कारिक ढंग से वर्णन किया गया है। एक ओर इसमें उसकी गौर कांति का वर्णन किया गया है तो वहीं दूसरी ओर उसकी सुगंधि का भी।
- पद में वर्णित नायिका 'शुक्लाभिसारिका' है जो चाँदनी रात में अपने प्रियतम से मिलने को निकलती है।
- ब्रज भाषा तथा दोहा छंद का प्रयोग है।

(5) हौं रीझी, लखि रीझिहौ, छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति–मिलत मालती माल।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायिका की सखी अथवा दूती नायक से उसके शरीर की सुनहरी आभामय सुंदरता का वर्णन इस पद में कर रही है।

व्याख्या– नायिका की सखी (अथवा दूती) उसके सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहती है कि मैं तो उसका अद्भुत सौंदर्य देखकर उस पर मुग्ध हो गई हूँ। हे छबीले यदि तुम उसका सौंदर्य देख लोगे तो उस पर रीझे बिना रह न सकोगे। उसकी पीतवर्णी गोराई (गोरापन) देखते ही बनती है जब उसकी माला में गुँथी मालती सुनहरे रंग की हो उठती है। तुम भी उसके सौंदर्य से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकोगे।

विशेष

- नायिका के सौंदर्य का चमत्कारिक ढंग से वर्णन किया गया है।
- सोनजुही–सी में उपमा अलंकार का प्रयोग है।
- ब्रजभाषा तथा दोहा छंद का प्रयोग है।

(6) नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन–बिरदु बारक बारनु तारि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

टिप्पणी

प्रसंग– इस पद में भक्त भगवान को उलाहना देते हुए उनके प्रति अपनी प्रीति व निर्भरता व्यक्त कर रहा है।

व्याख्या– भक्त भगवान को याद करते हुए कह रहा है कि हे प्रभु! इस बार तो आपने मेरी प्रार्थना सुनने में अच्छी–खासी आनाकानी की। कहने का अभिप्राय यह है कि आपने न मेरी पुकार सुनी और न ही मेरी रक्षा करने को प्रस्तुत हुए। ऐसा लगता है कि जबसे आपने हाथी के प्राणों की रक्षा मगरमच्छ से की तब से आपने अपना 'तारण' नाम छोड़ ही दिया है। अन्यथा ऐसा क्यों कर होता कि एक ही पुकार पर भक्तों की रक्षा के लिए दौड़ जाने वाले आप मेरी बार–बार की पुकार पर भी नहीं आते।

विशेष

- ईश्वर के प्रति प्रीतिपूर्ण उलाहना भक्त की उसके प्रति अगाध श्रद्धा–भक्ति प्रदर्शित करता है।
- तारक वासु में अनुप्रास अलंकार है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(7) खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक–कली न रली करै अली, अली, जिय जानि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में नायिका की सखी उसे समझा रही है तथा प्रेमी के प्रति क्रोध को कम करने की कोशिश कर रही है।

व्याख्या– सखी नायिका से कहती है कि हे सखी! तू कान की बहुत कच्ची है। अपने प्रेमी के बारे में सुनी–सुनाई बातों को तूने इतनी जल्दी सत्य ही मान लिया है। यह प्रवृत्ति तो स्वयं को ही नुकसान पहुंचाने वाली है। हे सखी, तुम्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भ्रमर फूल को त्यागकर मदार की कली से व्यवहार नहीं करता। अर्थात् उसे तुम्हारी व तुम्हारे प्रेम की वास्तविक पहचान है। ऐसे में यह संभव ही नहीं कि वह तुम्हें त्यागकर अन्यत्र चला जाए।

विशेष

- नायिका की तुलना मदार के जहरीले पुष्प से की गई है।
- 'कान की पतली' मुहावरे का सुंदर प्रयोग है।
- अली, अली में यमक तथा कान की, कौन में अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(8) झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरू की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायक झीने (पारदर्शी) कपड़े में झलकते नायिका के शरीर को देखकर अभिभूत हो गया है और उसके सौंदर्य का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या– नायिका के शरीर का अद्भुत सौंदर्य उसके झीने वस्त्र के पार से ऐसे झलक रहा है मानो समूचा कल्पवृक्ष समुद्र में डूब गया हो। जैसे समुद्र में डूबे कल्पवृक्ष को

जल के पाराभासी होने के कारण हल्का–हल्का देखा जा सकता है उसी प्रकार नायिका का गौर वर्णी शरीर झलकते हुए बड़ा ही सुंदर व मनोहारी प्रतीत हो रहा है।

विशेष

- नायिका के शरीर की तुलना 'कल्पवृक्ष' से की गई है।
- सुलमुझी झलकति में अनुप्रास अलंकार है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(9) कीनैं हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन–रुपु मिलि, पानी मैं कौ लौनु।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायिका पूर्णतः नायक के लावण्य में फँस गई है। प्रस्तुत दोहे में वह अपनी इसी असमर्थता को व्यक्त कर रही है।

व्याख्या– मोहन से विमुख होने का उपदेश देने वाली सखी को संबोधित करते हुए नायिका कहती है कि हे सखी! मेरा मन तो मोहन के रूप–लावण्य में इस तरह निमग्न हो गया है जैसे कि पानी में नमक मिल जाता है। जिस प्रकार करोड़ों प्रयत्न करने पर भी नमकीन पानी में से नमक को अलग नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार मैं भी करोड़ों यत्न करके भी अपने मन को मोहन से विमुख नहीं कर पा रही हूँ। मोहन के लावण्य में डूबे हुए मेरे मन को अब कौन निकाले अर्थात् मेरा यह मन अब मोहन से विमुख हो ही नहीं सकता।

विशेष

- नायिका के एकनिष्ठ प्रेम और उसकी मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।
- 'कहि काढ़ै कौनु' में वृत्यानुप्रास एवं 'मन' में श्लेष अलंकार है।

(10) लाग्यो सुमन ह्वैहै सफलु, आतप–रोसु निवारि।
बारी, बारी आपनी, सींचि सुहृदता–बारि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायक के घर आने की बात जानकर नायिका उससे मिलने की उत्कंठा में व्याकुल हुए जा रही है।

व्याख्या– नायक अभी तक घर नहीं आया जिससे नायिका का मन अत्यंत व्याकुल हो रहा है। ऐसे में उसकी सखी उपवन में जाकर अप्रत्यक्ष रूप से नायक के आगमन की बात सुनाती जा रही है किंतु ऐसे कि जिससे कोई और उसकी बात न समझ सके। वह कहती है कि हे सखी तेरा मन जो निरंतर प्रेमी की ओर लगा हुआ है, उसी में ध्यानरत है; तुझे उसका मीठा फल अवश्य ही मिलेगा। तब तक तू इस प्रेमी रूपी वृक्ष को तीखी धूप से बचाकर रखने के लिए अपनी मीठी वाणी व आशा से सिंचित रख। यही तेरे लिए फलदायी होगा।

विशेष

- उक्ति वैचित्र्य की सृष्टि है।

टिप्पणी

टिप्पणी

- रूपक व अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(11) जिम–करि–मुँह–तरहरि पर्‌यौ, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय–तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भक्ति विषयक यह पद ईश्वर की भक्ति करने को प्रेरित करता है। इस पद में मनुष्य को ईश्वर की भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्या– भक्त अपने आप से कह रहा है कि तू नित्य ही मृत्यु रूपी हाथी के मुँह के नीचे पड़ा हुआ है। यह ध्यान में रखते हुए तू नित्य ही ईश्वर का स्मरण किया कर। अर्थात हमें सांसारिक मोह–माया व लालच को त्यागकर ईश्वर का गुणगान करना चाहिए।

विशेष

- यह पद भक्ति विषयक है जिसमें ईश्वर की आराधना पर बल दिया गया है।
- नरहरि शब्द के दो अर्थ हैं–नरसिंह भगवान व कवि के दीक्षागुरु नरहरिदास (श्लेष अलंकार)
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(12) तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी–समान।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– राधा ने कृष्ण को अन्य के साथ रमते हुए मान लिया है। कृष्ण उसके रूप–सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए उसे मना रहे हैं।

व्याख्या– राधा ने कृष्ण को अन्य के साथ रमते हुए मान लिया तो वे उसकी शंका का निवारण करते हुए कहते हैं कि हे राधे, तुम्हारा सौंदर्य तो ऐसा है कि जिसकी बराबरी इंद्र की अप्सरा 'उर्वशी' भी नहीं कर सकती। तुम तो आभूषण की भांति सदैव मेरे हृदय पर राज करती हो। ऐसे में मैं किसी और को किस प्रकार प्रेम कर सकता हूं। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा प्रेम किसी अन्य के लिए नहीं है।

विशेष

- नायिका के मान का सुंदर चित्रण है।
- 'उरबसी' शब्द के दो अर्थ हैं– 'इन्द्र की अप्सरा' ओर 'हृदय में बसी'। अतः यमक अलंकार है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(13) लौनैं मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि।
दूरी ह्वै लागन लगी, दियैं, दिठौना, दीठि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायिका की दीठी (नजर न लगने के लिए चेहरे पर लगाया जाने वाला काला टीका) के सौंदर्य का वर्णन इस पद में नायक द्वारा परिहास के रूप में किया गया है।

व्याख्या– नायक नायिका से कहता है कि संभवतः तुम्हारी सखी ने तुम्हें यह सोचकर दिठौना (नजर न लगने के लिए चेहरे पर लगाया जाने वाला काजल का टीका) लगाने की सलाह दी ताकि तुम्हारे सुंदर मुखड़े पर किसी की कुदृष्टि न पड़े। किंतु इस दिठौने से तो तुम्हारे चेहरे का सौंदर्य इतना बढ़ गया है कि अब तो इसका उल्टा असर होता मालूम हो रहा है। अब तो नजर और भी चेहरे से नहीं हट रही।

विशेष

- नायिका के मुख सौंदर्य का सरस वर्णन है।
- अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(14) कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिवी मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गींधे गीधहिं तारि।।

संदर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस पद में भक्त भगवान से स्वयं को तारने की प्रार्थना कर रहा है।

व्याख्या– भक्त भगवान से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे प्रभु आप दुखियों के संताप व दुख को हरने वाले हैं। इसी से आपको तारण कहा जाता है। अब देखना है कि आपका यह नाम कैसे रहेगा। आप पूर्व में संपाती नाम के गिद्ध का उद्धार कर चुके हैं लेकिन अब तो आपको मुझ जैसे अधम व पापी का भी उद्धार करना है जो आपको निरंतर पुकार रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि आपने ऐसा नहीं किया तो फिर आपको तारणहार कौन कहेगा?

विशेष

- पौराणिक प्रसंग का वर्णन करते हुए ईश्वर से गुहार लगाई गई है।
- अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में रचा गया दोहा छंद है।

(15) कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सब बात।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायक–नायिका गुरुजनों से भरे भवन में भीड़ में बैठे हैं तथा एक दूसरे से आँखों ही आँखों में इशारा करते हुए बातें कर रहे हैं।

व्याख्या– नायक और नायिका ऐसे भवन के भीतर बैठे हुए हैं जहाँ बड़े–बूढ़े सभी उपस्थित हैं, किंतु वहाँ भी नायक–नायिका एक–दूसरे से दूर बैठे होकर भी संकेत के माध्यम से सफलतापूर्वक संवाद कर रहे हैं। नायक संकेत से उसे अभिसार के लिए कहता है किंतु नायिका मना कर देती है। उसकी इस अदा पर वह रीझ उठता है जिससे नायिका झूठमूठ ही खीझने या अप्रसन्न होने का बहाना करती है। फिर दोनों ही आपस में सहमत होकर मेल कर लेते हैं। नायक जब इस बात पर हँस उठता है तो नायिका लज्जित हो उठती है।

विशेष

- नायक–नायिका के संकेत संवाद का ऐसा अद्‌भुत उदाहरण दुर्लभ है।
- श्रृंगार रस के संयोग पक्ष का चमत्कारिक अंकन है।
- अन्त्यानुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(16) पाई महावरू दैंन कौं, नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में नायिका के पैरों की सुंदरता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– नायिका की एड़ी में महावार लगाने आई नाइन उसके पैरों की सुंदरता (ललाई) देखकर भ्रम में पड़ गई है। नायिका के पैर ऐसे लाल हैं कि नाइन को लग रहा है कि वह महावरी (महावर–वटी, लाल रंग की गोली जिससे रंग निकलता है।) है; इसी से वह नायिका की एड़ी को ही भूलवश बार–बार मले जा रही है।

विशेष

- नायिका के पैरों का सुंदर वर्णन है।
- पुनरुक्ति अलंकार है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(17) नेहु न, नैननु, कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर–भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में नायिका की विरह दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– नायिका अपनी विरह दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि तुम्हारे विरह में मेरी आँखों से बहने वाला यह प्रेम रूपी तेल नहीं है बल्कि यह किसी बड़ी मुसीबत की तरह है। मेरी आँखें लगातार आँसुओं से भरी रहती हैं लेकिन फिर भी तुम्हें देखने की इनकी प्यास नहीं बुझती।

विशेष

- इस पद में 'स्नेहन' नामक एक क्रिया का उल्लेख किया गया है जिसका उल्लेख 'पंचकर्म' के अंतर्गत किया जाता है। यदि इसमें किसी प्रकार की त्रुटि हो जाए तो पानी से पेट भरा रहने पर भी रोगी की प्यास नहीं बुझती। नायिका की दशा की तुलना इसी से की गई है।
- नेहु न, नैननु में अनुप्रास तथा 'नेहु' शब्द में श्लेष अलंकार है जिसके दो अर्थ हैं–प्रेम व तेल
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

टिप्पणी

(18) नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 'बिहारी' ने राजा जयसिंह की अपनी नवयुवती पत्नी के प्रति अगाध आसक्ति को देखकर उन्हें राजकार्य के प्रति सचेत करने के लिए संकेत स्वरूप लिखा था।

व्याख्या– कवि नायक को 'भ्रमर' के रूप में लक्षित करता हुआ कहता है कि हे भ्रमर अभी तो यह कली ठीक से विकसित भी नहीं हुई है, न इसमें अभी पराग (पुष्प रज) है और न ही इसमें अभी मधुरता ही पूरी तरह विकसित हुई है। ऐसी स्थिति में भी तुम कली से इस प्रकार चिपटे हुए हो, फिर जब यह कली पूर्ण रूप से विकसित होकर पराग, मधुर रस, सौंदर्य व सुगंध से भर जाएगी तब तुम्हारी क्या दशा होगी? अर्थात् कवि राजा को संकेत करते हुए राजकार्य पर भी ध्यान देने का आग्रह करता है क्योंकि राजा के लिए अति आसक्ति उचित नहीं है।

विशेष

- अप्रत्यक्ष रूप से राजा को उसके कर्त्तव्यों की ओर ध्यान दिलाया गया है जिससे कवि की निडरता व स्पष्टवादिता का पता चलता है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(19) जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौ आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि।।

संदर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस पद में साधारण मनुष्य को ईश्वर के प्रति समर्पित होने तथा उसकी भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्या– भक्त स्वयं से कहता है कि जिस ईश्वर के प्राण रूप में विद्यमान होने के प्रभाव से तू इस संसार में जन्मा और इसको देख, सुन व जान पाया; तूने उसी परमात्मा स्वरूप को जानने की कोशिश नहीं की। ईश्वर की इससे अधिक उपेक्षा और क्या हो सकती है? यह ऐसा ही है कि हम अपनी आँखों से पूरी दुनिया देख सकते हैं लेकिन उन आँखों को स्वयं नहीं देख सकते। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें ईश्वर को भूलना नहीं चाहिए। नित्यप्रति उसका स्मरण करते रहना चाहिए।

विशेष

- नित्य प्रति ईश्वर स्मरण का आग्रह है।
- अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

(20) दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि।।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में सुख–दुःख को समान भाव से स्वीकार करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्या– विपत्ति काल में सहृदय मित्र उसे सांत्वना देते हुए कहता है कि सुख और दुख दोनों ही ईश्वर से प्राप्त होते हैं। शोक करने की बजाय ईश्वर के दिए दुख को भी धैर्यपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। इसलिए पीड़ा के दुर्दिन सहन करते हुए तू लंबी–लंबी साँसें न ले और प्रभु का नाम स्मरण कर। उनका नाम हमें सुख और दुख दोनों ही स्थितियों में समान भाव से लेते रहना चाहिए।

विशेष

- दुख या कष्ट धैर्यपूर्वक सहन करने की प्रेरणा दी गई है।
- अनुप्रास व यमक अलंकार का सुंदर प्रयोग है। दई शब्द दो स्थानों पर प्रयुक्त है तथा दोनों स्थानों पर उसका अर्थ भिन्न–भिन्न है–ईश्वर व दिया हुआ (यमक अलंकार)।
- ब्रज भाषा में लिखा गया दोहा छंद है।

1.6 घनानन्द

(1) लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी,
लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन दमक फैलि हियें मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जानि मैं।।1।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत छन्द 'रीति मुक्त' काव्य के सर्जक एवं 'प्रेम की पीर' के अमर गायक रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि घनानन्द द्वारा रचित है।

प्रसंग– घनानन्द मूलतः प्रेम के कवि हैं। उनके प्रेम का एकमात्र आधार सुजान नाम की उनकी प्रेमिका है। प्रस्तुत पद में घनानन्द अपनी प्रिया सुजान के मनोहारी सौन्दर्य का बखान कर रहे हैं।

व्याख्या– घनानन्द कहते हैं कि सुजान की चितवन अनेक रहस्यपूर्ण भावों से भरी रहती है। कभी उसकी दृष्टि में लज्जा–संकोच दिखाई देता है तो कभी प्रेम या कोई अन्य भाव। वह एक नर्तकी है। आंखों से विविध भाव देना वह अच्छी तरह से जानती है। उसकी चितवन जितनी मोहक है, उतनी ही मनोहारी हैं उसकी चंचल आंखे। इन चंचल आंखों से वह जब किसी को तिरछी दृष्टि से देखती है तो वह व्यक्ति बिल्कुल निहाल हो जाता है।

घनानन्द नेत्र सौन्दर्य के बाद सुजान के मुख–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सुजान का मस्तक उन्नत है और गौर वर्ण उसके मुख–सौन्दर्य को अद्वितीय आभा प्रदान करता है। उसका मुख सौन्दर्य आकर्षण की निधि है। उसके होठों पर मीठी मुस्कान देखकर ऐसा लगता है जैसे रस की वर्षा हो रही हो। हंसते–मुस्कराते हुए उसके दिखते हुए दांत बिल्कुल मोतियों की माला की तरह से लगते हैं। उसके

सौन्दर्य के साथ–साथ उसकी बातों के भी क्या कहने? उसकी प्रेम से पगी बातें प्रिय के सीधे दिल में उतर जाती हैं।

टिप्पणी

सुन्दर वस्त्रों व आभूषणों से सजी रूपसी सुजान आन्नद की निधि–सी लगती है अर्थात् उसे देखकर हर कोई आनन्द की अनुभूति से भर जाता है। जिस किसी को वह एक बार मुड़कर देख लेती है, उसके अंग–प्रत्यंग में कामनाओं की तरंगे उठने लगती है।

विशेष

- नायिका के रूप–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने बाह्य–सौन्दर्य के साथ–साथ भाव–सौन्दर्य और वाणी–सौन्दर्य तथा उसके प्रभाव का भी वर्णन किया है। सौन्दर्य–वर्णन में बहुत शालीनता है। इस प्रकार का संश्लिष्ट सौन्दर्य–वर्णन अन्य रीतिकालीन कवियों में उपलब्ध नहीं होता।
- ब्रज भाषा का प्रयोग है।
- 'लाजनि लपेटी, लसति लीलत लोता, दसन दमन, अंगनि अनंग में अनुप्रास अलंकार है।
- घनानन्द के सौन्दर्य–चित्रण पर डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सैना का वक्तव्य उल्लेखनीय है– ''घनानन्द के सौन्दर्य चित्रों में सुजान का रूप, उसका लावण्य, उसका यौवन, उसकी छवि, उसकी कांति, उसकी अंग–दीप्ति मानो साकार हो उठे हैं और ये सभी चित्र सहज सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं; जिनमें संश्लिष्टता है, मादकता है, अतिशयता है और सर्वाधिक भाव–प्रेषणीयता है।''

(2) झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हंसि बोलनि मैं छबि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।।2।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– घनानन्द अपनी प्रेयसी सुजान के प्रति अत्यन्त आसक्त हैं। प्रस्तुत छन्द में घनानन्द अपनी प्रेयसी सुजान के मुखमण्डल के अनुपम लावण्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नायिका का मुख दिव्य सौन्दर्य से परिपूर्ण है। वह मानो सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा है।

व्याख्या– घनानन्द कहते हैं कि नायिका का अत्यधिक सुन्दर और गोरा मुख चमक रहा है। उनके मनोरम चेहरे पर बड़ी–बड़ी आंखों को देखकर नेत्र तृप्त हो जाते हैं। कानों का स्पर्श करते हुए उसके विशाल लोचन प्रेम के मद से परिपूर्ण हैं। जब सुजान हंस–हंसकर बात करती है तो सुनने वालों को लगता है कि जैसे उन पर फूलों का वर्षा हो रही हो।

कवि आगे कहता है कि बालों की एक चंचल लट उसके गोरे गालों पर अठखेलियां करती हुई बड़ी मोहक लगती है। नायिका ने अपने सुन्दर गले में दो लड़वाली मोती की माला पहली है जो उसके आकर्षण को द्विगुणित कर रही है। सुजान के अंग–अंग से सौन्दर्य की तरंग–सी उठ रही है। उसके द्युतिमान सौन्दर्य को देखकर कभी–कभी तो ऐसा लगता है जैसे सौन्दर्य टपककर धरती पर गिर आयेगा।

टिप्पणी

विशेष

- घनानन्द ने सुजान का सौन्दर्य वर्णन निश्चित रूप से एक सम्मोहित प्रेमी की दृष्टि से किया है। यह सम्मोहन उनकी इस कविता के साथ–साथ उनकी अन्य श्रृंगारिक कविताओं में भी साफ–साफ दृष्टिगोचर होता है।
- घनानन्द के सौन्दर्य वर्णन की बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कामातुर प्रेमी की दृष्टि से सुजान के रूप–सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया। उनका वर्णन तो एक मुग्ध प्रेमी का है। उन्होंने नख–शिख वर्णन की परिपाटी न अपनाकर लावण्य की समग्रता अपनाई है।
- यह छन्द भाव पक्ष एवं कलापक्ष के समन्वित सौन्दर्य का अनुपम उदाहरण है। रस–श्रृंगार। गुण–माधुर्य। शब्द–शक्ति लक्षणा व छन्द सवैया है।

(3) पूरन प्रेम को मंत्र महापन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चाय चरित्र बिचित्रनि, यौ पचिकै रचि राखि बिसेख्यौ।,
ऐसो हियो हितपत्र पवित्र जु, आन कथा न कहूं अवरेख्यौ।
सो घनआनंद जान अजान लौं, टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ।।3।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– घनानन्द सुजान से एकनिष्ठ प्रेम करते हैं। वह उसके रूप और प्रेम के पाश में बंध जाते हैं; किन्तु जब वे अपने प्रेम की अभिव्यक्ति एक पत्र के द्वारा करते हैं तो उन्हें निराशा हाथ लगती है।

व्याख्या– घनानन्द इस पद्य में सुजान को उपालम्भ देते हुए कहते हैं कि उन्होंने तो उसे पूर्ण प्रेम के संकल्प को अच्छी तरह विचारकर, पूर्ण शुद्धता के साथ पत्र के रूप में लिखा था। जिस प्रिया से वे इतना प्रेम करते हों, उसके सौन्दर्य और विचित्र व्यवहार ने उन्हें परेशान कर दिया है। वे समझ नहीं पा रहे हैं कि पहले प्रेम दर्शाने वाली सुजान अब उनके प्रति इतनी उदासीन क्यों हो गई है?

जिस प्रेम पत्र में उन्होंने अपना हृदय निकालकर रख दिया था, उस प्रेम पत्र को सुजान ने एक अनजान की भांति अपने हाथ में पकड़ा और बिना पढ़े ही उसके टुकड़े–टुकड़े कर दिये। यदि प्रिया मेरा पत्र पढ़ लेती तो मेरे पवित्र और एकनिष्ठ प्रेम को समझ पाती। उन्होंने तो अपने पत्र में प्रिया के प्रति अपना अटूट प्रेम ही व्यकत किया था। एकनिष्ठ प्रेम के अतिरिक्त उसमें कोई अन्य बात थी ही नहीं लेकिन अफसोस की बात है कि प्रिया ने बिना पढ़े ही निष्ठुरतापूर्वक उनके पत्र को फाड़ डाला।

विशेष

- घनानन्द ने अपने एकनिष्ठ प्रेम और प्रिया की निष्ठुरता का मार्मिक वर्णन किया है। ऐसे ही वर्णनों के कारण उन्हें प्रेम की पीड़ा का गायक कहा गया है।
- अनुप्रास अलंकार।
- ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
- 'टूक कियो' मुहावरे का सार्थक प्रयोग।
- सवैया छन्द प्रयुक्त है।

टिप्पणी

(4) हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कुछ मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कों लाय कलंक निरास हैव कायर त्यागत प्रानै।।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।।4।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– घनानन्द का प्रेम सफल न हो सका क्योंकि बाद में प्रेमिका सुजान उनके प्रति उदासीन हो गई थी। प्रेम वियोग में परिणत हो गया। इस छन्द में कवि ने अपने प्रेम की उच्चता प्रतिपादित करते हुए उसके चरम औदात्य की उद्घोषणा की है।

व्याख्या– घनानन्द कहते हैं कि जल से बिछुड़ जाने पर मछली के लिए जीवित रहना असंभव हो जाता है। वह हताशा में प्राण त्याग देती है। मछली की ऐसी विवशता मेरी व्याकुलता का सामना नहीं कर सकती। वह तो अपने स्नेह–प्रेम को कलंकित कर देती है क्योंकि प्राण त्याग देना प्रेम की उच्चता का प्रमाण नहीं है। प्रेम का उत्कृष्ट रूप तो प्रिय से बिछुड़कर विरह की पीड़ा सहन करने में है। प्रेम की उदात्तता जीवित रहने में है, मर जाने में नहीं। वियोग में प्राण त्याग देना कायरतापूर्ण कृत्य ही कहा जायेगा।

हताशा में प्राण त्याग देने वाली मछली को तो जड़ ही कहा जा सकता है। प्राण त्याग कर वह स्वयं को प्रेम बलिदानी समझती है। जबकि सच तो यह है कि वह मूर्ख है। वह प्रेम की उच्च रीति को क्या समझे? बह तो जलरूपी प्रियतम के हाथों में पड़े रहने तक ही अर्थात् संयोगावस्था को ही अपने प्रेम और जीवन का आधार मानती है, वियोग को नहीं। वह तो वियोग सहने का दम–खम ही नहीं रखती। वियोग सहन करना भी नहीं चाहती। वह नहीं जानती की प्रेम–रीति और निष्ठा वियोग द्वारा ही पहचानी जाती है।

छन्द की अन्तिम पंक्ति में घनानन्द कहते हैं कि प्रिय के वियोग में उनके मन की जो दशा–अन्तर्दशा है, जिस विरह व्यथा की वेदना उन्हें सहनी पड़ रही है, उसे प्रिय के अतिरिक्त कोई और नहीं जान सकता। सुजान उनके प्राणों की प्राण अर्थात् स्वामिनी है। एक वही उनके प्राणों में छिपी अन्तर्व्यथा और प्रेम को समझ सकती है।

विशेष

- कवि ने प्रेम–विषयक अपना आदर्श व्यक्त किया है। वियोग में प्राण त्याग देने को कायरतापूर्ण कृत्य बताया है। विरह प्रेम की कसौटी है। जो इस कसौटी पर खरा उतरता है, वहीं सच्चा प्रेमी सिद्ध होता है। सूर ने भी कहा है– 'ऊधौ विरही प्रेम करे'।
- ब्रज भाषा, सवैया छन्द, प्रसाद गुण व अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(5) अंतर उदेग दाह, आँखिन प्रबाह आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हाँसिबो न रोयबौ हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक लहनि है।
जान प्योर प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह विषम दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।।5।।

टिप्पणी

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– घनानन्द वियोगानुभूति को जिस भाषा में प्रस्तुत करते हैं, वह अपनी सांगीतिकता और करुणा के प्रभाव में रीतिकालीन कविता से प्राप्त अन्य प्रभावों को काफी पीछे छोड़ देती है। प्रस्तुत काव्य–पंक्तियों में कवि ने वियोगावस्था में अपनी अनुभूति का मार्मिक अंकन किया है।

व्याख्या– घनानन्द कहते हैं कि वियोग में उनके हृदय में वेदना की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है लेकिन दूसरी ओर उनकी आंखों से अश्रु प्रवाह हो रहा है। विचित्र बात तो यह है कि अश्रु–प्रवाह अग्नि को शान्त नहीं कर पा रहा है। अश्रु प्रवाह में आकंठ डूबने पर भी वियोगाग्नि ज्यों की त्यों है। बारिश में भीगना भी अपनी पीड़ा की अग्नि को बढ़ाने जैसा है।

अपनी विचित्र मनःस्थिति का वर्णन करते हुए घनानन्द कहते हैं कि वे न सोये हुए रहते हैं और न जागते हुए। न हंसते हुए रहते हैं और न रोते हुए। वे बीच में फंसकर रह गये हैं। उनकी चेतना लुप्त–सी हो गई है और वे अपने आपमें ही खोये खोये से रहते हैं।

घनानन्द अपनी प्रियतमा सुजान को अपनी मनःस्थिति से मन ही मन अवगत कराते हुए कहते हैं कि उनके प्राण तो सुजान में ही बसते हैं और वे ही उनकी विचित्र दशा को समझ सकती हैं। यद्यपि यह भी सच है कि इस विरहावस्था में उनकी जो दशा हो गई है, वह ठीक–ठीक शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। यह दशा तो गूंगे की मनःस्थिति की भांति है जिसे वह वाणी से अभिव्यक्त कर ही नहीं पाता।

घनानन्द अपनी असह्य स्थिति को व्यक्त करते हुए आगे कहते हैं कि इस समय वे जीवन और मृत्यु के बीच की स्थिति में हैं। मौत के बिना ही उनकी स्थिति मरणासन्न जैसी हो गई है। पता नहीं विधाता ने वियोगी प्रेमी की जीवन–स्थिति ऐसी दुःखमय क्यों बनाया? उसे विधाता ने इतना अवश और किंकर्त्तव्यविमूढ़ क्यों बना दिया।

विशेष

- 'घायल की गति घायल जाने' वाली बात छंद की भावभूमि से साम्य रखती है।
- शब्द–योजना बहुत सुन्दर है। ब्रज भाषा और छन्द की दृष्टि से व्यक्ति का प्रयोग है।
- रस की दृष्टि से विप्रलम्भ श्रृंगार व्यंजित है। प्रसाद गुण और 'खोय खोय' में पुनरुक्ति तथा 'विरह विषम' में अनुप्रास अलंकार है।

(6) परकाजहि देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनंद जीवनदायक हौ कछू मेरियौ पीरं हियें परसौ।
कबहूँ व बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूं लै बरसौ।।6।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि घनानन्द के काव्य की प्रमुख विशेषता प्रेम की पीड़ा का अमर गायन है। प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में घनानन्द मेघ के माध्यम से अपनी प्रेयसी सुजान के पास संदेश भेजते हैं।

टिप्पणी

व्याख्या– घनानन्द मेघ को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मेघ! तुम तो दूसरों का उपकार करने के लिए ही शरीर धारण किये घूमते हो। इसीलिए तुम्हारा एक नाम पर्जन्य है जिसका अर्थ है दूसरों के लिए जन्म धारण करने वाला। तुम वास्तव में ही अपने नाम के अनुरूप और सब जगह अपनी निधि का समान रूप से वितरण करके अपनी सदाराशता का परिचय देते हो।

हे आनन्द प्रदान करने वाले मेघ! तुम सच्चे अर्थों में जीवनदायक हो क्योंकि तुम्हारे जल से ही पेड़–पौधों और कृषि को जीवन और पोषण मिलता है। वनस्पति के अभाव में मनुष्य का जीवन–यापन संभव नहीं है। संसार की व्यथा और आवश्यकता को समझकर उसका निराकरण करने वाले मेघ! कभी मेरे हृदय की पीड़ा को भी स्पर्श करो। मेरे तृप्त हृदय को शीतल करो और साथ मेरे लिए संदेशवाहक का काम कर दो।

तुम्हारा काम जल को इधर से उधर जाकर बरसाना तो है ही, कभी मेरे आंसुओं को ले जाकर उस विश्वासघाती सुजान के आंगन में बरसा दो। इससे संभव है कि वह मेरे आंसुओं को अपने आंगन में देखकर पिघल जाये और अपने अनन्य प्रेमी की पीड़ा को समझ ले।

विशेष

- इस कविता पर कालिदास के 'मेघदूत' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। मेघदूत का नायक यक्ष प्रियतमा के वियोग से संतृप्त होकर मेघ के हाथ ही संदेश भेजता है। कालिदास ने लिखा है–

  धूमः ज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः।
  सन्देशार्थः क्वपटुकप्णै प्राणिभिः प्रापणीयाः
  इलौत्सुक्याद परिगणयन् गुह्यकस्ते यया चे
  कामार्न्ता हि प्रकृति कृपष्णश्चेतनाचेतनेषु।

- भाषा– ब्रज! शैली– मुक्तक, अलंकार–अनुप्रास व मानवीकरण, रस–विप्र लम्भ श्रृंगार, गुण– माधुर्य, छन्द–सवैया।

(7) चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहे द्वै।
ज्ञान हूं ते आगें जाकी पदवी परम ऊंची,
रस उपजावै ता मैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनआनंद अनोखो यह प्रेम पंथ,
भूल ते चलत रहैं सुधि के थकित ह्वै।
बुरौ जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कै छाले परैं प्यारे नेह नाँव छ्वै।।7।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रेम और वेदना के अनन्य गायक घनानन्द ने इस पद्य में अपना प्रेम–दर्शन व्यक्त किया है। उन्होंने प्रेम के उदात्त स्वरूप का निरूपण किया है।

व्याख्या– घनानन्द कहते हैं कि प्राकृतिक जगत में एक आदर्श प्रेम–युग्म है चन्दा और चकोर। चकोर चन्द्रमा से प्रेम करता है और चन्द्रमा भी उसी के लिए अपने

टिप्पणी

शरीर को धारण करता है। दोनों एक दूसरे के लिए समर्पण भाव रखते हैं। मन से दोनों एक है दिखने में ही दोनों अलग–अलग दिखते हैं। प्रेम वही परिपुष्ट होता है जहां वह उभयपक्षीय हो। एकपक्षीय प्रेम कभी सफल नहीं होता। उसे केवल वेदना ही प्राप्त होती है।

घनानन्द प्रेम के माहात्म्य का बखान करते हुए आगे कहते हैं कि प्रेम की पदवी ज्ञान से भी बहुत ऊंची है। ज्ञान आरोपित और अर्जित होता है जबकि प्रेम स्वानुभूत व सहज होता है। ज्ञान शुष्क होता है जबकि प्रेम रस उत्पन्न करने वाला होता है। प्रेम एकनिष्ठ और बड़ा उद्दात होता है। उसमें भोगी का भोग भी नष्ट हो जाता है। सच्चा प्रेम हमेशा एक से ही होता है। वह मनुष्य की भोग वृत्ति को समाप्त कर देता है क्योंकि भोग में शारीरिक सुख महत्वपूर्ण होता है, जबकि वास्तविक प्रेम में आत्मा मुख्य रहती है।

घनानन्द प्रेम–वैषम्य का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं कि यह प्रेम का रास्ता भी अनोखा है। इस रास्ते पर चलने वाले यदि अपना चातुर्य, हित–अनहित आदि सब कुछ भूल जाते हैं तो निर्बाध रूप से चलते रहते हैं और यदि ये सब बुद्धिपरक चीजों का विश्लेषण करते हुए उन्हें याद रखते हैं तो प्रेम–मार्ग पर आगे बढ़ने में उन्हें कठिनाई होती है और वे थकहार कर बैठ जाते हैं। प्रेम की रीति ज्ञान–बुद्धि से परे अनुभव की वस्तु है। बुरा मत मानो और कहीं से प्रेम की सीख ले लो। प्रेम तो वह है कि जिसमें प्रिय का अनवरत नाम लेते–लेते जीभ में छाले पड़ जाते हैं।

विशेष

- यह पद्य कवि के प्रेम–दर्शन को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। कवि प्रेम को ज्ञान से श्रेष्ठ मानता है। प्रेम के सन्दर्भ में वह चांद और चकोर को आदर्श मानता है। उसके अनुसार दोनों का प्रेम उभय पक्षीय है। यदि चकोर चन्द्रमा की तरफ एकटक देखता रहता है तो चन्द्रमा भी उसके लिए ही बना है।
- ज्ञान दूं ते आगे जाकी पदवी परम ऊंची पंक्ति से मिलती–जुलती बात कबीर ने भी कही है–

  पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
  ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।।

  इसी प्रकार 'रसना के छालैं परै प्यारे नेह नोव छ्वै' से साम्य रखती उनकी पंक्तियां देखिये– ' जीभड़िया छाला पड़ा नोव पुकारि पुकारि'।
- भाषा–ब्रज, अलंकार– अनुप्रास व विरोधाभास, गुण– प्रसाद व छन्द– कवित्त छन्द प्रयुक्त हुआ है। रस की दृष्टि से श्रृंगार रस है।

(8) अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनी भीरौं।
आगि जरौं पानी परौं, अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं।।
जौ घनआनंद ऐसी रुचि, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं।।8।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में घनानन्द की विरह–वेदना का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। कभी प्रिय के रूप–सौन्दर्य का ध्यान आता है तो कभी उससे संबंधित स्मृतियां मस्तिष्क में

कौंध जाती है। कभी–कभी विरह–वेदना इतनी असहनीय हो जाती है कि प्रेमी चीत्कार कर उठता है।

टिप्पणी

व्याख्या– घनानन्द सुजान से कहते हैं कि तुम मेरे अन्तर्मन से बसी हो तो शरीर का अंत भी कैसे करूं? तुम तो आंखों में बसकर अब मुंह फेर बैठी हो। इन अभागिन आंखों को फाड़कर मैं संसार में कहां दौड़–भाग करूं?

जीवन जीना बड़ा असहय हो चला है। समझ में नहीं आता कि अब मैं कैसे अपने जीवन का अन्त करूं? और यदि जीना ही है तो हृदय में कैसे धैर्य धारण करूं? यदि आगे का जीवन इसी तरह दुखमय रहना है तो इसको दूर करने में मैं स्वयं को निरुपाय अनुभव कर रहा हूं। यदि शरीर में कहीं पीड़ा होता है तो औषधियों द्वारा उसका उपचार संभव है। प्राणों की पीर का कोई उपचार नहीं। उसे तो मृत्युपर्यन्त झेलना ही पड़ता है।

पद्य की अन्तिम पंक्ति में कवि अपनी समस्या के समाधान के लिए ईश्वर को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे हरि मैं तुम्हें कहा पाऊं? तुम्हें कैसे पाऊं? तुम्हें पाने के लिए धरती में धंस जाऊं या आकाश को चीर डालूं।

विशेष

- कवि ने प्रेम की असहज वेदना का वर्णन किया है। विरह–वेदना जनित छटपटाहट का इस पद्य में मार्मिक अंकन है।
- भाषा ब्रज, गुण–प्रसाद और छन्द की दृष्टि से सवैया छन्द का प्रयोग हुआ है।

(9) मड़राती रहै धुनि कानन मैं अजसै उपराजिबोई सी करै।
मनमोहन सोहन जोहन की लखि लाख समीजिबोई सी करै।
घनआनंद तीषियै ताननि सो सर से सुर साजिबोई सी करै।
कब की यह बैरिनि बाँसुरिया बिन बाजेहू बाजिबोई सी करै।।9।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद्य में घनानन्द ने बांसुरी के प्रति गोपियों के मनोभावों का वर्णन किया है। गोपियां कृष्ण की बांसुरी को उपालम्भ दे रही हैं क्योंकि वही उन्हें लोकनिन्दा की भागीदार बनाती है।

व्याख्या– गोपियां कहती हैं कि कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि जंगल में गूंजती रहती है जिससे वे समाज के तानों के बावजूद अपने मनमोहन से मिलने के लिए आतुर हो उठती हैं। समाज के ताने उन्हें बाणों के समान चुभते हैं, फिर भी वे बांसुरी की धुनि सुनकर स्वयं को कृष्ण के पास जाने से रोक नहीं पाती हैं। अगर यह बांसुरी नहीं बजती है तो भी वे बेचैन हो जाती है क्योंकि यही बांसुरी ही उन्हें कृष्ण की उपस्थिति का बोध कराती है।

इस प्रकार यह बांसुरी उनकी बैरिन से बन गई है। यह बांसुरी सदा कृष्ण के समीप रहती है और वे उनसे दूर। इसकी ध्वनि सुनकर वे कृष्ण से मिलने जाती भी हैं तो समाज की दृष्टि उन पर ही लगी रहती है। इसका डर हमेशा उन पर बना रहता है।

विशेष

- घनानन्द ने सुजान की निष्ठुरता से निराश होकर अन्त में भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी। वे मथुरा जाकर कृष्ण–प्रेम के गीत गाने लग थे। प्रस्तुत पद्य उसी कृष्ण–भक्ति का उदाहरण है।

टिप्पणी

- अन्य कई गीतों व कविताओं में गोपियों ने बांसुरी के प्रति अपना ईर्ष्या व द्वेष भाव व्यक्त किया है।
- भाषा ब्रज, गुण प्रसाद और छन्द की दृष्टि से सवैया छन्द का प्रयोग है। अलंकारों की दृष्टि से उपमा व अनुप्रास का प्रयोग है।

(10) घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन–
आनंद आरति–राती साधनि मरति हैं।
जीवनअधार जान–रूप के अधार बिन,
व्याकुल बिकारभरी खरी सु जरति हैं।
अतन–जनत तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर भीर क्यों हूं धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध आँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं।।10।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में घनानन्द ने विरह की दशा में अपने नेत्रों की व्याकुलता और भाव–शून्यता का अंकन किया है।

व्याख्या– घनानन्द कह रहे हैं कि जो आंखे पहले प्रिय का रूप दर्शन करती थीं वे अब प्रिय–दर्शन के अभाव में घबरायी–सी रहती हैं। आशा–निराशा के मध्य–झूलती रहती हैं। आशा बहुत जल्दी क्षीण हो जाती है, फिर तो ये आंखे–प्रेमावलम्बन के बिना निर्जीव–सी हो जाती हैं। सुजान ही इनके जीवन के आधार थे। उन्हीं को देखकर ये आंखे प्रसन्न रहती थी। सुजान का रूप–दर्शन ही इन आंखों का एकमात्र ध्येय होता था लेकिन उन्हें देखे बिना ये हर समय व्याकुल और तपन से युक्त रहती है। वे बहुत प्रयत्नों से इन आंखों को समझाने का प्रयास करते हैं।

प्रिय की दी हुई पीड़ा भी उनकी तरह बहुत मधुर है, यह कहकर स्वयं को धैर्य धारण करने का पाठ पढ़ाते हैं। लेकिन ये आंखे हैं कि किसी तरह समझाने से भी समझती नहीं। इन आंखों को जैसे असाध्य रोग हो गया है। इन बेचारी आंखों को उनका भोज्यपदार्थ (सुजान का रूप–दर्शन) नहीं मिल रहा है। अतः इन्हें तो नित्य उपवास ही करना पड़ रहा है।

विशेष

- वियोग की स्थिति में समूचा तन–मन अनुत्साह और संताप के कारण तेजहीन हो जाता है– इसका चित्रांकन है और आंखों की दुखावस्था का वर्णन भी।
- भाषा ब्रज है। अनुप्रास अलंकार की छटां सर्वत्र दर्शनीय है। छन्द की दृष्टि से कवित्त छन्द का प्रयोग है। विप्रलम्भ श्रृंगार है।

(11) आसहि अकास–मधि अवधि–गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सौ यहै।
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप–ओर,
लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै।

टिप्पणी

अचिरजमई मोहिं भई घनआनंद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह–समीर की झकोरनि अधीर नेह–
नीर भीज्यौं जीव तऊ गुड़ी लौं उड्यौ रहे।।11।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में घनानन्द ने अपने मन की तुलना पतंग से करके एक सांग रूपक बांधा है। प्रिय की निष्ठुरता और प्रेमी की विरहजन्य आकुलता को व्यंजित करना ही प्रयोजन है।

व्याख्या– घनानन्द कह रहे हैं कि हे सुजान! आपने आशा रूपी आकाश में समय सीमा रूपी डोरी से मेरे मन को पतंग की भांति उड़ा दिया। पतंग मनोविनोद के लिए उड़ाई जाती है, आपने भी अपना मन बहलाने के लिए मेरे जी को आशा रूपी आकाश में उड़ा दिया। आपके लिए तो मैं केवल एक मन बहलाव का साधन मात्र था। पतंग उड़ाने वाला पतंग की डोर को आवश्यकतानुसार ऊपर–नीचे करता रहता है। विकट परिस्थितियों में वह पतंग की डोर को खींचते हुए नीचे करके सुरक्षित उतार लेता है।

लेकिन हे प्रिय सुजान! आपसे मेरी दीन दशा क वर्णन कौन करें। आप तो बिल्कुल कठोर हो। बिना किसी सहारे के मेरी मन की पतंग को आपने आकाश में निराधार छोड़ रखा है। कभी आप इसे अपनी ओर खींचती ही नहीं। पतंग को खींचते ही नहीं। पतंग नीचे खींची जाती है तो पतंग को खींचने वाले का सामीप्य सुख प्राप्त होता है, किन्तु आपका सामीप्य तो मेरी मन पतंग को किंचित मात्र भी नहीं मिल रहा है।

पतंग प्रायः हाथ से जुड़ी रहती है। उड़ाने वाला पतंग की डोर अपने हाथ में संभालकर रखता है लेकिन सुजान के संबंध में ऐसा नहीं है। उसने तो मेरे जी की पतंग को बहुत ऊपर उड़ा तो दिया है, लेकिन कभी अपने समीप नहीं आने दिया। विरहरूपी वायु इस पतंग को अपने वेग से फाड़ रही है, नष्ट कर रही है। मेरे अश्रु से यह पतंग भीग भी गई अर्थात आंधी और बरसात के कारण अब मौसम पतंग बुड़ाने के लिए बिल्कुल अनुकूल नहीं है। लेकिन सुजान है कि निष्ठुरतापूर्वक पतंग को उड़ाये ही जा रही हैं।

विशेष

- 'आसहि अकास मधि अवधि गुवै' आदि के माध्यम से सांग रूपक बांधा गया है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास अलंकार का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।
- सुजान को उपालम्भ देते हुए भी घनानन्द का उसके प्रति अनुराग कम नहीं होता। सुजान की समस्त निष्ठुरता के बावजूद कवि उनके नाम के साथ 'लाड़िले' विशेषण लगाना नहीं भूलता।
- ब्रज भाषा, प्रसाद गुण और कवित्त छन्द का प्रयोग है।

(12) राति–द्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुःख,
कहा कहाँ गति या बियोग बजमारे की।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछू न बसाति यौं उपाव–बन–हारे की।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,

जूझिहै निकसि टेक गहें पनधारे की।
हेत–खेत–धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो तब,
चलैगी कहानी घनआनंद तिहारे की।।12।।

टिप्पणी

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस छन्द में कवि ने वियोगावस्था की चरम सीमा दर्शाया है। प्रेम से तो भागा नहीं जा सकता, पर मरणान्तक कष्ट अन्त में केवल यही एक रास्ता शेष रहता है कि विरही अपने प्राण त्याग दे। कवि की दृष्टि में यह भी ठीक नहीं है क्योंकि मृत्यु के पश्चात् वह तो कष्टों से मुक्त हो जायेगा, पर प्रिय की संसार में बड़ी बदनामी हो जायेगी।

व्याख्या– कवि घनानन्द कहते हैं कि मैं विरह में अपनी इस करुण दशा का क्या वर्णन करू जो रात–दिन अपनी सेना सजाये मुझे दुखाग्नि से जलाता रहता है। मैं इस विरह रूपी शत्रु के घोर अत्याचारों का कहां तक वर्णन करूं। इसने तो चालक दुश्मन की भांति अचानक ही इस बेचारे जीव को अकेला जानकर चारों ओर से घेर लिया है। मैं इस जीवन को अपने वश में करने के लिए अनेक उपाय करता रहा, किन्तु मेरे सारे प्रयास विफल हो गये हैं। मेरे जीव पर मेरा वश नहीं चला।

आगे कवि सुजान को सम्बोधित करते हुए कहता है कि यदि तुम मेरी पुकार सुनकर भी मेरे मन के अनुरूप कार्य नहीं करोगी तो प्रेम की निष्ठा का पालन करते हुए प्रिय रूपी मैदान से निकलते हुए आखिर एक यौद्धा की भांति जूझते हुए मेरे प्राण–पखेरू उड़ जायेंगे। मेरे प्राण प्रेम रूपी रंगक्षेत्र की धूल में चूर–चूर होकर बिखर जायेंगे। तब हे आनन्द प्रदायक प्रियतमा! तुम्हारे निष्ठुर व्यवहार का पता सबको चल जायेगा। तुम्हें अपयश की प्राप्ति होगी और मेरी कहानी मेरी मौत के साथ समाप्त नहीं होगी। उसकी चर्चा मेरी मौत के बाद भी चलती रहेगी।

विशेष

- प्रेम की अत्यधिक सात्विक और साधनामयी स्थिति का चित्रण किया गया है। विरही की विवशता, असहायावस्था व दीनता के साथ–साथ उसकी उत्सर्ग भावना की दृढ़ता द्रष्टव्य है।
- वेदना की सम्प्रेषणीयता बढाने के लिए मुहावरों का प्रयोग आकर्षक बन पड़ा है–
  'लियो घेरि औचक' कछु न बसति, लागौं न गुहार,
  'जूझिहै', चूर–चूर हैव', 'कहानी चलेगी'।'
- भाषा–ब्रज। छन्द–कवित्त। रस–विप्रलम्भ श्रृंगार, अलंकार– अनुप्रास–सांगरूपक। शब्द–शक्ति : लक्षणा।

(13) कंत रमैं उर–अंतर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुख रासि निरंतर।
दंत रहैं गहें आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनंद रैन–दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन–राति, बखाने तें जाय परै दिन–राति को अंतर।।13।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रिय संयोगकाल में तो निकट रहता ही है वियोग की अवस्था में भी सदैव समीप बना रहता है। वियोग में तो वह स्थायी रूप से हृदय में ही निवास करता है।

व्याख्या– कवि एक सहज प्रश्न करता है कि वियोग के समय भी प्रियतम हृदय में ही बसा रहता है, फिर भी यह हृदय सुख का अनुभव क्यों नहीं करता? स्वच्छन्द स्वभाव की प्रिया सुजान के कारण मुझे जितना और जिस तरह का दुःख सहन करना पड़ रहा है, उसे देखकर वे व्यक्ति भी दांतों तले उंगली दबा लेते हैं जो वियोग की अग्नि में तप्त होकर उसी के आश्रित हो गये हैं। मेरी वियोग–वेदना का अनुभव भी वे ही व्यक्ति कर सकते हैं। कुछ भाव अनुमान या वर्णन से समझ में नहीं आते, अपितु स्वयं भोगने से ही समझ में आते हैं। यदि मेरे इस दुःख का वर्णन किया जायेगा तो वास्तविकता और कथन में दिन–रात का अंतर हो जायेगा क्योंकि दुःख तो केवल अनुभव से ही ज्ञात हो सकता है।

विशेष

- 'जाने वेई दिन–राति'... पंक्ति बहुत अर्थगर्भित है। कहा भी गया है– 'घायल की गति घायल जानै, और न जाने कोई।'
- मुहावरों का बड़ा प्रभावी प्रयोग है– 'हृदय में रमना', दांतों तले उंगली दबाना।'
- 'कंत रमैं .... निरंतर' में विरोधाभास अलंकार।
- विप्रलम्भ–श्रृंगार।
- सवैया छन्द प्रयुक्त है।

(14) तीछन ईछन बान बखान सो, पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप मायल घायल चोप बढ़ावत।
यौं घनआनंद छावत भावत जान–सजीवन–ओर तैं आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहि तौ मेरे कबित्त बनावत।।14।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत छन्द में घनानन्द ने अपनी प्रेयसी सुजान की निष्ठुरता का अलंकृत शैली में वर्णन किया है।

व्याख्या– घनानन्द कहते हैं सुजान का व्यवहार और उसके कार्य–कलाप एक चतुर शिकार समान है। जैसे एक चतुर शिकारी अपने लक्ष्य पर सान चढ़ाकर पैने किये गये तीखे–तीखे तीर उसको घायल कर देता है, ऐसे ही सुजान भी अपने प्रेमीजनों पर अपनी चितवन के तीखे–तीखे तीर चलाकर उन्हें घायल कर देती है। शिकारी प्रायः नदी पर पानी पीने आये प्राणी पर निशाना लगाते हैं क्योंकि उस समय वह थोड़ा असावधान और प्यास के कारण अशक्त होता है। उसी प्रकार सुजान भी उन लोगों पर अपनी चितवन के तीखे बाण चलाती है, जो उसकी चितवन के प्यासे हैं। सुजान उसकी प्यास दूर करने के स्थान पर उन पर अपने नयनों के बाण चलाकर उन्हें मरणासन्न– सा बनाकर अपने अधीन कर लेती है।

सुजान स्वतंत्र स्वभाव की है। उसे जो भाता है, वह वही करती है। उन पर (घनानन्द पर) उसने ऐसे बाण चलाये हुए हैं कि वे आसक्ति और पीड़ा से बाहर निकल ही नहीं पा रहे। उनकी पीड़ा अनायास ही कविताओं में व्यक्त हो जाती है।

दूसरे रचनाकार जहां बहुत प्रयत्न पूर्वक कविता रचना करते हैं, वहीं दूसरी ओर घनानन्द को इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उनके कवित्त तो स्वयमेव निर्मित हो जाते हैं।

विशेष

- सुजान की निष्ठुरता अभिव्यंजित है।
- 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत' पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है। यह घनानन्द की रचना–प्रक्रिया पर प्रकाश डालती है। प्रयत्न–पूर्वक बनायी गई कविता से स्वयमेव बन गई कविता अधिक प्रभावशाली होती है।
- छन्द की शब्द–योजना माधुर्यगुण सम्पन्न व संगीतिक तत्वों से परिपूर्ण है।

(15) जहाँ ते पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पैन मनौ।
आतुर न होहु हाहा नेकु पेट छोरि बैठो,
मोहिं वा बिसासी को हो ब्यौरो बूझिबे घनौ।
हाय निरदई को हमारी सुधि कैसे आई
कौन बिधि दीनी पाती दनी जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ
ताके गुनगन घन आनन्द कहा गनौ।।15।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रियतम की निष्ठुरता को ही अपनी नियति मान चुका प्रेमी जब प्रियतम के दूत को अपने द्वार पर देखता है तो उसे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रहती।

व्याख्या– कवि घनानन्द दूत से कहते हैं कि जहां से आप पधारे हैं, वहां के पथ पर मेरे नेत्र बिछे रहे हैं। वहां मेरी प्रियतमा रहती हैं और जहां भी वे आती जाती हैं, वहीं मेरे नेत्र बिछ जाते रहे हैं। अतः हे दूत! आप जाने की शीघ्रता बिल्कुल न करें। आप शान्त चित्त होकर बैठें। मुझे आपसे अपनी प्रियतमा के बारे में बहुत पूछना है। मैं जानता हूं कि सुजान मेरे प्रति वफादार या स्नेहिल नहीं है। वे मेरे बारे में बहुत सकारात्मक बात तो नहीं करती होंगी। सच तो यह है कि उन्हें विश्वासघाती ही कहा जा सकता है। उन्होंने मेरा प्यार और विश्वास जीता और फिर मुझे अकारण ही स्वयं से दूर करके वियोग की अग्नि में जलने को मजबूर कर दिया।

आश्चर्य तो इस बात का है कि उस निष्ठुर को हमारी याद कैसे आई कि उसने न केवल हमारे पास अपना सन्देशवाहक भेजा, अपितु अपने हाथ से लिखा पत्र भी दिया। शायद उन्होंने मेरी दीन दशा पर तरस खाकर ऐसा किया। वे तो झूठ की सच्चाई से ही छकी और प्रेम के कच्चेपन में ही पकी हुई हैं। अर्थात् सुजान की बातों की कोई विश्वसनीयता नहीं है। अगर उनमें सच्चाई है तो केवल झूठ की। उनके प्रेम में जरा भी परिपक्वता नहीं है। वे इतने अधिक गुणों (अवगुणों) की भण्डार हैं कि उनकी गणना कैसे की जाये।

विशेष

- सुजान के लिए 'विसासी' शब्द प्रयोग घनानन्द ने बहुत से छन्दों में किया है जिसका अर्थ है विश्वासघाती। इससे प्रतीत होता है कि सुजान ने आरंभ में उनके प्रेम को स्वीकार कर अपनी ओर से सकारात्मक प्रतिक्रियाएं दी होंगी। बाद में उसने उनसे नाता तोड़ दिया।

- छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों के भावों से स्पष्ट है कि अब सुजान के प्रति घनानन्द का आसक्त होना उसके हृदय की विवशता है, किन्तु वे सुजान की वास्तविकता को समझ चुके हैं। यह अलग बात है कि सुजान के प्रति उनकी आसक्ति है कि छूटती ही नहीं।
- भाषा–ब्रज। शैली–उपालम्भ। छन्द– कवित्त। विलम्भ श्रृंगार की व्यंजना।

1.7 भूषण

वन्दना, शिवाजी एवं छत्रसाल प्रशस्ति संदर्भित भूषण के पाठ्यक्रम–निर्धारित काव्यांशों की व्याख्या पृथक–पृथक इस प्रकार है–

1.7.1 वन्दना

(1) विकट अपार भव–पंथ के चले को श्रम
हरन करन बिजना–से ब्रह्म ध्याइए।
यह लोक परलोक सुफल करन कोक–
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए।।
अलिकुल–कलित–कपोल, ध्यान–ललित,
अनंदरूप–सरित में भूषण अन्हाइए।
पाप–तरू–भंज बिघन–गढ़–गंजन
जगत–मन–रंजन द्विरदमुख गाइए।।1।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत छन्द एक वन्दना है जो महाकवि भूषण द्वारा विरचित है। रीतिकाल की श्रृंगारिक प्रवृत्ति के स्थान पर वीर रस का गायन करने वाले वे अकेले कवि हैं। उन्होंने ऐसे दो नायकों, शिवाजी और छत्रसाल को अपनी कविता का विषय बनाया जो मुगलकालीन भारत के समानान्तर अपना साहसिक प्रतिरोध दर्ज कर रहे थे।

प्रसंग– प्रस्तुत छन्द पारम्परिक रूप से मंगलाचरण के रूप में लिखा गया है इसमें कवि ने आनन्दस्वरूप ईश्वर की आराधना की है।

व्याख्या– भूषण कहते हैं कि सांसारिक रास्ते बहुत विकट और अपार हैं। उन पर चलते–चलते मनुष्य बहुत थक–हार जाता है। जिस प्रकार पंखा राह चलकर आये पथिक की थकान को हटता है, उसी प्रकार भगवान मनुष्य के समस्त मानसिक संतापों को नष्ट करने वाले हैं। ईश्वर हमारे इस लोक और परलोक दोनों को सफल बनाते हैं। इसलिए उनके चरणों को हमेशा अपने में हृदय में बसाकर रखिये।

ईश्वर का सौन्दर्य अतीन्द्रिय है। समस्त फूलों में उनके कपोलों का सौन्दर्य समाहित हैं। ईश्वर का ध्यान मात्र बड़ा सुखकारी है। इसलिए उनकी भक्ति की सरिता में हमें नित्य अवगाहन करना चाहिए। हमारे पाप यदि पेड़ों के समान बड़े हो जायें, तो भी वे अपनी कृपा से उन्हें समूल नष्ट कर सकते हैं। सारा संसार उनका नाम लेने मात्र से क्लेशरहित होकर आनन्दस्वरूप हो जाता है। ऐसे कृपालु और सर्वशक्तिमान् ईश्वर के यश का हमें निरन्तर गायन करना चाहिए।

टिप्पणी

विशेष

- काव्याचार्यों ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ईश्वर की अनुकम्पा को प्राप्त करने के लिए ईश्वर भक्ति का प्रावधान बताया है, जिससे कि ग्रन्थ निर्विघ्न पूर्ण हो सके। भूषण ने इस परंपरा का निर्वाह किया है।
- भक्ति एवं शांत रस की अभिव्यंजना है।
- शब्द योजना लालित्यपूर्ण है।

(2) जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधु कैटभ–छलनि देवि जै महिष–विमर्दिनि।।
जै चमुंड जै चंड–मुंड–भंडासुर–खंडिनि।
जै सुरक्त जै रक्तबीज बिड्डाल–बिहंडिनि।।
जै जै निसुंभ सुंभद्दलनि, भनि भूषण जै जै भननि।
सरजा समथ्थ सिवराज कहं, देहि बिजै जै जग जननि।।2।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– शक्ति के अनेक रूप हैं। यदि एक रूप शैलपुत्री और स्कन्दमाता का है तो दूसरा रूप रणचंडी का भी है। कवि भूषण वीररस में अपना काव्य लिख रहे हैं, इसलिए शक्ति का चण्डिका रूप उनका उपास्य है। इस रूप में शक्ति ने मधु कैटभ, चंड–मुंड आदि अनेक राक्षसों का वध किया है। भूषण–काव्य के नायक छत्रपति शिवाजी भी आततायी शासकों से संघर्ष कर रहे हैं। कवि उनकी विजय कामना के रूप में मां काली की प्रार्थना कर रहे हैं।

व्याख्या– भूषण शक्ति को आदि शक्ति और काल के भी दर्प का नाश करने वाली कालि कपर्दिनी रूप में सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि उन्होंने मधु, कैटभ, महिषासुर चमुंड, चंड–मुंड व भस्मासुर सुरक्त, रक्तबीज, विड्डाल व निशुंभ आदि रासक्षों का मान मर्दन करके उनके भार से पृथ्वीतल को मुक्त किया है। भूषण बारम्बार इस विजय का बखान करता है और साथ प्रार्थना भी करता है कि वे अपने समर्थ पुत्र शिवराज को भी विजयश्री प्रदान करें।

विशेष

- इस छंद में कवि ने महाकाली द्वारा मारे गये राक्षसों का नाम परिगणन करते हुए उनकी असीम शक्ति का गुणगान किया और छत्रपति शिवाजी को उनके शत्रु–दमन के महाकार्य में सफलता प्रदान करने का आशीर्वाद मांगा है।
- यह छंद वीर पूजा का एक उदाहरण है।
- भाषा ओजगुण प्रधान है। वीर तथा भक्ति रस की व्यंजना है।

1.7.2 शिवाजी प्रशस्ति

(1) साजि चतुरंग बीर रंग, में तुरंग चढ़ि,
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत हैं।
'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के
नदी–नद मद गब्बरनके रलत हैं।।

टिप्पणी

ऐल–फैल खैल–भैल खलक में गैल–गैल,
गजन की ठेल–पेल सैल उलसत हैं।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं।।1।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत छन्द रीतिकालीन कवि भूषण द्वारा विचरित है। रीतिकाल में चारों तरफ श्रृंगार रस की सरिता प्रवाहित हो रही थी। भूषण वीररस का गायन कर रहे थे। भूषण ने किसी दरबारी कवि की तरह अपने आश्रयदाता से पुरस्कार पाने अथवा धन बटोरने की लालच में उनकी प्रशंसा नहीं की, अपितु वे तो लोक जीवन को प्रभावित करने वाले ऐसे नायक का गुणगान कर रहे थे जो मुगलकालीन भारत के समानान्तर अपना साहसिक प्रतिरोध दर्ज कर रहे थे। प्रस्तुत छंद शिवाजी की प्रशस्ति पर आधारित है।

प्रसंग– प्रस्तुत छन्द में कवि भूषण ने शिवाजी की चतुरंगिणी सेना के युद्ध हेतु प्रस्थान का वर्णन किया है।

व्याख्या– भूषण कहते हैं कि 'सरजा' की उपाधि से विभूषित अत्यन्त श्रेष्ठ एवं वीर शिवाजी अपनी चतुरंगिणी सेना (पैदल, हाथी, घोड़े तथा रथ) को सजाकर तथा अपने अंग–अंग में उत्साह भरकर युद्ध जीतने के लिए जा रहे हैं। भूषण कहते हें कि उस समय नगाड़ों की आवाज बहुत तेज हो रही थीं। हाथियों की कनपटी से बहने वाला मद नदी–नालों की तरह बह रहा था, अर्थात् शिवाजी की सेना में श्रेष्ठ हाथियों की संख्या बहुत अधिक थी। शिवाजी की विशाल सेना नगर की गलियों–गलियों तक में व्याप्त हो गई थी, जिससे सारे संसार में खलबली मच गई थी। हाथियों की धक्का–मुक्की से अभेद्य समझे जाने वाले पहाड़ भी उखड़ रहे थे। विशाल सेना के चलने से इतनी धूल उड़ रही थी कि सूर्य भी तारे के समान लगने लगा था। सेना के भार से समुद्र ऐसे कांप रहा था जैसे थाली में रखा हुआ पारा हिल रहा हो।

विशेष

- शिवाजी की चतुरंगिनी सेना के प्रस्थान का अत्यन्त मनोहारी व अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है।
- कविता के नाद–सौन्दर्य की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है।
- साहित्यिक ब्रज भाषा का प्रयोग है।
- अनुप्रास, उपमा तथा अतिशयोक्ति अलंकार की छटा दर्शनीय है।
- शैली–मुक्तक, गुण ओज एवं छन्द–मनहरण कवित्त।

(2) प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि मूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।।
किलकि–किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम–डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सौं समाज आजु कहां चलो,
काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है।।2।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

टिप्पणी

प्रसंग– प्रस्तुत छन्द में कवि भूषण ने शिवाजी और उनकी सेना द्वारा किये गये भीषण संहार का वर्णन किया है।

व्याख्या– कविवर भूषण कहते हैं कि शिवाजी और उनकी सेना ने युद्धभूमि में शत्रु सेना का भयंकर विनाश किया है। चारों तरफ रक्त और मृत शरीर हैं। ऐसा दृश्य देखकर प्रेतिनियां, पिशाच, राक्षस और राक्षसनियां परस्पर मिलकर परस्पर बधाई दे रही हैं क्योंकि आज उन्हें बिना प्रयास के ही बहुत सारा भोजन मिल रहा है। आज मां काली भी बहुत प्रसन्न है। खुशी और कुतुहल के मारे मां काली किलकारियां मार रही है तथा भगवान शिव अपने गणों को भरपेट भोजन करते देख प्रसन्न हैं और प्रसन्नता में वे डिमडिम करके अपना डमरू बजा रहे हैं। माता पार्वती यह सब देखकर भगवान शिव से पूछती हैं कि आज आपका सारा प्रेत समाज कहां जा रहा है? क्या किसी राजा पर शिवाजी ने अपनी भृकुटी टेढ़ी की है जिससे सुलभ होने वाले मांसाहार को देखकर यह प्रेत समूह अपनी भूख शान्त करने वहां जा रहा है।

विशेष

- इसमें पौराणिक प्रसंग का चित्रण है।
- भूत–प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि भगवान शिव के अनुचर माने जाते हैं।
- कलापक्ष की दृष्टि से भी यह पद्य बहुत सबल है। पूरा छन्द गेय है। गाते–गाते ही नाद–सौन्दर्य की सृष्टि हो जाती है। कविता नवोत्साह का संचार करने में पूर्णतया समर्थ है।
- भाषा–ब्रज। रस–अद्‌भुत। छन्द–मनहरण कवित्त। अलंकार–अनुप्रास, अतिशयोक्ति एवं श्लेष।

(3) ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं।।
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं।।
'भूषन' भनत शिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं।।3।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में शिवाजी द्वारा युद्ध में मारे गए शत्रुओं की स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि भूषण कहते हैं कि जो बेगमें पहले ऊंचे–ऊंचे महलों में रहती थीं, अब वे शिवाजी के डर से मारे ऊंचे–ऊंचे पहाड़ों की कन्दराओं में रहती हैं। पहले जो नाना प्रकार के राजसी फलों और कंदमूल का प्रयोग करती थीं, वे अब जंगल में सुलभ कंद–मूल खाकर गुजारा कर रही हैं। जो दिन में तीन बार भोजन करती थीं, वे अब दिन में मात्र तीन जंगली बेर खाकर अपना पेट भर रही हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि राजसी सुख–सुविधाओं की तो बात ही भर है, अब तो उन्हें भर पेट भोजन भी नहीं मिलता।

पहले जिनके अंग आभूषणों के भार से शिथिल हो रहे थे, अब वे अंग भूख के कारण शिथिल हैं। इसके अतिरिक्त पहले जो रानियां दिन भर नौकरों से पंखा झलवाती थी, अब वे निर्जन वनों में जान बचाती हुई घूम रही हैं।

टिप्पणी

इस छन्द की अन्तिम पंक्तियों में कवि भूषण कहते हैं कि हे वीर शिव! शत्रु पक्ष की जो स्त्रियों पहले रत्न जड़ित पोशाकें पहनती थी, अब तुम्हारे डर से नग्न रहते हुए ठंड में कांपा करती है।

विशेष

- शत्रु पक्ष की स्त्रियों की दुर्दशा का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है।
- ब्रज। शैली–मुक्तक। रस–वीर व करुणा। गुण ओज प्रसाद।
- शब्दशक्ति– लक्षणा– व्यंजना। छन्द – मनहरण कवित्त और अलंकार– यमक।

(4) उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग
तेऊ सगबग निसिदिन चली जाती हैं।
अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात
बात न सुहातीं बोले अति अनखाती हैं।।
'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा
तेरी धाक सुनि अरिनारी बिललाती हैं।
कोऊ करें घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती घरैं,
तीन बेर खातीं तेअब तीन बेर खातीं हैं।।4।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भूषण–काव्य के नायक शिवाजी के शौर्य के किस्से सुनकर उनके शत्रुओं की स्त्रियां अपना भविष्य अंधकारमय देख रही हैं। वे रोती–बिलखती, बिना ठीक से खाए–पीए मुरझा गई हैं। कई तो आत्महत्या तक की स्थिति में आ जाती है।।

व्याख्या– कविवर भूषण कहते हैं कि शत्रुपक्ष के सैनिकों की जो स्त्रियां पलंग से पांव उतारकर नीचे धरती पर भी नहीं रखती थीं, वे भयभीत होकर अब दिन रात चलती हैं। विभिन्न प्रकार के प्रसाधनों से जिनका शरीर दमकता रहता था, आज आकुलता–व्याकुलता के कारण मुरझा गया है। यहां तक कि उन्हें अपने उखड़े शरीर को ढकने का भी होश नहीं है। विपरीत हालातों और भयावह मनःस्थिति के कारण इतनी चिड़चिड़ी हो गई हैं कि कोई अप्रिय बात सुनते ही क्रोधित हो जाती हैं।

भूषण कहते हैं कि शेर के सपूत शिवाजी की वीरता के किस्से सुन–सुनकर शत्रु–नारियां बिलख बिलखकर रो रही हैं। कोई–कोई तो आत्महत्या तक कर लेती है और कोई घर में बैठकर छाती पीटती है। उनकी दुर्दशा की चरमसीमा यह है कि जो स्त्रियां पहले दिन में तीन बार खाती थी, वे अब मात्र तीन बेरों से ही अपना पेट भर रही है।

विशेष

- शत्रु पक्ष की स्त्रियों की दुर्दशा का अतिरेकपूर्ण वर्णन।
- साहित्यिक ब्रज का प्रयोग है। 'छाती पीटना, बात न सुहाना आदि मुहावरों का प्रभावी प्रयोग है।

टिप्पणी

- गुण– प्रसाद व ओज।
- शब्द शक्ति– लक्षणा।
- अलंकार– अनुप्रास और यमक।
- छन्द – मनहरण कवित्त।

(5) राना भो चमेली और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर रस लेत निज यह काज है।
सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर,
भ्रमत भ्रमर जैसे फूल को समाज है।।
'भूषण' भनत सिवराज वीर तैहीं देस–
देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है।
त्यागे सदा षटपद पद अनुमानि यह,
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है।।5।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत छन्द में कविवर भूषण ने शिवाजी कालीन अन्य राजाओं के अमर्यादित आचरण को इंगित करते हुए अपने नायक की श्रेष्ठता का वर्णन किया है।

व्याख्या– भूषण कहते हैं कि शिवाजी के समय जितने भी राजा थे वे सबके सब अपने आचरण से गिरकर भ्रष्ट राजाओं जैसे हो गये। अपने भौतिक सुखों के लिए जगह–जगह रसपान करना उनका नित्य का काम हो गया। आततायी शासक औरंगजेब ने अपना शासन चलाने के लिए जिन कामुक, राष्ट्रद्रोही, राजपूत विलासी राजाओं को मिथ्या मित्र बनाकर संचालन के लिए राज्य दिये, वे सब अपने–अपने कर्तव्यों से विमुख होकर विलासिता में डूब गये। सारे अमीर–अमीदात घर–घर में युवा लड़कियों की खोज में रहने लगे और ऐसे व्यवहार करने लगे जैसे सब फूलों पर इन्हीं का आधिपत्य हो गया हो।

भूषण कहते हैं कि आचार–हीनता के इस विकट समय में शिवाजी ने दक्षिण प्रदेश की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखा। इसके लिए उन्होंने विलासिता का पूर्ण परित्याग किया। औरंगजेब भ्रमर की भांति चंपा रूपी शिवाजी का भी रस चूसना चाहता था किंतु ऐसा कभी संभव हो सका। भ्रमर सब फूलों पर जा सकता है किन्तु चंपा के पास वह नहीं फटक सकता। औरंगजेब सब राजाओं का तो रस ले सकता था लेकिन शिवाजी ने उसे अपने पास फटकने नहीं दिया।

विशेष

- प्रस्तुत छन्द में तद्युगीन स्थिति का यथार्थ सम्मत वर्णन किया गया है।
- भाषा– ब्रज। शैली मुक्तक। गुण–ओज। रस–वीर। छन्द – मनहरण कवित्त। अलंकार– अनुप्रास, पुनरुक्ति, उत्प्रेक्षा और यमक।
- चम्पा और भ्रमर के विषय में यह दोहा प्रचलित है–

  चम्पा तोने तीन गुण, रूप रंग और वास।
  अवगुण तोमे एक है, भंवर न आवै पास।।

टिप्पणी

(6) जोर करि जैहैं जुमिला हू के नरेस पर,
तोरि अरि खंड–खंड सुभट समाज पै।
'भूषण' असाम रूम बलख बुखारे जैहैं,
चीन सिलहट तरि जलधि जहाज पै।।
सब उमरावन की हठ क्रूरताई देखौ,
कहै नवरंगजेब साहि सिरताज पै।
भीख मांगि खैहैं बिनु मनसब रैहैं,
पे न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै।।6।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भूषण कई राजाओं के दरबारों में गये, किन्तु उनका मन रमा तो छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल के दरबार में ही। शिवाजी के दरबार में आने के बाद उनके लिए किसी अन्य दरबार में जाने की बात सोचना भी असंभव लगता है। अपने ऐसे ही भावों को उन्होंने इस पद में व्यक्त किया है।

व्याख्या– कवि भूषण कहते हैं कि मैं वीर शिरोमणि महाराज शिवाजी के दरबार से अन्यत्र किसी दरबार में नहीं जाऊंगा, भले ही मुझे किसी दुर्गम व अमनोहारी स्थान पर ही क्यों न जाना पड़े। हे शिवाजी महाराज! मेरी यही कामना है कि आपके सारे शत्रुओं का विनाश हो जाये। मैंने बहुतेरे राजाओं के दरबार देखे हैं। उनके दुराग्रह, हठ और क्रूरता भी देखी है। यहां तक कि औरंगजेब के दरबार में भी मैं गया हूं। भले ही मैं भीख मांग कर खा लूंगा, भले ही बिना मनसबदारी के रह लूंगा, लेकिन आपका दरबार छोड़कर नहीं जाऊंगा।

विशेष

- कवि भूषण की शिवाजी के प्रति निष्ठा अभिव्यक्त है।
- कहा जाता है कि भूषण औरंगजेब के दरबार में भी गये थे। एक बार औरंगजेब ने सभा में कहा कि उन्हें अब तक चाटुकारिता भरी कविताएं ही सुनाई जाती रही हैं। उन्हें उनकी कमियां बताने वाली कविताएं भी सुनाई जानी चाहिए। इस पर भूषण ने अपनी एक कविता पढ़ी जिसमें इस बात का वर्णन था कि औरंगजेब ने कैसे–कैसे षड्यन्त्र करके सत्ता हथियाई है। यह औरंगजेब को असह्य हुआ और उसने भूषण को पकड़ने का आदेश दे दिया। भूषण इस स्थिति के लिए पहले ही तैयार थे। वे तुरन्त तेजी से दरबार से निकल भागे और सुरक्षित स्थान पर पहुंच गये।
- भूषण का स्वाभिमान व्यंजित हुआ है।
- भाषा ब्रज है। गुण प्रसाद है।

इस छन्द का एक अन्य अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है–

औरंगजेब की सेना के पदाधिकारियों को जब शिवाजी पर आक्रमण करने का आदेश मिला तो उन्होंने अपनी असमर्थता इस प्रकार व्यक्त की–

सेनापति कहते हैं कि हे शहंशाह! आपसे हम हाथ जोड़कर विनती कर रहे हैं कि हमारे सारे सैनिक आपके सभी शत्रुओं के टुकड़े–टुकड़े कर देंगे। आप हमें आसाम, तुर्क, अफगानिस्तान आदि किसी भी जगह भेजें, वहीं हम चले जायेंगे और हर किसी

को नेस्तानाबूद कर देंगे। हमने सब राजाओं की हठ और क्रूरताओं को देखा है लेकिन शिवाजी जैसा शूरवीर आज तक नहीं देखा। हम भीख मांगकर खा लेंगे और बिना पदों के भी रह लेंगे, लेकिन शिवाजी महाराज पर आक्रमण करने के लिए नहीं जा पायेंगे।

टिप्पणी

(7) गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।।
'भूषण' अखंड नवखंड महिमंडल मैं,
तम पर दावा रवि–किरन समाज को।
पूरब पछांह देश दच्छिन तें उत्तर लौं,
जहां पातसाही तहां दवा सिवराज को।।7।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कवि भूषण ने प्रस्तुत छन्द में भिन्न–भिन्न उदाहरण देकर शिवाजी के शौर्य और शत्रु पक्ष में उनके आतंक का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि भूषण कहते हैं कि जिस प्रकार भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ का नागों के समूह पर सदा प्रभुत्व रहता है, जिस प्रकार जंगल के राजा शेर का हाथी के समूह पर प्रभुत्व रहता है, उसी प्रकार का प्रभुत्व शिवाजी का औरंगजेब की बादशाहत पर रहता है। जिस प्रकार शेर हाथी के मुकाबले आकार में छोटा होने पर भी उसे अपने शौर्य से आतंकित कर देता है तथा एक अकेला गरुड़ सर्पों के समूह पर भारी पड़ता है, उसी प्रकार शिवाजी अकेले ही औरंगजेब की सेना पर भारी है।

भूषण कहते हैं कि इन्द्र का पहाड़ों के समूह पर स्वामित्व है। इन्द्र ने ही पहाड़ों के पंख काटकर उनके दर्प का विनाश किया था और उन्हें एक ही स्थान पर टिके रहने के लिए बाध्य कर दिया था। जिस प्रकार बाज पक्षी अकेला ही पक्षियों के समूह पर भारी पड़ता है, जैसे नौखण्डों वाले भूमण्डल पर, अन्धकार के समूह पर सूर्य का प्रभुत्व है वैसे ही इस संसार में पूरब से पश्चिम तक और दक्षिण से उत्तर तक, जहां–जहां भी औरंगजेब की बादशाहत है, वहां शिवराज का भय है। अकेले शिवाजी के अपने शौर्य से पूरा मुगल शासन आतंकित रहता है।

विशेष

- भूषण यह सिद्ध करते हैं कि महत्व शौर्य का होता है, संख्या बल का नहीं।
- कवि ने इन्द्र, गरुड़ एवं नागों के पौराणिक प्रसंग दिये हैं।
- वीररस व्यंजित है। भाषा– ब्रज। छन्द–मनहरण कवित्त। अलंकार – उपमा और अनुप्रास। गुण – ओज।

(8) ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यन्त पुनीत तिहूं पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के संग सोहानी।।
भूषण यो कलि के कविराजन राजन के गुन पाए नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजा सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी।।8।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भूषण का मूल नाम घनश्याम था। भूषण इनकी उपाधि है जो इन्हें चित्रकूट के राजा रुद्र ने प्रदान की थी। भूषण को शिवाजी के दरबार में पर्याप्त सम्मान मिला। उन्होंने शिवाजी की प्रशस्ति में 'शिवा बावनी और शिवराज भूषण' नामक दो काव्य लिखे। प्रस्तुत छन्द में कवि ने महाराज शिवाजी को साहित्य की प्रशस्ति का असली हकदार बताया है।

व्याख्या– कवि भूषण कहते हैं कि साहित्यिक वाणी ब्रह्मा के मुख से निकली है, इस बात को सभी लोग मानते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने भगवान राम का रामायण में और महर्षि व्यास ने महाराज युधिष्ठिर का महाभारत में वर्णन करके साहित्यक वाणी की शोभा बढ़ाई। इन दोनों महान कवियों ने महान राजाओं को अपने काव्य का नायक बनाया। राम मर्यादा पुरुषोत्तम संतों की रक्षा करने वाले तथा आततायी राक्षसों का विनाश करने वाले थे। अतः उन्हें काव्य का नायक बनाने से सरस्वती धन्य ही हुई है। इसी प्रकार महर्षि व्यास ने महाराज युधिष्ठिर को अपने महाकाव्य महाभारत का नायक बनाया। युधिष्ठिर की न्याय–प्रियता, सत्यवादिता आदि गुण विश्व प्रसिद्ध है। अतः उनके नायकत्व से भी मां सरस्वती की शोभा बढ़ी, किन्तु कलियुग के कवि स्वार्थवश अपने आश्रयदाताओं की झूठ–मूठ प्रशंसा कर उन्हें नायक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इनसे तो साहित्यिक वाणी नष्ट–भ्रष्ट ही हो गई। अब जाकर देश में सरजा का उपाधि से सम्मानित वीर शिवाजी का गुणगान करने से साहित्यिक वाणी धन्य हुई। कलिकाल के आश्रमदाताओं की स्वार्थवश झूठी प्रशंसा से वाणी का जो दोष लग गया था, उसमें मलिनता आ गई है। वह मालिनता अब उनकी शिवाजी प्रशस्ति रूपी सरिता में स्नान करके दूर हुई है।

विशेष

- भूषण ने स्वार्थवश आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा कर रहे दरबारी कवियों पर कटाक्ष किया है। उनके अनुसार साहित्य में उसी की प्रशस्ति होनी चाहिए, जो इसके योग्य हो। साहित्य का कर्मवीर–पूजा हो सकता है किन्तु चाटुकारिता कदापि नहीं है।
- अनुप्रास व रूपक अलंकार है
- ब्रज भाषा में प्रसाद गुण की सृष्टि है।

1.7.3 छत्रसाल प्रशस्ति

(1) भुज भुजगेस की ह्वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि–खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बख्तर पाखरनि बीच धंसि जात मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैया राय चंपति को छत्रसाल महाराज,
भूषण सकत को वखानि यौं बलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर
तेरी बरछी ने बर–छीने हैं खलन के।।1।।

सन्दर्भ– समवर्ती कवियों की श्रंगारिक काव्य सृष्टि से अलग वीर रस में काव्य रचना करने वाले रीतिकालीन कवि भूषण कई राजाओं के दरबार में गए; लेकिन उनका मन

टिप्पणी

रमा तो शिवाजी और छत्रसाल के दरबार में ही। यह छंद छत्रसाल की प्रशस्ति में सृजित है, जो छत्रसाल दशक में संकलित है।

प्रसंग– प्रस्तुत छंद में कवि ने छत्रसाल के शौर्य का वर्णन अलंकृत शैली में किया है।

व्याख्या– कविवर भूषण युद्धरत छत्रसाल के युद्ध कौशल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे छत्रसाल! आपकी तलवार आपके लिए कुछ पलों की साथी नहीं है, अपितु यह तो आपकी भुजा रूपी सर्प के साथ उम्र भर रहने वाली सर्पिणी के समान है जो शत्रु पक्ष के लोगों को ढूंढ़कर घायल कर देती है। जैसे नाग–नागिन का जोड़ा एक दूसरे से कभी अलग नहीं होता, ऐसे ही आपकी तलवार आपकी भुजा से कभी अलग नहीं होती। यह आपके शत्रुओं पर काल बनकर टूटती है। यह शत्रुओं के पहने कवच और हाथी–घोड़ों पर डाल जाने वाली लोहे की जंजीर बख्तर को भी उसी प्रकार चीर डालती है, जिस प्रकार मछली जल के प्रवाह को चीरती हुई आगे बढ़ जाती है।

भूषण कहते हैं कि चंपतिराय के सुपुत्र छत्रसाल महाराज के बल का बखान कौन कर सकता है? उनका बल तो अवर्णनीय है। आपकी बरछी से कटे हुए सिर वाले शत्रु पक्ष के सैनिक धरती पर ऐसे पड़े हैं जैसे पर कटने पर पक्षी धरती पर गिर जाते हैं। आपकी बरछी ने शत्रुओं के श्रेष्ठ वीरों के भी सरलता से मार गिराया है।

विशेष

- छत्रसाल के युद्ध–कौशल का अलंकृत शैली में वर्णन है।
- यह छन्द उपमा, अनुप्रास और यमक अलंकार के सौन्दर्य से सुसज्जित है।
- भाषा का प्रवाह और गति प्रभावी है। भाषा ओज गुण प्रधान है एवं छन्द– मनहरण कवित्त।

(2) निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलै भानु कैसी,
फारे तम तोम से गयंदन के जाल को।
लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिनि सी,
रुद्रहि रिझावैं दै दै मुंडन के माल को।
लाल छितिपाल छत्रसाल कहा बाहुबली,
कहां लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को।।2।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भूषण ने जहां शिवाजी की प्रशस्ति में शिवा–बावनी और शिवराज भूषण काव्य लिखा, वहीं छत्रसाल की प्रशस्ति में छत्रसाल दशक की रचना की। प्रस्तुत छन्द में भूषण ने छत्रसाल के युद्ध कौशल का वर्णन किया है।

व्याख्या– छत्रसाल की तलवार जब म्यान से निकली तो वह प्रलयकाल के सूर्य की भांति चमक रही थी। जैसे सूर्य निकलते ही अन्धकार के समूह को चीर डालता है, वैसे ही उनकी तलवार–बाजी देखकर डर के मारे शत्रु पक्ष के हाथियों का झुण्ड भी इधर–उधर बिखर गया। छत्रसाल के हाथ में तलवार ऐसे ही सज रही है, जैसे नाग के साथ नागिन सुशोभित होती है। उनकी तलवार शत्रुओं के गले पर ऐसे ही लिपट जाती है जैसे कोई नागिन लिपट रही हो। शत्रु सैनिकों के सिर उनकी तलवार से

टिप्पणी

कट–कट कर ऐसे ही धरती पर गिर पड़ते हैं जैसे छत्रसाल महाकाल को मुंड़ों की माला चढ़ाकर प्रसन्न कर रहे हों। भूषण कहते हैं कि महाबाहुबली पृथ्वी पालक छत्रसाल! आपकी तलवार के करतबों का कहां तक वर्णन करू? आपकी तलवार शत्रु सेना के सैनिक समूह को उतनी ही सरलता से काट डालती है जैसे कंटीली झांडियों के झुण्ड को काट रही हो। शत्रु सैनिकों के सिर धड़ से अलग करके यह तलवार मानो महाकाल यमराज को कलेवा अर्थात भोजन प्रदान करके काली माता की भांति प्रसन्न हो रही है।

विशेष

- समूचा वर्णन बहुत आकर्षक व रोचक बन पड़ा है। 'रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को तथा 'कालिका सी किलकि कलऊ देतिकाल को' जैसे वर्णन कथ्य के अनुरूप ओज से परिपूर्ण हैं।
- भाषा का प्रवाह और गति हृदयग्राही है। भाषा कृपाण की ही भांति प्रभावशीलता लिये हुए है। ओज गुण देखते ही बनता है।
- उपमा, अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।
- छन्द– मनहरण कवित्त।

स्फुट

(1) चन्दन में नाग, मद भरयो इंद्रनाग,
विष भरो सेस नाग, कहै उपमा अबस को।
भोर ठहरात न, कपूर बहरात, मेघ,
सरद उड़ात, बात लोगे दिसि दस को।।
शंभु नीलग्रीव, भौंर पुण्डरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सम भूषन सरस को?
छीरधि मैं पंक, कलानिधि मैं कलंक याते,
रूप एक टंक ए लहैं न तव जस को।।1।।

सन्दर्भ– भूषण दो राजाओं के दरबार में रहे; छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला। इन दोनों राजाओं की प्रशस्ति में उन्होंने तीन काव्य लिखे–शिवराज भूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक। इन तीनों काव्यों के अतिरिक्त भूषण के कुछ फुटकर छन्द भी मिलते हैं। प्रस्तुत छन्द उन्हीं स्फुट छन्दों में से एक है।

प्रसंग– प्रकृति की अनेक वस्तुओं का दोषगणन करके इस छंद में शिवाजी की सभी से श्रेष्ठता सिद्ध की गई है।

व्याख्या– चन्दन के पेड़ पर नाग रहते हैं। इसलिए इन नागों में भी सुगन्धि का कुछ वास हो जाता है। इन्द्रनाथ में मद भरा रहता है और शेषनाग में विष भरा रहता है। संसर्ग के कारण कुछ न कुछ गुण–दोष अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं। इस संसार में हर वस्तु चलायमान है। कोई वस्तु स्थिर नहीं है। भोर बहुत जल्दी बीत जाती है, कपूर उड़ जाता है और वर्षा ऋतु में आकाश में छाये रहने वाले बादल शरद ऋतु में दसो दिशाओं से पता नहीं कहां चले जाते हैं।

शिवशम्भू नीलग्रीवा वाले है। भ्रमर कमल पर ही मंडराते हैं। इस संसार में शिवाजी के समान धरती का भूषण कौन है? जिस क्षीरसागर में विष्णु भगवान शयन करते हैं, उसमें भी कीचड़ है। जिस चन्द्रमा को हम सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति और कलानिधि

कहते हैं, उसमें भी कलंक है। हे शिवाजी! आपके जैसा अखण्ड यश संसार में किसी को उपलब्ध नहीं है।

विशेष

टिप्पणी

- शिवाजी का श्रेष्ठत्व सिद्ध करने के लिए कवि ने प्रकृति की बहुत–सी वस्तुओं में दोष निकालने का काम किया है।
- भाषा ब्रज; प्रसाद गुण युक्त।

(2) कौन करै बस वस्तु कौन इहि लोक बड़ो अति?
को साहस को सिंधु कौन रज–लाज धरे मति।।
को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि?
अष्टसिद्धि नव–सिद्धि देत, मांगे को सो कहि।।
जग बूझत उतर देत इमि, कवि, भूषन, कवि–कुल–सचिव।
'दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिनंद मकरंद शिव।।2।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहां शिवाजी को सर्वगुणसंपन्न, सर्वप्रिय और सूर्यवत तेजस्वी बताया गया है।

व्याख्या– कवि भूषण कहते हैं कि इस संसार में ऐसा कौन है कि जो बड़ी से बड़ी वस्तु को वश में कर सकता है? किसमें समुद्र जितना साहस है? कौन धरती जितना धैर्यवान है। चकवा–चकवी के प्रिय सूर्य जैसा तेजस्वी कौन है? फूल सहित समस्त वनस्पति का पालनहार कौन है? उत्तर मिलत है सूर्य!

याचक को अष्ट सिद्धि और नवनिधि देने वाला कौन है? साहस के पारागर, धरती के समान धैर्यशाली, सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वप्रिय कौन है? एकमात्र उत्तर आता है दक्षिण नरेश सरजा की उपाधि से विभूषित शाह जी के पुत्र वीर–शिरोमणि शिवाजी।

विशेष

- छत्रपति शिवाजी को सर्वगुण सम्पन्न और सर्वप्रिय नायक बताया गया है। इसके लिए बहुत से विशेषणों का प्रयोग किया गया है।
- भाषा ब्रज एवं गुण–प्रसाद है।

(3) कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
छाह रह्यो मानो यह विष काली नाग को।
बैरिन भई है कारी कोयल निगोड़ी यह,
तैसो ही भंवर कारोवासी बन वाग को।
भूषन भनत कारे कान्ह को वियोग हिये,
सबै दुखदायी जो करैया अनुराग को।
कारो घन घेरि–घेरि मारयो अब चाहत है,
एते पर करति भरोसो कारे काग को।।3।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यह छंद भक्तिकालीन भ्रमरगीत परंपरा के निर्वहन में सृजित है। गोपिकाओं के समक्ष कृष्ण वियोग से उत्पन्न परिवेश का चित्रण इसमें किया गया है।

व्याख्या– इस पद में भूषण कृष्ण वियोगिनी गोपियों के मनोभावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि कृष्ण के वियोग में उन्हें यमुना जी के श्यामल जल अब काल के समान काला लग रहा है क्योंकि यमुना का तट कृष्ण मिलन की याद दिलाता है। ऐसा लगता है मानो इसके जल में काले नाग का विष मिल गया है। कोयल की पंचम स्वर की वाणी भी अब भाती नहीं है। विरह में वह भी बड़ी अप्रिय लगती है। वन–उपवन की सुखद शीतल छाया भी अब भंवर जैसी लग रही है।

भूषण कहते हैं कि सांवरे कृष्ण के वियोग में संयोगावस्था की सभी सुखदायी चीजें अब दुखदायी हो गई हैं। जो भी अनुराग करता है, वह दुख ही पाता है। अब आकाश में छाये बादल गर्जना कर करके मानो हमेशा प्राण ही लेना चाहते हैं। बादलों का राग भी हमारे हृदय की तपन को शान्त नहीं कर पा रहा। ऐसे में छत पर जो काला काग कांव–कांव कर किसी प्रिय अतिथि के आने का संकेत कर रहा है? उसका भरोसा अब कैसे करें। हर काली चीज ने अपनी विश्वसनीयता खो दी है। ऐसे में काग का संकेत भी सुखद नहीं लग रहा, कोई सुखद प्रत्याशा नहीं जगा रहा।

विशेष

- भक्तिकाल की भ्रमरगीत परम्परा का निर्वाह करते हुए भूषण ने गोपी विरह पर यह वियोग श्रंगार का छंद लिखा है। उनका मुख्य स्वर तो वीर रस का ही है।
- परंपरा से संयोग की सुखद चीजों को वियोग में दुखदायी बताया गया है। सूर ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं– (i) देखियत कालिन्दिर अति कारी, (ii) बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै

  'सबै दुखदायी जो कटैया अनुराग' से भावसाम्य रखती यह प्रसिद्ध पंक्ति द्रष्टव्य है'–'प्रीत किये दुख होय।'
- भाषा ब्रज एवं गुण माधुर्य है।

अपनी प्रगति जांचिए

4. "मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोई" में बिहारी ने भवबाधा निवारण की प्रार्थना किससे की है?

   (क) निराकार ईश्वर से (ख) कृष्ण से

   (ग) राधाकृष्ण से (घ) राधा से

5. घनानन्द के संन्यास का कारण क्या था?

   (क) आश्रयदाता द्वारा राज्य निष्कासन (ख) भगवत् प्रेम

   (ग) प्रेमिका सुजान का मुंह फेर लेना (घ) इनमें से कोई नहीं

6. श्रृंगारिक प्रवृत्ति से परे किस कवि ने वीर रस को सृजन का माध्यम बनाकर अपनी अद्वितीयता सिद्ध की?

   (क) भूषण (ख) बिहारी

   (ग) घनानन्द (घ) मतिराम

1.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (ग)
6. (क)

1.9 सारांश

कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी संत कवि थे। उन्होंने हिंदी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी निर्गुण शाखा की काव्यधारा का प्रवर्तन किया। उन्होंने हिन्दू–इस्लाम जैसे धर्मों में नहीं, मानव धर्म में विश्वास किया और समाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांडों, अंधविश्वासों पर डटकर प्रहार किया। इसके लिए उन्होंने पारंपरिक धर्मों की जड़ताओं पर भी प्रतिरोधी अभिव्यक्ति दी। आप पढ़े–लिखे नहीं थे। सहज स्फूर्त आपकी अनुभूतिपरक वाणी का संकलन आपके शिष्यों ने किया। इनकी वाणी का संग्रह 'बीजक' नामक ग्रंथ में किया गया है, जिसके मूलतः तीन भाग हैं– साखी (दोहे), सबद (पद) और रमैनी।

हिंदी साहित्य के सूर्य कहे गए भक्तिकालीन महाकवि सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनके बचपन का नाम मदन मोहन था। ब्रज भाषा में शिखर अभिव्यंजना करने वाले सूर ने वात्सल्य, श्रृंगार एवं शांत रस को प्रमुखता दी। कृष्ण की वात्सल्यपूर्ण बाललीला के वर्णन में सूर का कोई सानी नहीं। विनय के पदों में इनकी दास्य भावना कहीं कहीं तुलसी से भी आगे निकल गई है। सूरसागर, सूरसारावली साहित्य लहरी, नल–दमयंती इनके काव्यग्रंथ हैं।

विश्व के 100 लोकप्रिय काव्यों में 46वें स्थान पर सुशोभित श्री रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास भक्तिकाल के शीर्षस्थ कवि हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी एवं एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स में ग्रियर्सन ने इनके 12 ग्रंथों का उल्लेख किया है। रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, हनुमान चालीसा, श्रीकृष्ण गीतावली, वैराग्य संदीपनी आपकी प्रमुख कृतियां हैं।

रीतिकाल के आधार स्तभों में से एक बिहारी की एकमात्र रचना सतसई (सप्तशती) है। कुल 713 दोहों से युक्त इस मुक्तक काव्य ने ही बिहारी को शिखर पर सुशोभित कर दिया। सतसई को मूलतः तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–नीतिपरक, भक्ति–अध्यात्म–भावपरक, श्रृंगार परक। सतसई के बारे में कहा गया है–

सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

'प्रेम की पीर' के रूप में ख्यातिलब्ध कवि घनानन्द रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। ब्रजभाषा प्रवीण घनानन्द रीतिकाल की आजाद (मुक्त) धारा के कवि हैं। सुजानहित, वियोगबेलि, इश्कलता, प्रीतिपावस, प्रेम पत्रिका, प्रेम सरोवर, रस वसंत, प्रेम

पद्धति, विचार सार, भावना प्रकाश आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। कहा जाता है कि ये बादशाह 'मुहम्मदशाह रंगीले' के दरबार में मुंशी थे। राज नर्तकी सुजान से प्रेम करते थे। एक दिन बादशाह की आज्ञा की अवहेलना के जुर्म में इन्हें दिल्ली से निष्कासित कर दिया गया। सुजान ने इनका साथ पूरा दिया। ऐसे में वे वृंदावन जाकर संन्यासी बन गए। प्रेम की इसी पीड़ा ने इन्हें साहित्यकारों में अविस्मरणीय स्थान पर सुशोभित कर दिया।

भूषण रीतिकाल के इकलौते कवि हैं, जिन्होंने श्रृंगार रस से हटकर वीरता और देश प्रेम से कविता को गौरवान्वित किया। हिंदू का गौरव बढ़े और उन्नति हो। यही इनकी अभिलाषा थी। इसलिए शिवाजी को इन्होंने अपना आदर्श बनाया और उनका राजाश्रय स्वीकार किया। चित्रकूट नरेश के पुत्र रुद्र सोलंकी ने इनकी कविताओं से प्रभावित होकर इन्हें 'भूषण' उपाधि दी थी। इनका वास्तविक नाम घनश्याम था।

शिवराज भूषण, शिवावानवी तथा छत्रसाल दशक इनकी प्रतिनिधि रचनाएं हैं, जिनमें वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों का प्रभावशाली चित्रण है। इनकी भाषा ब्रज थी जिसमें इन्होंने पद और सवैया छंद लिखे और प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया।

1.10 मुख्य शब्दावली

- **बखान** : वर्णन।
- **श्रेष्ठतम** : सर्वश्रेष्ठ।
- **अपणी** : अपनी।
- **रैजि** : रात।
- **परभाति** : प्रभात, सुबह।
- **सरोवर** : जलाशय।
- **विसुरी** : बिजली।
- **परमान** : प्रमाण
- **स्वान** : कुत्ता।
- **नुपुर** : पायल।
- **नृपु** : राजा।
- **चपला** : विद्युत।
- **नेवछावर** : समर्पित।
- **बसन** : वस्त्र।

1.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. गुरु की महत्ता दर्शाने वाले कबीर के एक दोहे का उल्लेख कीजिए।
2. सूरदास ने भ्रमरगीत में किस विषय का रेखांकन किया है?
3. तुलसीदास मूलतः किसके भक्त थे?

टिप्पणी

4. बिहारी ने मूलतः किस भाषा और रस को अपने काव्य का माध्यम बनाया?
5. घनानन्द ने किस प्रकार की कविताएं लिखीं?
6. भूषण का वास्तविक नाम क्या था?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए–

   दुलहनी गावहु मंगलचार,
   हम घरि आए तो राजा राम भरतार।।
   तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
   रामदेव मोरैं पाँहुनैं आये मैं जोबन मैं माती।।
   सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
   रामदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार।।
   सुर तेतीसूँ कौतिग आवे, मुनिवर सहस अठयासी।
   कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी।।

2. सूरदास के उद्धव संदेश का मर्म क्या है? सोदाहरण समझाइए।
3. तुलसीदास की विनयपत्रिका का मूल स्वर क्या है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
   तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी–समान।।

5. घनानन्द और भूषण की कविताओं में विषयगत वैविध्य क्या है? उदाहरण सहित रेखांकन कीजिए।

1.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, 'कबीर की विचारधारा', साहित्य निकेतन, कानपुर।
2. डॉ. विजेन्द्र स्नातक, 'कबीर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'सूर साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. गोविन्द राय शर्मा, 'सूर की काव्य साधना', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. रामचंद्र शुक्ल, 'गोस्वामी तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
6. रामनरेश त्रिपाठी, 'तुलसीदास और उनका काव्य', राजपाल एंड संस, दिल्ली।
7. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', बिहारी रत्नाकर, लोकवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'भूषण ग्रंथावली', वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
9. परमानंद सुहाने, 'शिवराज भूषण', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

इकाई 2 भक्तिकाल एवं रीतिकाल : परिचयात्मक अध्ययन

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 भक्तिकाल
  2.2.1 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि
  2.2.2 भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां
  2.2.3 भक्तिकाल की विभिन्न काव्यधाराएं एवं विशेषताएं
2.3 रीतिकाल
  2.3.1 रीतिकाल की पृष्ठभूमि
  2.3.2 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां
  2.3.3 रीतिकाल की विभिन्न काव्यधाराएं एवं विशेषताएं
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम काल कहा जाता है। कबीर, रहीम, तुलसी, सूर, जायसी, मीरा, रसखान आदि इसी युग की देन हैं जिन्होंने धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं के माध्यम से समाज में एक नई वैचारिक क्रांति को जन्म दिया। भक्ति भाव के साथ ही लोगों में नवीन आत्मचेतना का संचार करते हुए अपने उन्नत काव्य के माध्यम से समाज को एक नई दिशा दी। भक्तिकालीन काव्यधारा को प्रमुख रूप से दो शाखाओं में निर्गुण भक्ति शाखा तथा सगुण भक्ति शाखा रहीं।

भक्ति युग की सगुण मार्गी शाखा की दो प्रमुख धाराओं–राममार्गी धारा तथा कृष्णमार्गी धारा के रूप में विभाजित किया जा सकता है। राममार्गी धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास जी हुए हैं जिन्होंने भगवान राम की उपासना से संबंधित श्रेष्ठ काव्यों की रचना कर ख्याति प्राप्ति की। कृष्णमार्गी धारा के प्रमुख कवि सूरदास जी हुए हैं। सूरदास जी ने कृष्ण भक्ति का मार्ग अपनाते हुए कृष्ण लीला का जो सजीव चित्रण संसार के सम्मुख प्रस्तुत, किया वह अतुलनीय है।

निर्गुण मार्गी शाखा में कबीरदास जी सर्वाधिक प्रचलित हुए। वे इसी युग के श्रेष्ठ संत रामानंद के शिष्य थे जिन्होंने तत्कालीन समय में व्याप्त जात–पाँत के भेद–भाव को दूर कर समाज में मानवतावाद की स्थापना का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त प्रेममार्गी शाखा में मलिक मुहम्मद 'जायसी' का नाम भी प्रमुख है जिन्होंने प्रेम के मार्ग को प्रधानता दी और बताया कि ईश्वर प्राप्ति का आधार प्रेम–मार्ग ही है।

भक्ति युग के समस्त कवियों ने आत्म–चेतना जाग्रत करने पर विशेष बल दिया तथा धर्म के मार्ग पर चलकर ईश्वर से साक्षात्कार की बात कही। मीराबाई और सूरदास

टिप्पणी

की कृष्णभक्ति की पराकाष्ठा तथा तुलसीदास की अटूट रामभक्ति के कारण तत्कालीन हिंदू समाज की आस्थाओं को बल मिला और समाज एक बार फिर से आस्थावान् हो उठा। इस काल के काव्य में भक्ति के परम रूप के दर्शन होते हैं। इस काल में संपूर्ण वातावरण भक्तिमय हो गया था। उस युग के महान कवियों द्वारा उत्तम काव्य साहित्य के साथ ही साथ समाज सुधार व लोगों में आत्म–चेतना व राष्ट्रीय चेतना जागृत करने हेतु अनेक प्रयासों को भुलाया नहीं जा सकता।

रीतिकाल में काव्य की विविध प्रवृत्तियां तथा विशेषताएं एक साथ देखने को मिलती हैं। भक्तिकाल के बाद का यह युग अशांति और अव्यवस्था का युग रहा है। हिंदी साहित्य का यह कालखंड बहुत से आक्षेपों–आरोपों का युग रहा है। श्रृंगार प्रधान काव्य तथा नायक–नायिका भेद, नख–शिख–वर्णन एवं विविध क्रीड़ाओं का रसमयी शैली में विवेचन इसमें किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा भी है– ''श्रृंगार–वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लील की सीमा तक पहुंचा दिया। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।''

रीतिकाल परिवेश तथा युगीन परिस्थितियों की आधारशिला पर स्थापित होने के कारण ही इस साहित्य का यह स्वरूप निर्मित हुआ। मुगल शासकों के प्रभावस्वरूप ही फारसी भाषा तथा साहित्य का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के आचार्य भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के सभी आचार्यों तक उनके–रस अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति एवं औचित्य आदि संप्रदायों के प्रभाव को भी रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में देखा जा सकता है।

इस इकाई में हम भक्तिकाल एवं रीतिकाल की पृष्ठभूमि, प्रवृत्तियों, काव्य धाराओं एवं विशिष्टताओं का अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भक्ति काल की पृष्ठभूमि, प्रवृत्तियों, काव्यधाराओं एवं विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- रीतिकाल एवं पृष्ठभूमि, प्रवृत्तियों, काव्यधाराओं एवं विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे।

2.2 भक्तिकाल

भक्ति काल की पृष्ठभूमि, प्रमुख प्रवृत्तियों–काव्यधाराओं एवं विशिष्टताओं को पृथक–पृथक रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है–

2.2.1 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

देश में मुस्लिम शासन प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश नहीं रह गया था। उसके सामने ही उसके देव मंदिर

टिप्पणी

गिराए जाते थे, देव मूर्तियां तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?

यह तो हुई राजनीतिक परिस्थिति। अब धार्मिक स्थिति देखिए। आदिकाल के अंतर्गत यह दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार वज्रयानी सिद्ध, कापालिक आदि देश के पूरबी भागों में और नाथपंथी जोगी पश्चिमी भागों में रमते चले आ रहे थे। इसी बात से इसका अनुमान हो सकता है कि सामान्य जनता की धर्मभावना कितनी दबती जा रही थी, उसका हृदय धर्म से कितनी दूर हटता चला जा रहा था।

यह बात समझ लेनी चाहिए कि नामदेव के समय से ही देवगिरी पर पठानों की चढ़ाइयां हो चुकी थीं और मुसलमान महाराष्ट्र में फैल गए थे। इसके पहले से ही गोरखनाथ के अनुयायी हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए अंतस्साधना के एक सामान्य मार्ग का उपदेश देते आ रहे थे। इनकी भक्ति के अनेक चमत्कार भक्तमाल में लिखे हैं, जैसे विठोबा (ठाकुर जी) की मूर्ति का इनके हाथ से दूध पीना, नागनाथ के शिव मंदिर के द्वार का इनकी ओर घूम जाना इत्यादि। इनके महात्म्य ने यह सिद्ध कर दिखाया कि 'जांति पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।'

नामदेव की रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'निर्गुण पंथ' के लिए मार्ग निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। जहां तक पता चलता है, 'निर्गुण मार्ग' के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानन्द जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण कीं और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किए। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' वाले और दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगंबरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद। अतः तात्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलान भाव इनकी बाणी में मिलता है। इनका लक्ष्य एक ऐसा सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों याग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खंडन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमान की कुरबानी (हिंसा), नमाज, रोजा आदि की असारता दिए हुए ब्रह्म, माया, जीव, अनहद, नाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्मज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह कि ईश्वर पूजा की उन भिन्न–भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटा जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे। इस प्रकार देश में सगुण और निर्गुण के नाम से भक्तिकाल की दो धाराएं विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक समानांतर चलती रहीं। भक्ति के उत्थान काल के भीतर हिंदी भाषा की कुछ विस्तृत रचना पहले

पहल कबीर ही की मिलती है। अतः पहले निर्गुण मत के संतों का उल्लेख उचित ठहरता है। यह निर्गुण धारा दो शाखाओं में विभक्त हुई– एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी शुद्ध प्रेममार्गी शाखा (सूफियों की)।

टिप्पणी

पहली शाखा भारतीय ब्रह्म ज्ञान और योगसाधना को लेकर तथा उसमें सूफियों के प्रेमतत्व को मिलाकर उपासना के क्षेत्र में अग्रसर हुई और सगुण के खंडन में उसी जोश के साथ तत्पर रही जिस जोश के साथ पैगंबरी मत बहुदेवोपासना और मूर्तिपूजा आदि के खंडन में रहते हैं। इस शाखा की रचनाएं साहित्यिक नहीं हैं फुटकल दोहों या पदों के रूप में हैं जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटांग है। कबीर आदि दो एक प्रतिभासंपन्न संतों को छोड़ औरों में ज्ञानमार्ग की सुनी सुनाई बातों का पष्टिपेषण तथा हठयोग की बातों के कुछ रूपक भद्दी तुकबंदियों में हैं। भक्ति रस में मग्न करने वाली सरसता भी बहुत कम पाई जाती है। बात यह है कि इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत ह्रदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता। पर अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन संतों महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है। उच्च विषयों का कुछ आभास देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न करके, इन्होंने इसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। पाश्चात्यों ने इन्हें जो धर्म सुधारक की उपाधि दी है, वह इसी बात को ध्यान में रखकर।

दूसरी शाखा शुद्ध प्रेममार्गी सूफी कवियों की है जिनकी प्रेमगाथाएं वास्तव में साहित्य कोटि के भीतर आती हैं। इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेममार्ग का महत्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस 'प्रेमतत्व' का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है। इन प्रेम कहानियों का विषय तो वही साधारण होता है अर्थात राजकुमार का किसी राजकुमारी के अलौकिक सौंदर्य की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घर बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट और आपत्तियां झेलकर अंत में उस राजकुमारी को प्राप्त करना। पर 'प्रेम की पीर' की जो व्यंजना होती है, वह ऐसे विश्वव्यापक रूप में होती है कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखाई पड़ता है।

शुद्ध प्रेममार्गी सूफी कवियों की शाखा में सबसे प्रसिद्ध जायसी हुए, जिनकी पद्मावत हिंदी काव्य क्षेत्र में एक अद्भुत रत्न है। इस संप्रदाय के सब कवियों ने पूरबी हिंदी अर्थात अवधी का व्यवहार किया है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपना रामचरितमानस लिखा है। अपना भावनात्मक रहस्यवाद लेकर सूफी जब भारत में आए तब यहां उन्हें केवल साधनात्मक रहस्यवाद योगियों, रसायनियों और तांत्रिकों में मिला। रामेश्वर दर्शन का उल्लेख 'सर्वदर्शन संग्रह' में है। जायसी आदि सूफी कवियों ने हठयोग और रसायन की कुछ बातों को भी कहीं–कहीं अपनी कहानियों में स्थान दिया है। अर्थ शून्य बाहरी विधि विधान, तीर्थाटन, पर्व स्नान आदि की निस्सारता का संस्कार फैलाने का जो कार्य वज्रयानी सिद्धों और नाथ पंथी जोगियों के द्वारा हुआ, उसका उल्लेख हो चुका है। पर उनका उद्देश्य 'कर्म' को उस तंग गड्ढे से निकालकर प्रकृत धर्म के खुले क्षेत्र में लाना न था बल्कि एक बारगी किनारे ढकेल देना था। जनता की दृष्टि को आत्म

टिप्पणी

कल्याण और लोक कल्याण विधायक सच्चे कर्मों की ओर ले जाने के बदले उसे वे कर्म क्षेत्र से ही हटाने में लग गए थे। उनकी वानी तो 'गुह्य, रहस्य और सिद्धि' लेकर उठी थी। अपनी रहस्यदर्शिता की धाक जमाने के लिए वे बाह्य जगत की बातें छोड़े घट के भीतर के कोढ़ों की बात बताया करते थे। भक्ति, प्रेम आदि हृदय प्रकृत भावों का उनकी अंतस्साधना में कोई स्थान न था क्योंकि इनके द्वारा ईश्वर को प्राप्त करना तो सबके लिए सुलभ कहा जा सकता है। सामान्य अशिक्षित या अर्धशिक्षित जनता पर इनकी बानियों का प्रभाव इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता था कि वह सच्चे शुभकर्मों के मार्ग से तथा भगवद् भक्ति की स्वाभाविक हृदय–पद्धति से हटकर अनेक प्रकार के मंत्र–तंत्र और उपचारों में जा उलझे और उसके विश्वास अलौकिक सिद्धियों पर जा जमे। इसी दशा की ओर लक्ष्य करके गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था–

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।

सारांश यह है कि जिस समय मुसलमान भारत में आए उस समय सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। प्रतिवर्तन के लिए बहुत कड़े धक्कों की आवश्यकता थी।

ऊपर जिस अवस्था का दिग्दर्शन हुआ है वह सारे जनसमुदाय की थी। शास्त्रज्ञ विद्वानों पर सिद्धों और जोगियों की बानियों का कोई असर न था। वे इधर–उधर पड़े अपना कार्य करते जा रहे थे। पंडितों के शास्त्रार्थ भी होते थे, दार्शनिकों द्वारा खंडन–मंडन के ग्रंथ भी लिखे जाते थे। विशेष चर्चा वेदांतों की थी। ब्रह्म सूत्रों पर, उपनिषदों पर, गीता पर, भाष्यों की परंपरा विद्वन्मंडली के भीतर चली आ रही थी जिससे परंपरागत भक्ति मार्ग के सिद्धांत पक्ष का कोई रूपों में नूतन विकास हुआ। कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विकसित और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिंदू जनता ही नहीं, देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गए। प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया। भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे–धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। रामानुजाचार्य (संवत् 1073) ने शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था उसकी ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी।

कबीर ने यद्यपि नाथ पंथ की बहुत सी बातों को अपनी बानी में जगह दी, पर यह बात उन्हें खटकी। इसका संकेत उनके ये वचन देते हैं–

झिलमिल झगरा झूलते बाकी रही न काहु
गोरख अटके कालपुर कौन कहावै साहु?
बहुत दिवस ते हिडया सुन्नि समाधि लगाई।
कहरा पड़िया गाड में दूरि परा पछिताई।

(कहरा = कर, हाथी का बच्चा = हठ योग की क्रिया करने वाला।)

अतः कबीर ने जिस प्रकार एक निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा उसी प्रकार उस निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्व लिया

टिप्पणी

और अपना 'निर्गुण पंथ' धूमधाम से निकाला। बात यह थी कि भारतीय भक्ति मार्ग साकार और सगुण या प्रेम का विषय नहीं माना जाता। इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेम भाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा थां उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊंचे से ऊंचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। उनका 'निर्गुणपंथ' चल निकला जिससे नानक, दादू, मलूक दास आदि अनेक संत हुए। कबीर तथा अन्य निर्गुण पंथी संतों के द्वारा अंतस्साधना में रागात्मिका 'भक्ति' और 'ज्ञान' का योग तो हुआ, पर 'कर्म' की दिशा वही रही जो नाथ पंथियों के यहां थी। इन संतों के ईश्वर, ज्ञानस्वरूप और प्रेमस्वरूप ही रहे, धर्मस्वरूप को लेकर, जिसकी रमणीय अभिव्यक्ति लोक की रक्षा और रंजन में होती है, प्राचीन वैष्णव भक्ति मार्ग की रामभक्ति शाखा उठी। कृष्ण भक्ति शाखा केवल प्रेमस्वरूप ही लेकर उठी।

यहां पर एक बात की ओर ध्यान दिला देना आवश्यक है प्रतीत होता है। साधना के जो तीन अवयव कर्म, ज्ञान और भक्ति कहे गए हैं, वे सब काल पाकर दोषग्रस्त हो सकते हैं। 'कर्म' अर्थ शून्य विधि–विधानों से निकम्मा हो सकता है, 'ज्ञान' रहस्य और गुह्य की भावना से पाखंडपूर्ण हो सकता है और 'भक्ति' इंद्रियोपभोग की वासना से कलुषित हो सकती है। भक्ति की निष्पत्ति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है। जहां श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव जिसका लगाव धर्म से होता है छोड़कर केवल प्रेम लक्षणा भक्ति ली जाएगी वहां वह अवश्य विलासिता से ग्रस्त हो जाएगी।

भक्तिकाल नामकरण

हिंदी साहित्य का काल विभाजन एवं विभिन्न कालों का उपयुक्त नामकरण साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण समस्या है।

हिंदी साहित्य की परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ का महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य शुक्ल ने ग्रंथ की भूमिका में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए जनता की चित्तवृत्ति को महत्व दिया है। उनके अनुसार आदि से अंत तक इन चित्तवृत्तियों को परखते हुए साहित्य–परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। शुक्ल जी ने प्रत्येक काल की अवधि निश्चित करते हुए उसकी मूल प्रवृत्तियों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है तथा उस काल की विशेष प्रवृत्ति को लक्षित करते हुए उसी के आधार पर काल का नामकरण करने का भी प्रयास किया है।

आचार्य शुक्ल का काल विभाजन निम्नलिखित है–

1. आदिकाल (वीरगाथा काल)– संवत् 1050 से 1375 तक
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)– संवत् 1375 से 1700 तक
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)– संवत् 1700 से 1900 तक
4. आधुनिक काल (गद्यकाल)– संवत् 1900 से आज तक।

टिप्पणी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य के इतिहास के संदर्भ में पूर्ण रूप से स्पष्ट विचार प्रस्तुत करते हुए युगीन परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा है। आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन की एक बहुत बड़ी विशेषता है– संपूर्ण भक्तिकाल को चार शाखाओं में विभाजित कर उसे धार्मिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का स्तुत्य प्रयास। भक्तिकाल को निर्गुण भक्ति धारा एवं सगुण भक्ति धारा में बांटकर उसके भी उपविभाग कर दिए हैं जो अन्य साहित्येतिहास प्रणेताओं का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य में भक्ति के उदय की कहानी को न तो पराजित मनोवृत्ति का परिणाम मानते हैं और न ही इसे मुस्लिम राज्य की प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया। उनके शब्दों में– "यह बात अत्यंत उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिद्ध में और फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई दक्षिण में।" ऐसी बात भी नहीं है कि सभी मुसलमान शासक अन्यायी और अत्याचारी थे। उनमें बहुत से परम उदार और सहिष्णु भी थे। उनके द्वारा संस्कृति, साहित्य ओर कला को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। मुसलमान शासकों के बलात् इसलाम के प्रचार के प्रतिक्रिया रूप में भारत में भक्ति का उदय हुआ तो उसी समय एशिया और यूरोप के अन्य देशों में भी समान पद्धति से इसलाम का प्रचार किया गया। तब वहां भी भक्ति का उदय होना चाहिए था, पर हुआ नहीं। यह भी बात नहीं कि उस समय भारत से मुसलमानों का संपर्क न था। भारत पहले ही कंधार (सीस्ता) के मुसलमान के चिर संपर्क में था। राजपूत नरेश अंतिम दम तक स्वाधीनता के लिए प्राणपण से जूझते रहे ओर उनमें से अनेक स्वतंत्र भी रहे। वहां किसी प्रकार की निराशा नहीं थी, तब वहां निराशा वेदनाजन्य भक्ति कैसे प्रवाहित हो उठी? हिंदू सदा आशावादी रहा। शंकर रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बार्क, रामानन्द, चैत्तन्य और बल्लभाचार्य प्रायः ये सभी आचार्य मुस्लिम युग की उपज हैं। पर वे सदा देश की राजनीतिक परिस्थितियों में निर्लिप्त रहे। कबीर, नानक, सूर, तुलसी, नन्ददास, जायसी आदि की भी यही दशा है। इनका साहित्य उल्लासमय प्राणों की स्फूर्तिमय स्पंदन से संबलित है। इसमें निराशा की छाया तक नहीं है। यदि राजनीतिक पराजय ही भक्ति के उदय का एकान्तिक कारण होता तो जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान आदि सूफी कवि एवं कबीर इन भक्तिकालीन मुसलमानों द्वारा भक्ति पद्धति को अपनाने के लिए यह तर्क उपस्थित नहीं किया जा सकता।

बाबू गुलाबराय के अनुसार भक्ति युग को हारी मनोवृत्ति का परिणाम तथा मुस्लिम राज्य की प्रतिक्रिया कहना असमीचीन है। भक्ति काव्य में भारतीय संस्कृति और आचार–विचार की पूर्णतः रक्षा हुई है। भक्ति काव्य जहां उच्चत्तम धर्म की व्याख्या करता है, वहीं उसमें उच्च कोटि के काव्य के भी दर्शन होते हैं। उसकी आत्मा भक्ति है, उसका जीवन स्रोत रस है, उसका शरीर मानवी है। रस की दृष्टि से भी यह काव्य श्रेष्ठ है। यह साहित्य एक साथ ह्रदय, मन और आत्मा की भूख को तृप्त करता है। यह काव्य लोक तथा परलोक को एक साथ स्पर्श करता है। यह साहित्य भक्ति का साहित्य है। इसमें आडम्बर–विहीन और सुचितापूर्ण सरल जीवन की सरल झांकी है।

टिप्पणी

बहुत–सी पशुपत्त मत को मानने वाली और संन्यास से गृहस्थ बनी जातियां धीरे–धीरे मुसलमान होने लगीं। इस प्रकार की जुलाहा जाति नाथ मत को मानने वाली थी जो निरंतर उपेक्षित रहने के कारण क्रमशः मुसलमान होती गयी। इस जाति में मध्यकाल में स्वाधीन संत कबीर उत्पन्न हुए। जहां तक भक्ति आंदोलन पर ईसाई प्रभाव का सवाल है, इस संबंध में भी द्विवेदी जी के विचार उल्लेखनीय हैं– "इस प्रकार के अवतार का जो रूप है, इस पर महायान संप्रदाय का विशेष प्रभाव है....। इसाई धर्म में जो भक्तिवाद है, वही महायानियों की देन सिद्ध होने को चला है, क्योंकि ऐसे बौद्धों का अस्तित्व एशिया की पश्चिमी सीमा में सिद्ध हो चुका है और कुछ पंडित इस प्रकार के प्रमाण पाने का दावा करने लगे हैं कि स्वयं ईसा मसीह भारत के उत्तरी प्रदेशों में आये बौद्ध धर्म में दीक्षित भी हुए थे।"

डॉ. रामरतन भटनागर ने मध्ययुग के भक्ति आंदोलन को पौराणिक धर्म का पुनरुत्थान माना है। उन्हीं के शब्दों में, "मध्य युग के भक्ति आंदोलन को हम पौराणिक धर्म के पुनरुत्थान का आंदोलन भी कह सकते हैं। वस्तुतः गुप्तों के युग में विष्णु और लक्ष्मी को लेकर जिन धार्मिक भावनाओं का विकास हुआ था, वे ही इस युग में राधा–कृष्ण और सीता–राम के माध्यम से विकसित हुईं।"

डॉ. सत्येंद्र भक्ति का उद्‌भव द्रविड़ों से मानते हैं, दक्षिण के वैष्णव से नहीं। उन्हीं के शब्दों में– "भक्ति द्रविड़ उपजी लाये रामानन्द।" इस युक्ति के अनुसार भक्ति का आविर्भाव द्रविड़ों से हुआ। उक्ति कर्ता संभवतः नहीं जानता था कि उसका द्रविड़ से अभिप्राय संभवतः दक्षिण देश से ही था। किंतु नई प्रागैतिहासिक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि भक्ति का मूल, द्राविड़ी में है, दक्षिण के द्रविड़ों में नहीं। उनके महान पूर्वज मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के द्रविड़ों में। अभी तक संसार को जितने भी साक्ष्य प्रमाण प्राप्त हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के द्रविड़ एकेश्वरवादी थे। उनके इस ईश्वर का नाम शिव था। आर्यों ने भक्ति का भाव दक्षिण से प्राप्त किया था। भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में भक्ति की परंपरा सुदीर्घ काल से चली आ रही है। भक्ति का प्रतिपादन महाभारत और गीता में स्पष्ट रूप से हुआ है। महाभारत के शांति पर्व तथा भीष्म पर्व में नारायणोपाख्यान का वर्णन है। वस्तुतः पौराणिक धर्म पूर्ववर्ती भागवत धर्म का ही एक ऐसा नवपरिवर्तित रूप है जिसमें एक ओर भक्ति भावना को प्रमुख स्थान दिया गया। दूसरी ओर उनमें ऐसे तत्वों का समावेश हुआ जिससे वह जैन और बौद्ध धर्म की प्रतिस्पर्धा में टिक सके। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के स्वरूप का सांगोपांग विवेचन किया गया है। शांडिल्य भक्ति सूत्र रचना काल की दृष्टि से इससे भी पूर्व ठहरता है, पर उसमें विवेचन संबंधी स्पष्टता नहीं। जहां भक्ति के सैद्धांतिक स्वरूप का विकास सूत्र ग्रंथों में हुआ, वहां उसके व्यावहारिक रूप के विकास का प्रयत्न पुराण साहित्य के द्वारा संपन्न हुआ। 8वीं–9वीं शताब्दी में दक्षिण भारत में पौराणिक धर्म का प्रचार हो चुका था। भले ही 'कुमारिल' और शंकर के अकाट्य तर्कों ने सगुण स्वरूप भक्ति के विकास में कुछ व्यवधान खड़ा किया है। किंतु दक्षिण भारत के वैष्णवों ने भक्ति के संरक्षण का पूरा–पूरा प्रयत्न किया। दक्षिण भारत में आलवर भक्त हुए जिन्होंने शंकर के अद्वैतवाद की कोई परवाह न करते हुए भक्ति की धारा को प्रवाहमान रखा। आचार्य द्विवेदी ने भक्ति आंदोलन का श्रेय दक्षिण के उन आलवार भक्तों को दिया है। उनकी संख्या बारह मानी जाती है जिनमें बहुत सारे

टिप्पणी

ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध हो चुके हैं, जिनमें आचाल नाम की एक भक्तिन थी जो मीरा के समान कृष्ण को अपना पति मानती थी और वह कृष्ण के भीतर विलीन हो गयी थी। इन भक्तों का समय ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर 8वीं–9वीं शताब्दी तक माना गया है। इन भक्तों में भक्ति का व्यावहारिक पक्ष है। अनुमान है कि भक्ति का सिद्धांत पक्ष बहुत पहले से चला आ रहा होगा।

10वीं–11वीं शताब्दी के आचार्य नाथ मुनी हुए जिन्होंने वैष्णवों का संगठन आलवारों के भक्ति पूर्व गीतों का संग्रह, मन्दिरों में कीर्तन एवं वैष्णव सिद्धांतों की दार्शनिक व्याख्या आदि महत्वपूर्ण कार्य किया जिनसे भक्ति परंपरा को एक नया बल मिला। इसके उत्तराधिकारियों में रामानुजाचार्य हुए। उन्होंने विशिष्ट द्वैतवाद की स्थापना की।

उन्होंने भगवान विष्णु की उपासना पर बल देते हुए दास्य भाव की भक्ति का प्रचार किया। इसी परंपरा में रामानंद हुए जिन्होंने राम को अवतार मान करके उत्तरी भारत में राम भक्ति का परिवर्तन किया। आगे चलकर इसी संप्रदाय में महाकवि तुलसीदास हुए जिन्होंने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की कल्पना करके उनमें शील, शक्ति एवं सौंदर्य का समन्वय किया। आगे चलकर इसी भक्ति शाखा में कृष्ण भक्ति की–सी रसिकता का समावेश हआ और राम रसिक संप्रदाय चल निकला। दूसरी ओर द्वैतवाद के प्रवर्तक माधवाचार्य, द्वैताद्वैत्तवाद के संस्थापक निम्बकाचार्य और सुग्धा द्वैतवाद के प्रतिष्ठिापक बल्लभाचार्य हुए। माधवाचार्य ने शंकर के मायावाद का खंडन करके विष्णु की भक्ति का प्रचार किया। निम्बार्क ने लक्ष्मी और विष्णु के स्थान पर राधा और कृष्ण की उपासना पर बल दिया और पुष्टिमार्ग का परिवर्तन किया। चैतन्य महाप्रभु ने चैतन्य संप्रदाय, स्वामी हरिदास के साखी संप्रदाय ओर हितहरिवंश के राधावल्लभ संप्रदाय और शुद्धा द्वैतवाद के प्रतिष्ठापक बल्लभाचार्य हुए। माधवाचार्य ने राधा बल्लभ संप्रदाय के द्वारा कृष्ण भक्ति में माधुर्य भाव का प्रचार किया। सूर इसी परंपरा के समुज्ज्वल रत्न हैं जिन्होंने अपने हृदय की समस्त सात्विकता कृष्ण के गुणगान में उड़ेल दी। आगे चलकर राधा और कृष्ण का घोर शृंगारी रूप में चित्रण हुआ।

मुसलमानों में छुआछूत तथा ऊंच–नीच का अभाव था, तत्कालीन बौद्ध सिद्धों तथा नाथ योगियों के धर्म में भी इस प्रकार का कोई बंधन नहीं था। इन योगियों ने ईश्वर को घट के भीतर बताया। कर्मकांड को निःसार और वेदाध्ययन को ढकोसला बताया और यौगिक क्रियाओं पर विशेष बल दिया। इन योगियों ने संत मार्ग के लिए बहुत कुछ भूमि तैयार कर दी थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त नामदेव ने हिंदू–मुसलमानों के लिए सामान्य भक्ति मार्ग की स्थापना की। आगे चलकर कबीर, दादू, नानक आदि संतों ने भक्ति का ऐसा रूप विकसित किया जिसमें ईश्वर के सगुण, निर्गुण मिश्रित रूप की उपासना की गयी।

इस काल में कुछ सूफी मुसलमान हुए जिन्होंने हिंदू घरों की प्रेम कहानियों के माध्यम से ईश्वर के प्रेम स्वरूप का प्रचार किया। इस प्रकार इन लोगों ने हिंदू–मुस्लिम हृदयों के अजनबीपन को मिटाया। दक्षिण भारत में तो यह भक्ति की अजस्र धारा प्रबल वेग से चल रही थी किंतु उत्तर भारत में भी पौराणिक धर्म का प्रचार भी पहले से ही था। सगुण भक्ति के आवश्यक उपकरण– वैयक्तिक संबंध का ईश्वर के प्रति होना तथा

टिप्पणी

अवतारवाद पर विश्वास की भावनाएं इस प्रदेश की जनता में बद्धमूल थीं। अतः भक्ति का विरवा ऐसा नहीं है जो कि विदेश से लाया गया हो अथवा विधर्मियों द्वारा इसका सिंचन और पल्लवन हुआ हो, न तो यह निराशा प्रवृत्तिजन्य है और न ही किसी प्रतिक्रिया का फल। वस्तुतः यह एक ऐसी प्राचीन दर्शन प्रवाह और प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा की एक अविच्छिन्न धारा है कि इस धारा का प्रस्फुटन आकस्मिक नहीं। इसके लिए तो सुदीर्घ काल से सहस्रों मेघ खंड एकत्रित हो चुके थे।

आचार्य शुक्ल ने पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल की संज्ञा से भी अभिहित किया है जो कि प्रस्तुत काल की केवल एक ही प्रवृत्ति को ध्वनित करता है, जबकि सच यह है कि इस काल में भक्ति की धारा के साथ–साथ काव्य की अन्य अनेक परंपराएं भी पर्याप्त सक्रिय रही हैं। शुक्ल जी ने ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, कृष्ण भक्ति तथा रामभक्ति की धाराओं का उल्लेख तो किया है किंतु उन्होंने रसिक भक्ति की एक सशक्त काव्यधारा की उपेक्षा कर दी है। हमारा यह विश्वास है कि समूचे मध्यकाल में काव्य की समान धारायें प्रवाहित होती रही हैं। इस काल में धर्म, राज्य तथा लोकाश्रयों में साहित्य सृजन की प्रक्रिया बराबर चलती रही। भक्ति की धारा के अतिरिक्त मैथिली गीत परंपरा, ऐतिहासिक रास काव्य परंपरा, चरित काव्य परंपरा, ऐतिहासिक मुक्तक परंपरा, शास्त्रीय मुक्तक परंपरा, रोमांटिक कथा काव्य परंपरा और स्वच्छन्द प्रेम काव्य परंपरा की वेगवती काव्यधारा में मध्यकालीन साहित्य को उर्वर बनाती रही है, जिन्हें किसी भी दशा में भक्ति की धारा से क्षीण नहीं कहा जा सकता है। अतः प्रस्तुत काल को पूर्व मध्यकाल के नाम से पुकारना अपेक्षाकृत अधिक निरापद है। आधुनिक अनुसंधानों के द्वारा पर्याप्त नवीन सामग्री के सामने आ जाने पर पूर्व मध्यकाल को भक्ति काल की संज्ञा से अभिहित करना उसकी एकांगिकता का सूचक है।

भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियां

जिस काल में भगवान–धर्म के प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप मुख्यतः भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ था, हिंदी साहित्य के इतिहास में उसे 'भक्तिकाल' के नाम से पुकारा जाता है। इस युग को हिंदी साहित्य का 'पूर्वमध्यकाल' भी कहते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल का निर्धारण सन् 1318 से 1643 ई. तक किया है। विदेशी सत्ता प्रतिष्ठित हो जाने पर देश की जनता में गौरव, गर्व और उत्साह का अवसर न रह गया था। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवत–भक्ति ही एक सहारा रह गई थी। युगदृष्टा भक्त कवियों ने देश की जनता को संभालने के लिए जिस काव्य का गान किया, भक्ति काव्य उसी का शुभ परिणाम है। इस काल की विभिन्न परिस्थितियां इस प्रकार थीं–

1. राजनैतिक परिस्थितियां

हिंदी साहित्य में भक्ति युग के उदय के समय उत्तर भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। मुस्लिम शासक वर्ग का सारा ध्यान और शक्ति भारत में अपनी दृढ़ शासन स्थापित करने लगा रही थी, इसी कारण वे अपने धर्म इसलाम तक को भी भूलते जा रहे थे। शासन व्यवस्था सामंती ढांचे की थी, इसलिए संपूर्ण शक्ति शासकों के ही हाथ में रहती थी। प्रजा, चाहे वह हिंदू या मुसलमान, परेशान एवं दुखी थी। दूसरी ओर अनेक मुस्लिम शासकों की धार्मिक सहिष्णुता, उनकी भारतीय साहित्य और

टिप्पणी

कला के प्रति सम्मान की भावना में परिलक्षित होती है। अकबर का काल इसका जीता–जागता उदाहरण है। भक्ति काव्य का चरम विकास हमें मुगल साम्राज्य में ही होता हुआ मिलता है। मुगलों में अकबर का राज्यकाल सभी दृष्टियों में सर्वोपरि रहा है। वह हिंदू मुसलमानों के समन्वय संबंधी प्रयत्नों से शांत तथा व्यवस्था की स्थापना में सफल हुआ। इस समय तक देश की सैनिक शक्ति प्रायः क्षीण हो चुकी थी और विजेताओं का राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। कुछ आलोचकों ने भक्तिकाल का उदय मुस्लिम शासकों के अत्याचारों का परिणाम बताया है। परंतु यह बात पूर्णरूपेण सत्य नहीं जान पड़ती, क्योंकि भक्ति काल के प्रमुख कवि तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' में सभी से राम–भक्ति की याचना की है। उन्होंने राम से भी यही कहा कि 'हे राम मुझे कलिकाल सताता है।'

इस काल में हिंदू राजा पूर्णरूपेण पराजित हो चुके थे, इस कारण कविगण उनकी वीरता और शौर्य का वर्णन भी नहीं कर पाए, परिणामस्वरूप इस काल में वीर काव्य अपना प्रभाव खो चुका था।

2. सामाजिक परिस्थितियां

कई शताब्दियों से चली आ रही ऊंच–नीच की भावना ने इस काल में भी धार्मिक विद्रोह को जन्म दिया। इस काल में धर्म पर ब्राह्मणों का अधिपत्य था और वे धर्म की आड़ में समाज के निम्न वर्ग को सताने में कोई कसर नहीं उठा रहे थे। यह दशा केवल हिंदू जनता की ही नहीं थी, वरन इसलाम में भी यह धार्मिक आडंबर प्रवेश कर चुका था।

भक्तिकाल के प्रथम चरण में मुगलों का अत्याचार बहुत बढ़ गया। हिंदुओं की बहू–बेटियों का अपहरण किया जाता था। उन्हें बलात् धर्म–परिवर्तन के लिए बाध्य किया जाता था। मुस्लिम शासकों की नजरों से महिलाओं को बचाने के लिए पर्दा प्रथा एवं बाल–विवाह जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन हुआ।

हिंदुओं ने सामाजिक दृष्टि से मुसलमानों से अपने को दूर रखने में ही अपना कल्याण समझा। इस कारण खान–पान, छुआछूत के नियम कठोर हो गए। कालांतर में इन कठोर बंधनों ने ही सामाजिक दृष्टि से हिंदुओं को अत्यधिक संकीर्ण बना दिया और उनके आपसी जाति–भेदभाव ने और उग्र रूप धारण कर लिया। समाज में दो वर्ग हो गए और अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों ने जनमानस को पूर्ण रूप से जकड़ लिया।

3. धार्मिक परिस्थितियां

भक्तिकाल के प्रारंभ में धार्मिक विचारधारा अनेक मतों, संप्रदायों और परस्पर रूपों में बंट गई। इस काल में एक ओर सिद्धों और नाथों की विचारधाराओं से प्रेरित विभिन्न संप्रदायों का जन्म हुआ, वहीं वैष्णवों, शैवों में व्याप्त असहिष्णुता और विरोध दृष्टिगत हुआ। वैदिक धर्म की आस्था पर सिद्धों और नाथ–पंथियों की रहस्यमय साधना गहरा प्रभाव छोड़ चुकी थी। पूजापाठ, धार्मिक क्रियाकलाप आदि के प्रति जो आस्था हिंदू जीवन में थी, उसकी जड़ें प्रायः हिल चुकी थीं। सांप्रदायिकता तथा अंधविश्वास निरंतर जोर पकड़ रहा था। पाखंड की पूजा हो रही थी। पंडित और मौलवी धर्म की व्याख्या करके हिंदू और मुस्लिम धर्मों को परस्पर विरोधी बना रहे थे। इस काल में धर्म–साधनाओं की तो मानो बाढ़ आ गई थी। धर्म की आड़ में समाज में अनेक अनुचित कार्य होते थे। ऐसे समय किसी समन्वयवादी दर्शन और आचार पद्धति की आकांक्षा थी, जो जीवन की सहज अनुभूति पर आधारित हो। इसकी पूर्ति भक्ति आंदोलन में हुई।

टिप्पणी

ईश्वर संबंधी धारणा के स्वरूप उपासना पद्धति, दर्शन एवं भक्ति की मनोभावना के भेद के कारण भक्ति एक साथ ही कई धाराओं में बंटकर प्रवाहित होने लगी–

(क) निर्गुण भक्तिधारा– (1) ज्ञानाश्रयी शाखा और (2) प्रेमाश्रयी शाखा।

(ख) सगुण भक्तिधारा– (1) कृष्ण भक्ति–शाखा और (2) रामभक्ति शाखा।

4. साहित्यिक परिस्थितियां

भक्तिकाल जहां इतने धर्म संप्रदायों, बाह्याडंबरों, अंध विश्वासों और रूढ़ियों से घिरा हुआ था, वहीं जनता व शासक वर्ग की दूरियां दिन–प्रतिदिन बढ़ रही थीं। शासक वर्ग मनमानी कर रहा था। जनता पर अत्याचार हो रहा था। छुआछूत, ऊंच–नीच की भावना प्रबल हो रही थी। कवियों के सम्मुख मुख्य लक्ष्य कविता करना नहीं, वरन् जनता का मार्ग प्रशस्त करके उसे सही दिशा देना था। कबीर, तुलसी आदि ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और दोनों कवि अपने इस उद्देश्य में सफल भी हुए। इस काल में कुछ कवि तो संसार शासन, जनता आदि से विमुख हो भक्ति में लीन हो गए, परंतु तुलसी और कबीर ने भक्ति का गुणगान करना ही पर्याप्त न समझा। वे समाज में व्याप्त दूषित वातावरण को सुलझाने में लग गए। समग्र रूप में यदि यह कहा जाए कि इस काल का प्रत्येक कवि सच्चे कवि की कसौटी पर खरा उतरता है तो अतिशयोक्ति न होगी।

5. सांस्कृतिक स्थिति

सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिंताधारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं की आनुषंगिक उपलब्धियां हैं। इन सबका क्षेत्र विशाल मानव समाज है, जिसकी प्रेरणा और प्रसाद से मनुष्य जीवनयापन करता है। भारतीय जीवन में समय–समय पर विदेशी विजातीय तत्वों के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहे हैं। परंतु इन्हीं से होकर ऐसी जीवनी शक्ति का संचार भी होता रहा है कि हम डूबते–डूबते भी उबरते चले आये हैं, निष्प्रभ या निस्तेज न होकर नवजीवन की अरुणिमा से महिमामंडित होते रहे हैं। इन सबके मूल में हमारी समन्वय–साधना की प्रवृत्ति उजागर रही है, जो ब्राह्मण युग (ई.पू. 800 से ई.पू. 600 तक) से ही उत्तर भारत में व्यक्त हो चुकी थी। दक्षिण भारत में यह प्रवृत्ति बाद में उभरी। वैदिक देवी–देवताओं के बाह्य विधानों से बिदक कर श्रमण–संस्कृति के उन्नायकों ने जीवन का नया पथ खोज निकालने का यत्न आरंभ किया, परंतु गुप्त साम्राज्य की स्थापना के अनंतर दोनों ही क्षयमान हो गए। मौर्य साम्राज्य के बिखराव के पश्चात ब्राह्मणवाद का नये ओज और तेज के साथ अभ्युत्थान हुआ। पुष्यमित्र के शासनकाल में समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए सूत्रों–स्मृतियों की व्याख्या तथा रचना होने लगी और गौ तथा ब्राह्मणों की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी।

परवर्ती गुप्तकाल में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ और देवी–देवताओं तथा देवालयों की स्थापना द्वारा लुप्त प्रायः धर्म व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया। उन दिनों वैष्णव धर्म को विशेष प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिला और स्मृति ग्रंथों में लोक प्रचलित मान्यताओं को भी स्थान दिया गया। ब्राह्मणेतर श्रमणादि तत्वों से समन्वित ब्राह्मणवाद को विद्वानों ने नवब्राह्मणवाद कहा, जिसका स्वरूप वैदिक परंपरा से विच्छिन्न न होकर भी भिन्न अवश्य था। सत्य तो यह है कि ब्राह्मणवाद का भी

टिप्पणी

अमिश्रित रूप से पुनरुत्थान नहीं हुआ था। दूसरों के अनेक मत–विश्वास उसमें समाहित थे। इसी प्रकार नव ब्राह्मणवाद में भी ब्राह्मणवाद के अतिरिक्त श्रमण, द्रविड़ तथा अन्य आदिवासियों के मत और मान्यताएं परस्पर एकीभूत हो गयी थीं। इसकी कुछ सामान्य विशेषताएं थीं– (क) धर्म विशेष का लौकिकीकरण, (ख) अवतारवाद की स्वीकृति, (ग) देवालयों में देव–प्रतीकों की पूजा, (घ) तीर्थादि की स्थापना, (ङ) धर्म के भारतीय स्वरूप का संरक्षण।

अधिकांश पुराणों की रचना का भी यही हाल है। मध्यकालीन हिंदू जीवन–प्रणाली पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। पुराणकारों ने समन्वय–साधना की प्रवृत्ति को पुनर्जाग्रत किया। परंपरा, दृष्टिभेद, रुचिवैविध्य, देशकाल तथा तत्कालीन समाज से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होंने तदनुरूप पूजा–उपासना तथा कर्मकांडीय पद्धतियों को अपनाकर उनमें दार्शनिकता का पुट दे दिया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, गौ व ब्राह्मण–रक्षा, धर्म शास्त्रों का सम्मान और कर्मफल में विश्वास पौराणिक धर्म की प्रमुख विशेषताएं थीं, जिनमें लोक–विश्वास का भी योगदान रहा। साधु–संन्यासियों का सम्मान और स्वर्ग–नरक, श्राद्ध–पिंडदान आदि इस युग की अन्य उल्लेखनीय विशेषताएं हैं जिनकी धुरी पर हिंदू– जीवनचक्र चलता रहा और इसलाम के भारत–प्रवेश के पूर्व तक अविकृत रूप से प्रचलित रहा।

मध्यकालीन हिंदू समाज के दो पक्ष हमारे सामने आते हैं– एक वह जो शास्त्रों का समर्थक है, दूसरा वह, जो परंपरागत विश्वासों तथा मान्यताओं अथवा स्वानुभूति का पक्षधर है। यह दूसरा पक्ष ही पौराणिक पक्ष है। परंतु हम बहुधा यह पाते हैं कि दोनों पक्षों में परस्पर अंतरावलंबन है। कभी जनघोषित विश्वास शास्त्र सम्मत बन जाते हैं तो कभी शास्त्र विहित मान्यताएं जनता द्वारा अस्वीकृत हो जाती हैं। शास्त्र की दुहाई देने की अपेक्षा स्वानुभूति पर निर्भर करना अधिक श्रेयस्कर है। इसी अवस्था के कारण विपक्षी अथवा विरोधी के प्रति सहिष्णुता भाव का प्रादुर्भाव होता है। और न्यायोचित उदार व्यवहार का शुभारंभ होता है। हमारे यहां आध्यात्मिक उपलब्धि को जीवन का परिष्कार माना गया है, जिसके कारण धर्मानुभूति और दार्शनिक चिंतन का अन्योन्याश्रय संबंध जुड़ गया है। उपनिषद् भारतीय दर्शन के उपजीव्य हैं और इसी आधार पर वेदांत भी विकसित हुआ है। औपनिषदिक विचारों में भी सर्वत्र मतैक्य नहीं है। इनमें समन्वय की स्थापना के लिए बादरायण (300 ई.) ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की, जिस पर शंकराचार्य (788–820 ई.) ने 'शारीरिक भाष्य' लिखा। इस भाष्य में निरूपित व्याख्या का इतना महत्व हो गया कि सर्वसाधारण में वेदांत का अर्थ केवल शांकर–वेदांत समझा जाने लगा। इसमें शब्द प्रमाण को मुख्य मान कर उसे तर्क द्वारा पुष्ट करने का यत्न किया गया है। शंकराचार्य की ही भांति कुमारिल भट्ट ने भी हमारी चिंता धारा को दूर तक प्रभावित किया है। परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं मतों की व्याख्या–प्रतिव्याख्या के रूप में विशिष्टा, केवलाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि मतों की स्थापना की। इन सभी में ईश्वर को निरपेक्ष मानकर उसकी भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, परंतु आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के सिद्धांत प्रायः ज्यों के त्यों रह गए हैं।

2.2.2 भक्तिकाल काल की प्रमुख प्रवृत्तियां

भक्तिकाल में लोकोन्मुखी साहित्य सर्जन की प्रवृत्ति अधिक मुखर थी। अब इसमें सिद्धों, मुनियों, नाथों तथा सूफियों द्वारा प्रतिपादित विचारधाराएं पल्लवित होने लगीं। साहित्य

टिप्पणी

निर्माण की नवीन पद्धतियां तथा प्रवृत्तियां अपना स्वरूप ग्रहण करने लगीं। वास्तविकता यह है कि भक्तिकाल में भारत पर मुस्लिम शासन की छाया थी। मुस्लिम शासकों द्वारा इसलाम धर्म के विस्तार पर जोर दिये जाने से जनता में भय का वातावरण व्याप्त था। देव मंदिरों को विध्वंस, मूर्तियों का तोड़ा जाना, जन सामान्य में निराशा एवं आक्रोश की मिली जुली भावनाओं को जन्म दे रहा था। इन परिस्थितियों में आस्तिकता एवं ईश्वरोपासना ही एक मात्र अवलंब भी इन युगीन भावनाओं के अनुरूप ही इस काल के कवियों का रचना–प्रयास रहा।

भक्तिकाल का सामान्य परिचय देते हुए डॉ. श्यामसुंदर दास लिखते हैं– "जिस युग में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य–वाणी उनके अंतःकरणों से निकलकर देश के कोने–कोने में फैली थी उसे साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल कहते हैं।"

भक्तिकाल की सभी विचारधाराएं एक ही लक्ष्य की ओर प्रवाहित होती हैं और वह लक्ष्य है– भक्ति। वैष्णव–संप्रदाय, शैव–संप्रदाय, देवी संप्रदाय सभी का मूल भगवद् विषयक भक्ति है। निर्गुण एवं सगुण कवियों का प्राप्य भी परमात्मा ही है जिसे वह साकार एवं निराकार में देखते हैं।

भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियों अथवा विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित हैं–

1. **नाम की महत्ता**– भक्ति काल की निर्गुण एवं सगुण दोनों ही शाखाओं में ईश्वर के जप–कीर्तन व नाम स्मरण को उससे भी बड़ा माना गया है। कबीर 'नाम' के मर्म को इस प्रकार समझाते हैं–

   दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम न जाना।

   तुलसी भी राम की महत्ता को स्वीकार करते हुए राम के नाम को राम में बड़ा मानते हैं। उनके अनुसार राम ने तो केवल अहल्या का उद्धार किया था, किंतु उनका नाम तीनों लोकों के उद्धार में समर्थ है।

2. **गुरु की महत्ता का प्रतिपादन**– भक्ति काल में गुरु के प्रति विशेष सम्मान की भावना दृष्टिगोचर होती है। निर्गुण काव्य धारा के कीबर एवं सगुण काव्य धारा के श्रेष्ठ तुलसी तथा प्रेम मार्गी कवि जायसी सभी गुरु के प्रति श्रद्धावान हैं।

   कबीर कहते हैं–

   गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
   बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

   तुलसी कहते हैं–

   बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
   अमिअ मूरिमय चूरन चारु, समन सकल भव रुज परिवारू।।

   जायसी ने भी 'गुरु सुआ मोहि पन्त दिखावा' कहकर गुरु को ही अपना मार्गदर्शक माना है।

टिप्पणी

3. **भक्ति का प्रधान्य**– भक्तिकाल में सभी शाखाओं में भक्ति भावना की प्रधानता रही है। निर्गुण, सगुण, सूफी सभी कवियों के काव्य का मूल भक्ति है। कबीर राम की भक्ति को संसार के सभी वैभवों से बड़ा मानते हैं तथा सगुण काव्य के सूरदास का चित्त भी ईश्वर के रूप में रमण करता है।

सब विधि अगम विचारहिं ताते। सूर सगुण लीला पद गाते।।

जायसी के चारों अवस्थाओं (शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारीफत) को भक्ति का साधन माना है। राम भक्त एवं कृष्ण भक्त कवियों के काव्य को तो एक मात्र आधार भक्ति ही है। तुलसीदास की तो समस्त भक्तिभावना राम में डूबकर राममय हो उठी है। यह तुलसी की भक्ति का चरमोत्कर्ष ही है कि वह विष्णु के केवल राम रूप को ही प्रणाम करते हैं–

कहा कहौ छवि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बाण लो हाथा।।

4. **संसार की असारता का चित्रण**– भक्तिकालीन काव्य में दार्शनिकता पर जोर दिया गया है। कबीर संसार के असत्य एवं ब्रह्म को ही सत्य मानते हैं। संसार की असारता का वर्णन करते हुए कबीर ने कहा है–

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के ब्यौहार के, झूठे रंग ने भूल।।
झूठे सुख को सुख कहै, मानत न मन मोद।
खलकु चबीणा काल का, कुछ मुख में कुछ गोद।।

5. **आडम्बरों का विरोध**– भक्तिकालीन कवि मिथ्या आडंबरों का विरोध कर उन्हें त्यागने का संदेश देते हैं। कबीर तो समाज सुधारक के रूप में प्रसिद्ध है ही तुलसी भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। कबीर झूठे पाखंडी लोगों का उपहास करते हुए कहते हैं–

मूंड मुडाए हरि मिले तो सब कोई लेय मुडाय।
बार बार के मूँडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय।।

तुलसी जाति–पांति का विरोध कर सभी को राम के प्रेम का पात्र मानते हैं–

जाति–पाँति पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि को होई।।

6. **अहंकार का त्याग**– अहंकार परमात्मा से मिलन में बाधा पहुंचाता है। अहं भाव को त्यागकर ही जीव परमात्मा में एकरूप होता है। कबीर कहते हैं–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि।।

तुलसी की भक्ति तो दैन्य भाव की भक्ति है। तुलसी राम को अपना प्रभु मानते हुए स्वयं को उनका दास समझते हैं। वह माता सीता से प्रार्थना करते हुए कहते हैं–

कबहुँक अम्ब अवसर पाई।
मेरियौ सुधिधयवी कछु करुन कथा चलाई।।

टिप्पणी

स्वयं को अत्यधिक दीन, हीन, क्षीण समझकर तुलसी ने राम की कृपा की याचना की है।

7. **काव्य रूप**– भक्तिकाल में काव्य रचना के दो रूप परिलछित होते हैं। राम भक्ति शाखा के कवियों ने अधिकांशतः प्रबंध काव्य में रचना की है तथा संतकवि मुक्तक रचना शैली को अपनाते हैं। 'श्रीरामचरितमानस' एवं 'पदमावत' श्रेष्ठ प्रबंध काव्य है तथा कबीर की सखियों में ज्ञान की अगाधता एवं सूर के पदों के प्रेम की सरसता भक्त जनों को आकंठ डुबो देती है।

8. **भाषा**– भाषा की दृष्टि से भक्तिकाल में अवधी एवं ब्रज दोनों क्षेत्रीय बोलियों का साहित्यिक विकास दृष्टिगत होता है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में अवधी को चरमोत्कर्ष प्रदान किया है तथा सूरदास का काव्य ब्रजभाषा के माधुर्य से मंडित है।

2.2.3 भक्तिकाल की विभिन्न काव्यधाराएं एवं विशेषताएं

• ज्ञानाश्रयी शाखा

भगवद् प्राप्ति के दो मार्ग हैं– ज्ञान मार्ग एवं भक्ति मार्ग। यह दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। वस्तुतः भक्ति–भावना ज्ञान की अनुभूति से ही उत्पन्न होती है। ज्ञान को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन मानने वाले संत कवि भी प्रेम की कोमल अनुभूतियों से अछूते नहीं रह सके। कबीर के काव्य में सहज प्रेम की एकात्मकता का चित्रण है। संयोगावस्था में जीवात्मा परमात्मा के साथ एकरूप हो जाती है। कबीर कहते हैं–

लाली मेरे लाल की जित देखूँ उत लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल।।

तात्पर्य यह है कि जीव अंततः अपने अंशी ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। यही दार्शनिक विचारधारा संत साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।

ज्ञानमार्गी शाखा की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **निर्गुणोपासना पर बल**– निर्गुण ब्रह्म का संबंध ज्ञान मार्ग के साथ है तथा उनका सगुण रूप भक्ति की प्रेममयी छाया में निवास करता है। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है। वह कहते हैं–

"निरगुन राम जपहु रे भाई
अविगत की गति लखी न जाई।
चारि बेद जाकै सुमरत पुराना
नौ व्याकरनां मरम न जाना।"

अन्यत्र कबीर निर्गुण की अरूपता बताते हुए कहते हैं–

जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास क्षैं पावरा, ऐसा तत्त अनूप।।

साधक परम सत्य की अनुभूति निर्गुण ब्रह्म की उपासना में करना चाहता है।

टिप्पणी

2. **रहस्यवाद**– संत साहित्य में निर्गुण ईश्वर का वर्णन होने के कारण रहस्यवाद स्वतः ही आ गया है। कबीर, रैदास आदि भक्त कवियों ने ब्रह्म के अस्पष्ट एवं सर्वव्यापी रूप को वर्णित किया है। यहां निर्गुण ब्रह्म को नेति–नेति कहकर स्पष्ट करने का प्रयत्न है, अतः दार्शनिक रहस्यवाद की सृष्टि होती है। उपनिषदों में भी कहा गया है, "यह आत्मा न तो प्रवचन से प्राप्त हो सकती है, न शुद्धि बुद्धि से और न विशेष श्रवण से। जिसको यह वरण करती है, उसी को यह प्राप्त हो सकती है और उसी के प्रति अपने आपको व्यक्त करती है।"

   कबीर की निम्नलिखित रचना से साधनात्मक रहस्यवाद की पुष्टि होती है–

   "अवधु मेरा मन मतियारा।
   उन्मनि–चढ्या मगन–रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।
   गुड़ फरि ग्याँन ध्याँन करि महुवा, भव भाठी करिभारा।"

3. **आडंबरों एवं मिथ्याचारों का विरोध**– समाज में भ्रम की स्थिति उत्पन्न करने वाले धार्मिक आडंबरों का संत कवि आजीवन विरोध करते रहे। हिंदुओं के व्रत–तीर्थ–तिलक एवं मुसलमानों की अजान दोनों ही भगवद् भक्ति के उचित साधन नहीं हैं। कबीर कहते हैं–

   काँकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
   ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।
   माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर
   कर का मन का डारि दे, मन का मनका फेर

   संत कवि प्रेम एवं साधना के कठिन मार्ग पर चलकर भगवद् प्राप्ति का उपदेश देते हैं। उनके विचार से मूर्ति पूजा व जप तिलक कोरा दिखावा है। इन सबसे प्रभु प्रसन्न नहीं होते। इसी प्रकार खुदा भी ईश्वर का ही दूसरा नाम है, केवल मस्जिद पर चढ़कर अजान देने से उसे प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

4. **सामाजिक विषमताओं का विरोध**– एक ही ईश्वर की संतान होने से कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है। जाति–पांति का भेद भाव व छुआछूत, जातिगत विद्वेष समाज के ठेकेदारों ने केवल निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए बना रखे हैं। उपर्युक्त संदेश देकर संत कवियों ने सामाजिक विषमता का विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि भक्ति का मार्ग सबके लिए समान रूप से खुला है सब एक ही ईश्वर की संतान हैं।

5. **गुरु के प्रति श्रद्धा**– ईश्वर केवल निर्मल चित्त में ही निवास करते हैं तथा ऐसा होने के लिए चित्त की कलुषता तथा आसन दूर होना आवश्यक है। चित्त को पवित्र एवं प्रकाशित करने के लिए ज्ञान का आलोक केवल गुरु ही प्रदान करते हैं। गुरु भक्ति एवं मुक्ति को देने वाले हैं, अतः संत कवियों ने गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव होना आवश्यक माना है। संत संप्रदाय गुरु को ब्रह्म से भी महान मानता है। कबीर कहते हैं–

   गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
   बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताया।।

टिप्पणी

6. **लोक कल्याण की भावना**– संत कवियों के विद्रोह का उद्देश्य लोक कल्याण की भावना में निहित है। उनके समय से समाज दो वर्गों में विभाजित था। पहला वर्ग शोषकों का था एवं दूसरा शोषित–पीड़ित वर्ग था। संत कवियों की हिमायत पीड़ित वर्ग के साथ थी। पीड़ितों एवं दबे शोषितों को उठाने में इन कवियों ने अपने काव्य द्वारा अनथक प्रयास किया।

7. **नारी के प्रति दृष्टिकोण**– संत कवियों का दृष्टिकोण नारी के प्रति अनुदार था, यह धारण भ्रामक है। वास्तविकता यह है कि संत कवि नारी के 'कामिनी' रूप के विरोधी थे। वे ऐसी नारी को 'माया' मानते हैं, जो पुरुष को सांसारिक वासनाओं से बांधती है। पति से प्रेम रखने वाली, उसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाली नारी का उन्होंने कभी विरोध नहीं किया।

"पतिव्रता मैली भली, काली, कुचित, कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप।"

8. **भाषा**– ज्ञानमार्गी संत कवियों का लक्ष्य तो जनजागरण है अतः उनकी भाषा का कोई व्यवस्थित रूप नहीं मिलता। यह अवश्य कहा जा सकता है कि संत कवियों की भाषा सहज, सरल व प्रवाहपूर्ण है। उसमें भावों को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है। संत कवियों की रुचि पर्यटन में थी, अतः भाषा में सभी प्रांतों की बोलियों का मिश्रण है।

9. **अलंकार**– संत कवियों के काव्य में सभी प्रमुख अलंकार पाये जाते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, अतिशयोक्ति सभी अलंकार स्वाभाविक रूप से संतों के काव्य में आये हैं।

10. **छंद**– संत काव्य में दोहा, पद, चौपाई आदि छंद प्रमुखता से पाये जाते हैं।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों का धर्म विश्व–एकता एवं विश्व प्रेम है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना इन्होंने अपनी रचनाओं में बहुत अच्छी प्रकार प्रतिपादित की है। संत कवि ऐसे समाज को देखना चाहते थे, जिसमें सब समान हों। वासनाओं के कलुष से रहित हृदय में ही पवित्रता एवं सतोगुणी आचरण का निवास होता है। हृदय मंदिर में ज्ञान का दीपक जलाकर भक्त साधक ब्रह्मानंद की अनुभूति करता है।

• प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेम मार्गी काव्य को विद्वानों ने 'प्रेमकाव्य', 'प्रेम कथानक–काव्य', 'प्रेमाख्यान काव्य', 'सूफी काव्य' आदि नामों से पुकारा है। इसका कारण यह है कि इन काव्यों में प्रेम–तत्व की प्रचुरता है। यहां प्रेम का स्वच्छंद चित्रण, सौंदर्य–भावना, साहसपूर्ण क्रियाकलाप का वर्णन है। यही नहीं प्रेमाख्यानों का प्रेम समाज सम्मत भी नहीं है। इसी कारा विद्वानों ने इसे अभारतीय घोषित कर दिया। आज तो यह स्पष्ट होता जा रहा है कि रूढ़ियों की अत्यधिक जकड़न की प्रतिक्रियास्वरूप ही स्वच्छंद प्रेम की उत्पत्ति होती है।

हिंदी साहित्य में संत काव्यों के समानान्तर ही सूफी काव्य–धारा भी प्रवाहित होती रही है–

टिप्पणी

(अ) 'सूफी' शब्द का अभिप्राय व व्युत्पत्ति

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं–

1. 'सूफा' एक जाति थी जो मक्का के मंदिरों में उपासना करती थी। सूफियों का संबंध इसी जाति से है।
2. 'सूफी' शब्द अरब के 'सूफ' से बना है। इसका अर्थ है– ऊन। सूफी परंपरा के साधक ऊनी वस्त्रों का प्रयोग करते थे।
3. 'सूफी' शब्द 'सफ' से बना है तथा इसका अभिप्राय है– पंक्ति। सूफी संत अपने त्याग के कारण कयामत के दिन अगली पंक्ति में खड़े होने के अधिकारी होंगे, अतः इन्हें सूफी कहा गया।
4. 'सूफी' शब्द को 'सूफा' से निष्पन्न मान लेने से इसका अर्थ होता है– चबूतरा। मदीना की मस्जिद के चबूतरे पर बैठकर साधना करने वाले साधक 'सूफी' कहलाये।
5. 'सोफिया' शब्द का अर्थ तत्व–ज्ञान से भी लिया जाता है। तत्वज्ञानियों को इसी कारण सूफी कहा गया है।

'सूफी' मत उदार भावों का समर्थक है। इसका मूल आधार इसलाम धर्म है, किंतु इसमें इसलाम की कट्टरता नहीं है। कुछ विद्वान सूफी दर्शन पर ग्रीक विचारकों का प्रभाव मानते हैं। कतिपय विद्वान इसे अफलातूनी दर्शन से प्रेरित मानते हैं तथा कुछ का विचार है कि इस मत का मूलाधार बौद्ध धर्म है। विद्वानों ने इसे वेदांत दर्शन का इसलामी संस्करण भी माना है।

(ब) सूफी धर्म साधना के संप्रदाय

सूफी धर्म साधना के निम्नलिखित संप्रदाय विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं–

1. कादरी संप्रदाय
2. सुहरावर्दी संप्रदाय
3. नक्शबंदी संप्रदाय
4. चिश्ती संप्रदाय।

उपर्युक्त संप्रदायों में चिश्ती संप्रदाय सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। इस संप्रदाय के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने भारत में सूफी धर्म का प्रचार किया।

(स) सूफी धर्म के सिद्धांत

डॉ. गोविंदराम लिखते हैं– "सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है और उसका नाम हक है।" सूफी साधक जीवन को एक यात्रा मानते हैं। साधक को इस यात्रा में अनेक मंजिलें पार करनी पड़ती हैं। सूफी धर्म के सभी संप्रदाय एकेश्वरवाद के समर्थक हैं। यह भी वेदांत दर्शन के समान ईश्वर को अगम्य मानते हैं। इनके अनुसार ईश्वर जगत में व्याप्त होते हुए भी जगत से भिन्न है। यह ईश्वर निर्गुण, निराकार व सर्वव्यापी होकर भी सबसे पृथक है। इस प्रकार सूफी विचारों पर भारतीय दर्शन की छाया है। सूफी साधना के सात सोपान निम्नलिखित हैं– 1. अनुताप, 2. संयम, 3. वैराग्य, 4. दारिद्र्य, 5. धैर्य, 6. विश्वास, 7. प्रेम।

टिप्पणी

सूफी साधना में प्रेम का महत्व ही सबसे अधिक है। इनके अतिरिक्त सूफी साधना की चार अवस्थाएं हैं– 1. शरीयत, 2. तरीकत, 3. हकीकत, 4. मारीफत। सूफी साधना में 'आलम' कहलाने वाली चार अवस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं– 1. आलमे नासूत, 2. आलमे मलकूत, 3. आलमे जवरूप, 4. आलमे लाहूत।

(द) सूफी प्रेम काव्य की सामान्य विशेषताएं

सूफी प्रेम काव्य की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **प्रेम का महत्व**– प्रेमाख्यान काव्यों की सर्वप्रथम विशेषता उनमें प्रेम का उद्याम वेग है। इन काव्यों के नायक, नायिका को प्राप्त करने के लिए सभी बाधाओं को पार कर जाते हैं। साधनात्मक दृष्टि से भी सूफी काव्य में वैराग्य की अपेक्षा प्रेम का महत्व अधिक है। इनमें लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) से अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) की ओर अग्रसर होने का वर्णन है। सूफी काव्यों की प्रेम भावना पर देशी एवं विदेशी दोनों ही प्रभाव हैं। सूफी काव्य की विशेषता यह है कि साधक स्वयं को प्रेमी तथा परमात्मा को प्रियतमा समझता है।

2. **विरह भावना का आधिक्य**– सूफी काव्यों का प्रेम विरह प्रधान है। प्रेमी साधक परमात्मा के वियोग में तड़पता है। भारतीय निर्गुण काव्य साधकों के अनुरूप ही सूफी कवि भी आत्मा की परमात्मा के प्रति मिलनोत्कंठा का वर्णन करते हैं। जायसी के 'पदमावत' से एक वर्णन देखिए–

   यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन उड़ाव'।
   मकुतेहि मारग उड़ि परै, कत धरै जहँ पांव।।

3. **इतिहास एवं कल्पना का समन्वय**– प्रेमाख्यान परंपरा का प्रारंभ 'वृहत्कथा' एवं कथासरित्सागर से हुआ। पुराणों तथा इतिहास के पात्रों से युक्त यह प्रेमाख्यान मूल रूप से ऐतिहासिक नहीं है। इतिहास के साथ इनमें कल्पना का भी मनोहर सामंजस्य है।

4. **गुरु का महत्व**– निर्गुण काव्यधारा के कबीर एवं अन्य कवियों की भांति सूफी कवि भी गुरु को सर्वोपरि तथा ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हैं। जायसी गुरु को मार्गदर्शक स्वीकार करते हुए कहते हैं–

   गुरु सुवा जेहि पन्थ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।

   सूफी साधक गुरु के निर्देश से प्राप्त सात्विक ज्ञान के प्रकाश में मोक्ष के पथ को पाता है। अन्यत्र जायसी लिखते हैं–

   सैयद अशरफ पीर पियारा, जेहि मोहि पन्थ दीन्ह उजियारा।
   लेसा हिए प्रेम कर दीया, उठी जोति भा निरमल हीया।।

5. **रहस्यवाद**– भारतीय एवं सूफी मत में अनेक समताएं हैं। निर्गुण भक्तिधारा के कबीर का काव्य रहस्यवाद का पोषक है। इसी प्रकार सूफी कवि जायसी के काव्य में भी रहस्यवाद का रमणीय रूप प्राप्त होता है। सूफी कवि अपने प्रियतम को प्रकृति के विभिन्न रूपों में देखते हैं। सूफी रहस्यवाद की विशेषता यही है कि इसमें संत कवियों की रहस्य भावना जैसी शुष्कता एवं नीरसता नहीं है।

टिप्पणी

सूफी कवि वेदांत दर्शन की भांति जगत को मिथ्या भी नहीं मानते। वह तो प्रेम गाथाओं में अव्यक्त सत्ता को व्यक्त करते हैं।

6. **शैतान की कल्पना**– शैतान की अवधारणा सूफी कवियों की मौलिक देन है। यह शैतान भारतीय दर्शन की 'माया' ही है जो आत्मा–परमात्मा के मिलन में अवरोध उत्पन्न करती है। सूफी काव्य का शैतान भी खुदा एवं बंदे के मिलन में सबसे बड़ी बाधा है।

7. **प्रबंध कल्पना**– इस परंपरा के काव्य प्रबंधात्मक शैली में रचित हैं। इनमें कथात्मक तत्वों की प्रचुरता है। सूफी कवियों ने उदयन, विक्रम रत्नसेन ऐतिहासिक एवं अर्द्ध–ऐतिहासिक पात्रों की गाथाएं ली हैं। परंपरागत पौराणिक आख्यानों ने नल–दमयन्ती का आख्यान सूफी कवियों को बहुत प्रिय है। ये कवि लौकिक एवं अलौकिक प्रेम कथाओं को लेकर उनके माध्यम से जीव और ब्रह्म के प्रेम की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति करते हैं।

8. **रस**– रस की दृष्टि से प्रेमाख्यानों में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति सर्वाधिक है। प्रेमाख्यानों की रसाभिव्यंजना साहस एवं संघर्ष से अनुप्राणित है। रस की दृष्टि से इस काव्य की एक विशेषता यह भी है कि इसमें प्रेम को जीवन का सर्वोपरि तत्व मानते हुए भी त्याग से उदात्त प्रेम का ही प्रतिपादन है। सौंदर्य–वर्णन में नायिका के नख–शिख, हाव–भाव के अतिरिक्त उनके अन्य गुणों को भी महत्व दिया गया है। इन काव्यों की नायिकाएं रूपवती होने के साथ–साथ बुद्धिमती भी हैं। सूफी काव्य के नायकों की प्रेम भावना स्थूल कामुकता से ऊपर उठकर साहस, शौर्य, संयम एवं त्याग से अनुप्राणित है, अतः इनकी श्रृंगारिक भावनाओं में उदात्तता का समावेश है। सूफी काव्य में वीर रस भी श्रृंगार रस का सहायक बनकर ही आया है।

9. **चरित्र चित्रण**– प्रेमाख्यानों का सर्जन सूफी कवियों ने भी भारतीय परंपरा के अनुरूप ही किया है। इन काव्यों का नायक राजकुमार धैर्यशाली, साहसी, परोपकारी, प्रेमी एवं त्यागशील होता है तथा नायिका रूपगर्विता तथा बुद्धिमती हैं। नायिका में नायक की अपेक्षा अधिक धैर्य की मात्रा पायी जाती है। इन काव्यों की नायिकाएं नृत्य कला एवं संगीत कला में भी निपुण हैं। नायिका के इन गुणों पर रीझकर ही नायक उन पर सर्वस्व अर्पित करने को आतुर रहता है। नायक–नायिका दोनों की प्रेम की कठिन साधना को प्राण देकर भी पूर्ण करना चाहते हैं। वह किसी भी परिस्थिति में प्रेम पथ से च्युत नहीं होते।

10. **भारतीयता का समावेश**– सूफी काव्य में भारतीय दर्शन एवं इसलाम दोनों के तत्वों का मिश्रण है। नायक–नायिका भी भारतीय मान्यतानुसार उदात्त चरित्र से युक्त हैं। भारतीय रीति–रिवाजों व पतिव्रत धर्म का निर्वाह भी भारतीयता के अनुरूप ही है।

11. **सकारात्मक दृष्टिकोण**– सूफी कवियों का दृष्टिकोण भारतीय निर्गुण कवियों की भांति खण्डनात्मक नहीं है। उनकी भावना समन्वयमूलक है। प्रेमाख्यानों के माध्यम से वह विभिन्न संस्कृतियों को एकरूप कर देते हैं। हिंदू एवं मुस्लिम धर्म की खाइयों को पाटने का भी इन्होंने सराहनीय प्रयास किया है।

टिप्पणी

12. **भाषा शैली**– प्रेमाख्यानों की भाषा प्रायः अवधी व राजस्थानी है। भाषा में अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य मिलता है। इन काव्यों की शैली के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है क्योंकि जहां जायसी की शैली में गंभीरता एवं प्रौढ़ता है, वहीं अन्य कवियों में अपरिपक्वता एवं अशक्तता के दर्शन भी होते हैं।

सूफी साधक एवं कवि कोमल अनुभूतियों से परिपूर्ण थे। उनकी प्रत्येक चेष्टा समन्वयात्मक है। भारतीय दर्शन के साथ तो वह ऐसी एकरूप हो गयी है कि उसको पृथकता से समझना कठिन है। ये कवि मानवतावादी हैं। प्रेम को व्यापक स्वरूप प्रदान कर इन कवियों ने त्याग की भारतीय मर्यादाओं का पालन किया है। निष्कर्षतः सूफी काव्य प्रेम की सच्ची साधना है।

• सूफी एवं संत काव्य में समानताएं–असमानताएं

सूफी काव्य एवं संत काव्य दोनों ही निर्गुण भक्ति धारा की दो पद्धतियां हैं। दोनों में अनेक समानताएं हैं, किंतु इन समानताओं के आधार पर दोनों को एक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः दोनों की प्रवृत्तियों में मूलभूत अंतर है। सिद्धांतों की दृष्टि से भी सूफी काव्य एवं संत काव्य में पर्याप्त भिन्नता है। इन दोनों काव्य पद्धतियों की समानताएं–असमानताएं निम्नलिखित हैं–

(क) समानताएं

1. **निर्गुणोपासना**– सूफियों की प्रेम पद्धति भी निर्गुण ब्रह्म को आराध्य मानती है तथा संत कवियों ने भी निर्गुण, निराकार को ही काव्यांकित किया है।
2. **गुरु का महत्व**– सूफी कवियों तथा निर्गुण भक्त कवियों ने गुरु का महत्व स्वीकार किया है। दोनों ही विचारधाराएं ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गुरु की कृपा आवश्यक मानती है। कबीर कहते हैं–

   पीछे लगा जादू था लोक बेद के साथि।
   आगे था सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।।

   जायसी गुरु को पथ–प्रदर्शक मानते हुए कहते हैं–

   गुरु सुवा मोहि पन्थ देखावा।
   बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।।
3. **बाह्याडंबरों की निंदा**– संत कवियों के समान ही सूफी साधक भी आंतरिक साधना पर बल देते हैं। बाह्याडंबरों का समर्थन दोनों ही नहीं करते। कबीर ने तो बाहरी दिखावे की कटु आलोचना करते हुए ऐसे व्यक्तियों का उपहास किया है, जो धर्म को भी निहित स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाते हैं।
4. **'माया' की निंदा**– कबीर एवं अन्य निर्गुण कवि माया को 'ठगिनी' मानते हैं। कबीर ने तो कहा है–

   माया महा ठगिनी हम जाना।

   माया का ही सूफी रूप 'शैतान' है। जिस प्रकार माया ईश्वर व जीव के बीच में बाधा है, इसी प्रकार शैतान खुदा व बंदे में विभेद करता है। जायसी ने 'पदमावत' में अलाउद्दीन को शैतान का प्रतिनिधि माना है।

टिप्पणी

5. **प्रेम की महत्ता**– 'प्रेम' एक दिव्य भावना है। त्याग एवं तपस्या के मार्ग पर चलकर ही दुर्लभ 'प्रेम' को पाया जा सकता है तभी तो कबीर कहते हैं–

    कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि।
    सीस उतारे भुइँ धरै, सो पैठें घर माँहि।।

    सूफी काव्यों के नायक भी प्रेम के लिए घर–बार छोड़ देते हैं तथा नाना प्रकार की विघ्न–बाधाओं को साहसपूर्वक पारकर अपने प्रेम–पात्र को पाते हैं। सूफी एवं संत दोनों काव्यों का प्रेम पात्र वस्तुतः ईश्वर है।

6. **रहस्यवाद**– सूफी कवि जायसी एवं संत कवि कबीर दोनों के काव्य में रहस्यवाद की झलक मिलती है। दोनों प्रकृति के विभिन्न यप में परम ब्रह्म के दर्शन करते हैं।

7. **मानव धर्म का प्रतिपादन**– मानवता की रक्षा ही सबसे बड़ा धर्म है। इसी परम सत्य का प्रतिपादन सूफी एवं संतकाव्य में हुआ है।

8. **जाति एवं धर्म की एकता पर बल**– संत एवं सूफी कवि जातिगत एवं धर्मगत भेद–भावों के विरोधी हैं। वे सर्वधर्म समभाव को मानते हैं तथा जाति के स्तर पर भी सामाजिक विषमता को अनुचित ठहराते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक है, वही सबका निर्माता है अतः आपसी भेदभाव मिथ्या है।

9. **प्रतीकात्मकता**– दोनों ही मतों के कवियों ने अपने काव्य में प्रतीकात्मकता का सुंदर निर्वाह किया है। प्रतीक योजना द्वारा वह अपनी शैली में व्यंजना का वैभव संचरित करते हैं। जायसी के काव्य की प्रतीकात्मकता निम्नलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है–

    ए रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।
    जब लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जौ खेलहु आजु।।

    कबीर काव्य में प्रतीकात्मक शैली का उदाहरण देखिए–

    चौंसठि दीवा जोई फरि, चौदह चंदा माँहि।
    तिहि धरि किसको चाणिनो, जिहि घर गोविन्द नाहिं।।

10. **रस वर्णन**– रस योजना की दृष्टि से संत एवं सूफी काव्यों में शृंगार के उभय पक्षों– संयोग एवं वियोग का सुंदर व मर्मस्पर्शी चित्रण है। वियोग की मार्मिकता को दोनों पक्षों ने गहनता से उभारा है।

(ख) असमानताएं

उपर्युक्त समानताओं के साथ–साथ कतिपय विषमताओं पर भी दृष्टिपात समीचीन होगा–

1. संत काव्य में ज्ञान को अधिक महत्व मिला है, जबकि सूफी काव्य प्रेम को ही सर्वोच्च स्थान देता है।
2. संत काव्य का रहस्यवाद 'साधनात्मक' है जबकि सूफी काव्य में 'भावात्मक रहस्यवाद' की रमणीयता है।
3. संत काव्य में कवियों ने जीव के प्रेयसी तथा ब्रह्म को प्रियतम माना है, वहीं सूफी कवि जीव को प्रेमी तथा ब्रह्म को प्रेयसी के रूप में प्रस्तुत किया है।

टिप्पणी

4. संत काव्य की अपेक्षा सूफी काव्य पर वेदांत का अधिक प्रभाव है।
5. सूफी काव्य में नारी को सर्वोत्कृष्ट रूप प्रदान किया गया है। वहां नारी ब्रह्म रूप है, जबकि संत काव्य में नारी को निंदनीय माना गया है।
6. संत काव्य शुष्क एवं जटिल है, तथा सूफी काव्य में भावों की सरसता है।
7. संत काव्य में चरित्र–चित्रण को कोई स्थान नहीं मिला है, जबकि सूफी काव्य में चरित्र–चित्रण प्रधान है।
8. सूफी काव्य मसनवी शैली में रचित है तथा संत काव्य की रचना पूर्णतः भारतीयता के अनुकूल शैली में है।
9. संत कवि 'खंडन' में विश्वास रखता है तथा सूफी कवि 'मंडन' का समर्थक है।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि संत एवं सूफी काव्य में बहुतसी प्रवृत्तियां समान हैं। इन समानताओं के होते हुए भी दोनों के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। दोनों की अपनी चिंतन–धारा है, जो मानव कल्याण के अगाध सागर में जाकर एकाकार हो जाती है।

• राम काव्य धारा

भक्तिकाल को दो भागों में विभाजित किया गया है– (1) निर्गुण भक्ति धारा, (2) सगुण भक्ति धारा। निर्गुणोपासना जन सामान्य की भावनाओं के अनुरूप नहीं थी। उसकी जटिलता को दूर कर सगुण भक्ति धारा के कवियों ने ईश्वर का मानवोचित रूप प्रतिपादित किया। ब्रह्म का सगुण रूप स्वयं उसे सामान्य जनों के निकट ले आया। निर्गुण की कठोर नीरसता में सरसता का संचार हुआ। कृष्ण एवं राम जन–प्रतिनिधि बन गए तथा उनका चरित्र एवं शिक्षाएं निराश जन समुदाय में नवीन उत्साह का संचार करने लगीं।

'राम' नाम के मधुर अक्षरों ने हिंदी काव्य को अपरिमित विस्तार एवं सौंदर्य प्रदान किया है। राम काव्य के प्रमुख कवि रामानंद ने 'राम' के कल्याणमय स्वरूप को जन–जन में प्रचारित किया। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामानंद को सगुण भक्ति काव्य के प्रतिनिधि कवि के रूप में स्वीकार किया है।

(क) राम कथा का पूर्व रूप

ऋग्वेद में राम का उल्लेख पांच रूपों में मिलता है। भाष्य साहित्य में 'राम' शब्द 'रमाणीय पुत्र' के रूप में आया है। आदिकवि वाल्मीकि ने सर्वप्रथम 'रामायण' में राम को लोकोत्तर गरिमा प्रदान की। रामानुजाचार्य राम को ब्रह्म का अवतार मानते हैं। काव्य में राम के दो रूपों का समन्वय मिलता है। प्रथम रूप अलौकिक राम का है तथा दूसरा उनका मानवीय रूप है। हिंदी कवियों को राम के दोनों ही रूप आकर्षित करते रहे हैं। निर्गुण कवि कबीर राम को घट–घट में व्याप्त ब्रह्म मानते हैं तथा तुलसी ने अपने काव्य के सगुण रूप का गान किया है। राम कथा को लोकव्यापी बनाने का संपूर्ण श्रेय तुलसी को है। तुलसी रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तुलसी को राम–काव्य का प्रतिनिधि स्वीकार करते हुए लिखते हैं– "यद्वपि स्वामी रामानंद जी की शिष्य–परंपरा के द्वारा देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकर पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे, पर

टिप्पणी

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी द्वारा स्फूरित हुआ। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह है कि राम भक्ति का वह परम विशछ साहित्यिक संदर्भ इन्हीं भक्त शिरोमणी द्वारा संघठित हुआ, जिससे हिंदी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ।. .. वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से राम सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्य–क्षेत्र में प्रथम स्थान के अधिकारी हुए। तुलसी का महत्व साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अभूतपूर्व है। उनकी रचनाओं में– रामचरितमानस, रामलला–नहछू, बरवै रामायण, जानकीमंगल, कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका आदि अति प्रसिद्ध हैं। 'रामचरितमानस' महाकाव्य ने तुलसी की लोकप्रियता को नया उत्कर्ष प्रदान कर उन्हें परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय बना दिया है। 'मानस' में तुलसी ने राम की अलौकिक लीलाओं का अंकन करने के साथ–साथ उन्हें आदर्श मानव के रूप में भी स्थापित किया है। आज भी 'रामचरितमानस' के पात्रों का आदर्श स्वरूप समाज का पथ–प्रदर्शक है।

(ख) हिंदी में राम काव्य परंपरा

गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रामभक्त कवियों में नाभादास का नाम उल्लेखनीय है। इनके 'भक्तमाल' ग्रंथ का रचनाकाल 1596 ई. है। इनके पश्चात केशवदास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' को रामकाव्य की उल्लेखनीय कृति माना जाता है। यह एक प्रबंध काव्य है तथा इसमें केशव की अलंकार प्रियता एवं शब्द चमत्कार की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

केशव के पश्चात रामभक्त कवियों में सेनापति का विशिष्ट स्थान है। 'कवित्त रत्नाकर' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। सेनापति द्वारा इस ग्रंथ की रचना संवत् 1706 में की गयी। 'कवित्त रत्नाकर' की चौथी–पांचवीं तरंगों में रामायण के भावुक प्रसंगों का मधुर भाषा में वर्णन है। रामा भक्त कवियों में अग्रदास का नाम भी आदरपूर्वक लिया जाता है। इनके प्रमुख ग्रंथियां हैं– ध्यान मंजरी, अष्टयाम, रामभजन मंजरी, उपासना बावनी तथा पदावली। अग्रदास जी स्वयं को जानकी जी की सखी समझकर काव्य रचना करते थे। 'अष्टयाम' इनकी प्रमुख रचना है। संवत् 1667 में प्राणचंद चौहान ने 'रामायण महानाटक' की रचना की। माधवदास चारण ने 'रामरासो' तथा 'अध्यात्मरामायण' नामक ग्रंथों का प्रणयन किया। हृदयराम ने राम काव्य परंपरा के अंतर्गत 'हनुमन्नाटक' की रचना हनुमान जी की प्रेरणा से की थी। नरहरि बारहट कृत 'पौरुषेय रामायण' इसी श्रृंखला की महत्वपूर्ण कृति है।

उन्नीसवीं शताब्दी में भी रामकथा की मधुर धारा निरंतर प्रवाहित होती रही। आधुनिक काल के अनेक कवि राम काव्य की रचना में संलग्न रहे। मैथलीशरण गुप्त की 'साकेत' इस युग की अति विशिष्ट रचना है। इसके अतिरिक्त इस परंपरा की अन्य प्रसिद्ध कृतियों में हरिऔध की 'वैदेही वनवास' एवं निराला की 'राम की शक्ति पूजा' अविस्मरणीय है।

(ग) राम भक्ति शाखा की विशेषताएं

भक्तिकाल में राम भक्ति शाखा का विशेष महत्व है। राम युग पुरुष हैं अतः उनके चरित्र का गान करने वाला काव्य अमर हो जाए तो आश्चर्य ही क्या! कहा गया है–

राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

टिप्पणी

अनेक विशिष्ट कवियों की परंपरा रूपी माला में तुलसीदास मध्यमणि से समान अपनी प्रतिभा–दीप्ति अलग ही बिखेरते हैं। राम भक्ति काव्य की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया जा सकता है–

1. **राम के चरित्र का गुणगान**– सभी रामभक्त कवियों ने 'राम' को अपनी कविता का प्रतिपाद्य बनाकर उनके नाम एवं चरित्र का महत्व वर्णित किया है। तुलसी के तो वे परम आराध्य हैं। राम के अतिरिक्त विष्णु के किसी रूप को प्रणाम करने के लिए भी वे प्रस्तुत नहीं। इने राम शील, सौंदर्य एवं शक्ति के समन्वित रूप हैं। डॉ. गोविंदराम शर्मा लिखते हैं– "इस काव्य धारा में राम सौंदर्य में त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दलन करते हैं। वे अपने शील गुण से लोक को आचार की शिक्षा देते हैं। वे अपनी करुणामयता से पतितों और अधर्मियों का उद्धार करते हैं। उनका लोक रक्षक रूप प्रधान है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और आदर्श के प्रतिस्थापक हैं।"

2. **दास्य भाव की प्रधानता**– कृष्ण भक्त कवियों ने सख्यभाव की भक्ति की है तथा रामभक्त कवि विनय एवं दास्य भाव से युक्त पदों की रचना करते हैं। अपनी दीनता, लघुता, क्षुद्रता, नम्रता आदि का प्रदर्शन करते हुए कवि राम से अनुग्रह की याचना करते हैं। तुलसी कहते हैं–

   राम सो बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
   राम सो खरो है कौन, मोसो कौन खोटो।।

3. **स्वान्तः सुखाय रचना**– राम भक्त तुलसी ने स्पष्ट घोषणा की है कि उन्होंने राम काव्य की रचना अंतःकरण के सुख के लिए की है। वे कहते हैं–

   स्वान्तः सुखाय तुलसी रधुनाथ गाथा।
   भाषा निबन्धमति मञ्जुलमानोति।।

4. **समन्वय की विराट् चेष्टा**– राम काव्य समन्वय की महान् भावना से प्रेरित होकर रचा गया है। परिवार, समाज, जाति, भाषा, रस, भक्ति, तात्पर्य यह है कि तुलसी प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय करके लोकनायक कहलाए। तुलसी कहते हैं–

   अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव सम्भव खेदा।।

   डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसी की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की ओर इंगित करके कहा है– "उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय गार्हस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, रामचरितमानस गुरु से आखिर तेक समन्वय काव्य है।"

5. **मर्यादा की स्थापना**– राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनका तो आविर्भाव ही मर्यादा की स्थापना हेतु हुआ था। मध्यकाल में विलुप्त होते नैतिक मूल्यों को पुनर्जिवित करने के लिए ऐसे काव्य की आवश्यकता थी जो समाज को मर्यादित करे। इस मर्यादा को राम काव्य द्वारा स्थापित करने का सफल प्रयास हुआ।

टिप्पणी

6. **लोक मंगल की भावना**– तुलसी ने 'स्वान्तः सुखाय' रचना का उद्देश्य स्वीकार करते हुए भी काव्य के लोक मंगल पख पर अपना अवधान पूर्ण केंद्रित रखा है। राम काव्य की समाज को यह अपूर्व देन है। राम की व्यक्तिगत चरित्र तथा पारिवारिक सदस्यों के प्रति उनका सद्भाव आज भी समाज को सदाचारी बनने एवं पारिवारिक जनों के प्रति सद्भावपूर्ण व्यवहार के लिए प्रेरित करता है। समाज के दीन–हीन लोगों तथा भिन्न जातियों को उदारतापूर्वक अपनाकर राम ने संसार के समक्ष आदर्श स्थापित किया है।
7. **लोक धर्म की स्थापना**– औचित्य का पक्ष लेना तथा अनौचित्य का विरोध करना ही लोक धर्म है। राम ने इस लोक धर्म का पूर्णतः पालन किया। सुग्रीव के अत्याचारी भाई बालि का वध एवं विभीषण की सहायता से रावण का सर्वनाश कर राम ने लोकधर्म की स्थापना की।
8. **जीवन के विविध रूपों का अंकन**– 'रामचरितमानस' समाजोपयोगी महान ग्रंथ है। इसमें जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है।
9. **दार्शनिकता**– राम भक्ति शाखा में भाव के साथ–साथ दार्शनिकता भी विद्यमान है। तुलसी ने जीव, ब्रह्म, माया एवं जगत पर अपने स्पष्ट विचार रखे हैं। तुलसी कहते हैं–

    ईश्वर अंस जीव अविनासी चेतन अमल सहज सुखरासी।
    सो माया बस भयऊ गोसाईं, बंध्यो कीट मरकट की नाई।।

10. **रस योजना**– प्रबंध काव्य होने के कारण इनकी रचनाओं में सभी रसों की समुचित योजना है। श्रृंगार, वीर, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक आदि सभी प्रमुख रस राम काव्य में उपलब्ध होते हैं।
11. **प्रकृति–चित्रण**– राम भक्त कवियों ने प्रकृति के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्र प्रस्तुत किये हैं।
12. **काव्यरूप**– राम भक्त शाखा के कवियों ने प्रबंध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं की हैं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि अधिकांश राम काव्य प्रबंध रूप में ही रचा गया।
13. **भाषा**– राम भक्ति शाखा के कवियों की भाषा अवधी एवं ब्रज है। तुलसीदास ने अपने महान काव्य 'रामचरितमानस' की रचना 'अवधी' भाषा में कर उसे विशिष्ट औदात्य प्रदान किया है।
14. **अलंकार एवं छंद**– अलंकारों एवं छंदों के प्रयोग में राम भक्त कवियों ने पर्याप्त विविधता का परिचय दिया है। लगभग सभी अलंकार इस काव्य की शोभा को संवर्द्धित करते हैं फिर भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, दृष्यन्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग परिलछित होता है। छंदों में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, रोला, मत्तगयन्द, सोरठा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रामकाव्य में सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन पूर्णतः व्याप्त है। तुलसीदास के काव्य में रामकथा को सर्वाधिक उत्कर्ष मिला है। उन्होंने राम के लोकोत्तर चरित्र को जन जीवन से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया है।

टिप्पणी

• कृष्ण काव्य धारा

भगवान श्रीकृष्ण मध्यकालीन भक्त कवियों के आराध्य देवता हैं। इतिहास एवं पुराणों में कृष्ण का चरित्र सर्वाधिक वर्णित किया गया है। विद्वानों की दृष्टि में श्रीकृष्ण भारतीय इतिहास के महापुरुष हैं। वे युग पुरुष हैं। महाभारत का युद्ध कृष्ण के निर्देशन में ही लड़ा गया। कृष्ण परम ब्रह्म हैं तथा विष्णु के अवतार हैं। वैदिक काल से आधुनिक काल तथा उनके चरित्र का गायन हर युग में होता रहा है।

(क) पुष्टि मार्ग

कृष्ण भक्ति शाखा का प्रवर्तन चैतन्य एवं वल्लभाचार्य ने निम्बार्क, मध्व एवं विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर किया। कृष्ण भक्ति का मूल 'भागवत पुराण' है। भागवत में प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त की गयी है। इसमें ज्ञान को प्रेम की अपेक्षा गौण स्थान प्राप्त है। ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में कृष्ण भक्ति का चरमोत्कर्ष मिलता है। इसके प्रमुख प्रचारक बल्लाभाचार्य हैं। 'पुष्टि मार्ग' की प्रणेता वल्लभाचार्य ही हैं। इस 'पुष्टि मार्ग' को अन्य भक्त कवियों द्वारा प्रसार एवं प्रचार मिला। कृष्ण भक्ति काव्य के विकास में राधावल्लभी संप्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय एवं निम्बार्क संप्रदाय का महत्वपूर्ण योग है।

कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। कृष्ण की बाललीलाओं तथा किशोरावस्था का वर्णन इन कवियों का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। यही कारण है कि कृष्ण भक्ति काव्य में वात्सल्य एवं शृंगार रस की मधुर धारा प्रवाहमान है। माता यशोदा के बालक कृष्ण विषयक वात्सल्य का वर्णन, ग्वालबालों का सखाभाव तथा गोपियों का कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम इस काव्य के प्रमुख सरस विषय हैं।

वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग से प्रभावित अनेक भक्त कवियों ने भगवान कृष्ण की लीला का तन्मय होकर गान किया। इन कवियों को 'अष्टछाप' के कवि कहा गया। इनके नाम हैं– सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, नन्ददास, छीतसवामी, गोविन्द स्वामी तथा चतुर्भुज दास। ये कवि संसार की सुधबुध भूलकर आठो पहर कृष्ण की सेवा में रहते थे। इन्होंने कृष्ण भक्ति के ऐसे अमर साहित्य का प्रणयन किया जो भाव एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अप्रतिम है। कृष्ण भक्ति शाखा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रेम के केवल स्थूल रूप को न लेकर प्रेम के विविध रूपों का सर्वांग चित्रण है।

(ख) कृष्ण भक्ति काव्य की विशेषताएं

कृष्ण भक्ति शाखा के काव्यों की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **कृष्ण की लीलाओं का अंकन**– कृष्ण भक्त कवियों का मन कृष्ण की बाल एवं किशोर लीलाओं में अधिक रमा है। वात्सल्य वर्णन के अंतर्गत कवियों ने जहां कृष्ण के शिशु रूप का वर्णन किया है, वहीं यशोदा के हृदय का वात्सल्य भी छलकाया है। सख्य भाव की पराकाष्ठा कृष्ण के बाल मित्रों के मैत्री भाव में मुखरित होती है तथा गोपियों के कृष्ण विषयक शृंगारिक प्रेम का भी उन्मुक्त वर्णन है।
2. **संगीतात्मकता**– कृष्ण भक्ति काव्य गेय है। संगीतात्मकता इसका प्रधान गुण है। सूरदास, मीरा, हरिदास आदि कृष्ण भक्त कवि गा–गाकर अपने आराध्य

श्रीकृष्ण को रिझाते थे (आज भी यह पद गीत रूप में प्रचलित है।) मीरा व सूर के पद सुनकर अरसिक भी झूम उठते हैं।

टिप्पणी

3. **भक्ति भावना**– इस काल में कवियों की भक्ति 'रागानुगा' है। भाव यह है कि इसमें प्रेममूलक व्यक्ति की प्रधानता है। इसका कारण यह है कि कृष्ण भत कवियों ने 'भागवत पुराण' से प्रेरित होकर काव्य रचना की तथा वह स्वयं भी श्रीकृष्ण के प्रेमानंद में आकंठ डूबे हुए थे। कृष्ण काव्य की मधुरा भक्ति में 'परकीया' भाव को भी स्थान मिला है। ये कवि विरह के अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए भक्त के हृदय की वेदना का चरम प्रस्तुत करते हैं। शान्ता भक्ति में निर्वेद (वैराग्य) सतसंग, उपदेश आदि विषय ग्रहण किये गए हैं। सांख्य भाव की भक्ति ममेग्वाल बालों के साथ श्रीकृष्ण के गो–चारण तथा रूठने मनाने का वर्णन है।

4. **प्रकृति का सजीव चित्रण**– ब्रजभूमि श्रीकृष्ण की लीलास्थली है। बाल्यकाल से ही उन्होंने ब्रज की कुंज गलियों में नाना प्रकार की क्रीड़ाएं की। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में रहने के कारण श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व लोक के अधिक निकट है। उनका शैशव एवं यौवनकाल जन सामान्य की भावनाओं को स्पर्श करता है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियां ही नहीं अपितु यमुना भी विरहाग्नि में जलकर काली पड़ जाती है।

रिवयत कालिन्दी अतिकारी।
अहो पथिक! कहियो उन हरि सो, भई विरह जुर जारी।

डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं– "दृश्यमान जगत का कोई भी सौंदर्य उनकी आंखों से न ही छूट सका। पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, जलाशय, वन–प्रांत, यमुना–कूल तथा कुंज भवन की संपूर्ण शोभा इन कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निश्शेष कर दी है।"

कृष्ण भक्त कवियों की प्रकृति का उद्दीपन रूप बहुत प्रिय है। सूरदास का काव्य इसका उदाहरण है।

5. **शृंगार एवं वात्सल्य रस**– सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने विशेषतः शृंगार एवं वात्सल्य रस को अपनाया है। शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों ही पक्षों को इन कवियों ने सहृदयता से चित्रित किया है।

संयोग वर्णन–

आजु निसि सोभित सरद सुहाई
सीतल मन्द सुगन्ध पवन बहै रोम–रोम सुखदाई
जमुना पुलिन पुनीत, परम रुचि मण्डली बनाई।
राधा बाम अंग पर कर धरि, मध्यहि कुंवर कन्हाई।।

वियोग दर्शन–

बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजें
तब ये लत्ता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुजैं।

वात्सल्य के चित्र माता यशोदा एवं नंद के वर्णन में हैं। वियोग की मार्मिकता यहां भी हृदय को भेद रही है। यशोदा देवकी को संदेश भिजवाती है–

संदेसो देवकी सो कहियो
हौं तो धाय विहारे सुत की दया करत हीरहियो।

इससे पूर्व कृष्ण को पालने में झुलाती हुई यशोदा कितनी प्रफुल्लित हैं–

जसोदा हरि पालने झुलावै।

टिप्पणी

(ग) कलापक्षीय विशेषताएं

कृष्ण काव्य की महत्ता उसके कलापक्ष की सबलता के कारण भी है। कलापक्ष की दृष्टि से कृष्ण काव्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **भाषा**– कृष्ण काव्य में सर्वत्र ब्रज भाषा का माधुर्य बिखरा हुआ है। 'ब्रज' जैसी क्षेत्रीय बोली को मध्य युग में इन्हीं काव्यों में साहित्यिक भाषा का गौरव प्राप्त हुआ। वस्तुतः भगवान कृष्ण के जीवन का प्रारंभिक भाग बहुत ही रसमय एवं लीलापूर्ण रहा तथा उसका वर्णन करने के लिए ब्रज जैसी मधुर बोली ही सर्वाधिक उपयुक्त थी।
2. **काव्य रूप**– कृष्ण भक्ति शाखा के अधिकांश काव्य की रचना मुक्तक शैली में हुई।
3. **अलंकार**– इन कवियों के काव्य में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का यथास्थान प्रयोग हुआ है। अलंकार योजना की विशेषता यह है कि वह कहीं भी सप्रयास नहीं लाए गए हैं, अपितु उनका प्रयोग स्वाभाविक रीति से हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, प्रतीप आदि अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है।
4. **छंद योजना**– इस काल में काव्य में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, रोला आदि छंदों को महत्व मिला है। कृष्ण भक्त कवियों ने भी इन्हें ही अपनाया है।

निष्कर्ष यह है कि भारतीय धर्म साधना, संस्कृत एवं साहित्य का उत्कर्ष कृष्ण काव्य में उपलब्ध होता है। कृष्ण के विलक्षण व्यक्तित्व से सभी युग समान रूप से प्रभावित हैं। कृष्ण भक्ति साहित्य ने भक्तों के हृदय पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है। कृष्ण अपने ईश्वर नहीं अपितु परम मित्र बन गए हैं।

(घ) कृष्ण काव्य धारा एवं राम काव्य धारा में समानताएं–असमानताएं

भक्ति काल को सर्वप्रथम दो भागों में बांटा गया है– निर्गुण भक्ति धारा एवं सगुण भक्ति धारा। निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख कवियों– रामानंद, कबीर, रैदास, मूलकदास, सुंदरदास आदि ने ईश्वर के निर्गुण रूप का गुणगान किया। ईश्वर को उनके भक्तों के लिए सहजता से प्राप्त कराने का प्रयास सगुण धारा के कवियों द्वारा हुआ। सगुण काव्य धारा में भी दो धाराएं–राम भक्ति शाखा एवं कृष्ण भक्ति शाखा। राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवियों में अग्रदास, ईश्वरदास, तुलसीदास, नाभादास, केशवदास, सेनापति, मैथिलीशरण गुप्त, निराला आदि प्रमुख हैं। कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं– सूरदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, छीत स्वामी, परमानन्ददास आदि।

कृष्ण भक्ति शाखा एवं राम भक्ति शाखा दोनों में ही ईश्वर के साकार रूप का वर्णन है। दोनों ही भक्ति प्रधान तत्व स्वीकार करते हैं। तब भी सुचारू रूप से अध्ययन करने पर हम दोनों के साम्य एवं वैषम्य का सम्यक ज्ञान होता है। राम भक्ति एवं कृष्ण भक्ति धारा में तुलना अग्र प्रकार से की जा सकती हैं–

टिप्पणी

(अ) समानताएं

1. दोनों की काव्य धाराओं के कवि सगुण ब्रह्म के अराधक हैं। दोनों धाराएं अवतारवाद का समर्थन करती हैं।
2. कृष्ण एवं रामभक्ति शाखा की एक अन्य मान्य विशेषता लौकिक व्यक्तियों का गुणगान न कर परम ब्रह्म की अराधना है।
3. दोनों धाराओं में ही संत कवि हुए तथा उन्होंने समाज कल्याण के लिए अपने सुखों को त्यागकर परोपकार का मार्ग ग्रहण किया।
4. सगुण काव्य की दोनों धाराओं के कवि स्वान्तः सुखाय रचना करते थे। तुलसी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है– 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। भाषा निबन्धमति मंजुलमातनोति।'
5. दोनों धाराओं के कवि ज्ञान का महत्व स्वीकार करते हुए भी ज्ञान पर भक्ति की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हैं। यद्यपि तुलसी ने 'ज्ञान हिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसम्भव खेदा' कहकर ज्ञान एवं भक्ति में समन्वय किया है, किंतु वह भी मूलतः भक्ति मार्गी कवि हैं।
6. दोनों धाराओं के कवियों ने विष्णु के दो प्रमुख अवतारों राम एवं कृष्ण को काव्य का विषय बनाया है।
7. दोनों ने ही साधना पद्धति के स्थान पर उपासना पद्धति को महत्व दिया है। हठयोगी साधना से ये कवि प्रभावित नहीं थे।
8. राम एवं कृष्ण भक्ति धारा के समस्त कवि ईश्वर की कृपा को जीवन बंध काटने के लिए आवश्यक मानते हैं। सूरदास कहते हैं–

   सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस बिनु सब झूठो जतनिन को करिबो।

   तुलसी की तो भक्ति ही विनय पर अवलम्बित है। माता सीता से वह निवेदन करते हैं–

   कबहुँक अम्ब अवसर पाई।
   मेरिऔ सुधि द्यायबी कछु करुण कथा चलाई।।
9. ब्रजभाषा का प्रयोग दोनों धाराओं के कवियों ने किया है।
10. भाव एवं रस की दृष्टि से दोनों धाराओं के कवियों की रचना उत्कृष्ट है। कृष्ण भक्ति धारा के अष्ट सखाओं के काव्य में कृष्ण की भाव में डूबी भक्ति के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार राम भक्ति धारा के तुलसी एवं अन्य कवि राम की अगाध भक्ति में डूबकर राममय हो चुके हैं। श्रृंगार एवं करुण रस का बहुत ही सुंदर परिपाक दोनों काव्यों में मिलता है।
11. संगीतात्मकता का गुण भी दोनों काव्य धाराओं के कवियों में समान है।

(ब) असमानताएं

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर राम एवं कृष्ण भक्ति शाखा की समान प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि दोनों धाराओं में कोई वैषम्य ही

टिप्पणी

है। सगुण भक्ति काव्य की दो धाराओं को विभाजित करने का कारण उसका पारस्परिक वैषम्य ही है। इन दोनों की विषमताओं का निरूपण इस प्रकार है–

1. जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, राम भक्ति शाखा विष्णु के अंश राम और कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों की भक्ति का आधार आनंद के धम लीला पुरुष श्री कृष्ण हैं।
2. राम भक्ति की धारा का प्रवर्तन रामानुजाचार्य ने किया, जबकि कृष्ण भक्ति काव्य का प्रचार करने वालों में वल्लभाचार्य प्रमुख हैं।
3. कृष्ण भक्ति धारा में प्रेम भक्ति का निरूपण है। शुष्क दर्शन को यहां प्रश्रय नहीं मिला है। प्रेम की तरलता श्रद्धालुओं के चित्त को आप्लावित कर उन्हें कृष्ण मय बना देती है। राम भक्ति शाखा में दास्य भाव की भक्ति है। इसके प्रमुख कवि तुलसी अपने काव्य में दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन एवं समन्वय भी करते हैं।
4. कृष्ण भक्त कवियों के काव्याधार लीला पुरुष श्री कृष्ण हैं जबकि राम भक्तों की रचना का आधार मर्यादा पुरुषोत्तम राम है। यही कारण है कि सूरदास आदि कृष्ण भक्तों ने प्रमुखतः कृष्ण की लौकिक–अलौकिक लीलाओं का गान किया है, परंतु तुलसी एवं अन्य राम भक्त कवियों की दृष्टि मर्यादा की स्थापना रही।
5. पौराणिक ग्रंथों की दृष्टि से भी दोनों शाखाओं के कवियों ने भिन्न–भिन्न ग्रंथों का आधार ग्रहण किया है। कृष्ण भक्त कवि 'श्रीमद्भागवत' को उपजीव्य बनाते हैं, तथा राम भक्त कविगण 'वाल्मीकि रामायण', 'रघुवंश', 'उत्तररामचरितम्' आदि संस्कृत ग्रंथों के आधार पर काव्य रचना करते हैं।
6. रसों की दृष्टि से असमानता यह है कि सूर तथा अष्टछाप के कवियों के काव्यों में वीर रस को महत्व नहीं मिला है, जबकि राम भक्त तुलसी के काव्य में वीर रस की पर्याप्त अभिव्यंजना मिलती है।
7. काव्य रूपों की दृष्टि से दोनों धाराओं के काव्यों में विभिन्नता यह है कि कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचना अधिकांशतः 'मुक्तक' शैली में की है तथा राम काव्य में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों शौलियों का प्रयोग मिलता है।
8. भाषा की दृष्टि से दोनों काव्य धाराओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि कृष्ण काव्य में ब्रज भाषा का सुमधुर परिकृत रूप है तथा राम काव्य में ब्रज एवं अवधी दोनों ही भाषाओं का यथा स्थान प्रयोग है।
9. राम काव्य में सभी शैलियों का प्रयोग उपलब्ध होता है तथा कृष्ण काव्य में गेय पद शैली प्रमुख है।
10. समन्वय की विराट चेष्टा केवल राम काव्य में की गयी है। कृष्ण भक्त कवि तो केवल प्रभु के चरणों की सेवा में स्वयं को लीन कर देते हैं।
11. सामाजिक उद्धार की उदात्त भावना केवल राम काव्य की विशेषता है, कृष्ण काव्य में इसका ऐसा व्यापक रूप नहीं मिलता।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. भक्ति काल का समय सन् 1318 से 1643 ई. तक किसने इंगित किया?
   (क) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल
   (ग) बाबू गुलाब राय (घ) डा. सत्येंद्र
2. भक्ति काल की आधारभूत काव्यधाराएं कौन–सी हैं?
   (क) ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी (ख) निर्गुण एवं सगुण
   (ग) सूफी एवं संत काव्य (घ) इनमें से कोई नहीं

2.3 रीतिकाल

रीतिकाल में दो प्रकार के कवि थे– एक वे जो राजाओं अथवा नवाबों के आश्रय में रहते थे और दूसरे वे जो राजदरबारों से बाहर रहकर काव्य की रचना कर रहे थे। इस काल के कवि अपने आपको रीतिकवि और अपनी रचना को रीतिकाव्य शब्द से अभिहित करते थे। इसलिए आधुनिक काल में साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने इस काल को 'रीतिकाल', काव्य के अंगों से संबंधित साहित्य को 'रीतिसाहित्य', इस साहित्य के रचयिताओं को 'रीतिकवि' तथा उनकी इस प्रकार के ग्रंथों की रचना करने की प्रवृत्ति को 'रीतिनिरूपण प्रवर्तन' नाम दिया गया है।

2.3.1 रीतिकाल की पृष्ठभूमि

'रीति' का सामान्य अर्थ 'विधि', 'प्रणाली' या 'परिपाटी' होता है, किंतु साहित्यशास्त्र में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है। संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' की घोषणा करते हुए इसे एक विशेष रचनापद्धति से संबद्ध किया तथा इसका लक्ष्य काव्य में सौंदर्य की उत्पत्ति करना माना। 'रीति' को काव्य की आत्मा स्वीकार कर लेने की स्थिति में उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है, उसकी परिधि में भावपक्ष एवं कलापक्ष संबंधी सभी सौंदर्योत्पादक साधनों का समावेश हो जाता है, किंतु 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' के रचयिता ने इसे वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली जैसी तीन पद्धतियों तक ही सीमित कर दिया। आचार्य शुक्ल ने इसे व्यापक अर्थ में स्वीकार किया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है– ''यहां साहित्य को गति देने में अलंकार–शास्त्र का ही जोर रहा है जिसे उस काल में 'रीति', 'कवित्त–रीति', 'सुकविरीति' कहने लगे थे, संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को 'रीतिकाव्य' कहा है।'' डॉ. नरेंद्र एवं श्री विश्वनाथ प्रसाद ने भी इस प्रकार की व्याख्या करते हुए 'रीति' शब्द को 'काव्य–रीति' का संक्षिप्त रूप बताया है।

वस्तुतः इन मध्यकालीन कवियों का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया है, अपने आश्रयदाताओं के हृदय में काम की पिचकारी छोड़ना था, उनकी रसिकता को उत्तेजित करते हुए उन्हें प्रेम की विभिन्न एवं शिष्ट सुसंस्कृत पद्धतियों से परिचित कराना था, अन्यथा वे केवल शृंगार–रस और नायिका–भेद को ही नहीं अपनाते।

टिप्पणी

हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक का समय रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। यह भक्तिकाल के बाद का तथा आधुनिक काल से पहले का कालखंड है। लगभग 200 वर्षों के इस काल में भारत में मुगलों का राज्य था। मुगल बादशाहों के उत्कर्ष को उनके वैभव विलास तथा विजय–वृत्तांतों से भी देखा जा सकता है। युद्ध से अवकाश मिलते ही ये समर्थ–शासक विलासिता की नदी में तैरने लगते थे। शाहजहां के समय से ही रीतिकाल का प्रारंभ भी देखा जाता है। शाहजहां के इसी समय से मुगल–शासकों का उत्कर्ष–बिंदु से धीरे–धीरे उतरना तथा हिंदी साहित्य में काव्य का भक्ति–वैभव के चरण से या स्वर्णयुग से नीचे उतरते हुए क्षयग्रस्त होना भी सहज ही देखा जा सकता है। अतः मुगल साम्राज्य और हिंदी काव्य के ह्रासोन्मुख होने का युग था रीतिकाल।

मध्यकालीन समाज के वैभव ने भी इस काल के साहित्य को दिशा दी। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है– ''शृंगार–वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था। आश्रयदाताओं का मनोविनोद तथा कवियों की अर्थप्राप्ति एक दूसरे के पूरक बनते चले गए। काव्य रचना अब राजाओं की रुचि एवं इच्छा के अनुरूप ही होने लगी। कवियों ने आश्रयदाताओं को तृप्त एवं प्रसन्न करने के लिए शृंगारी रचनाओं का सृजन जी भर के किया। राजाओं की वासना–तृप्ति ने कविता का उद्देश्य तथा स्वरूप बदल डाला। कवियों से काव्य शिक्षा ग्रहण करना भी राजाओं आश्रयदाताओं की रुचि में शामिल हो गया। परिणामतः संस्कृत लक्षणों को ध्यान में रखकर कवियों ने आचार्यत्व का मोह पाला और वे काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण भी करने लगे। इसी युग में कुछ रीतिइतर काव्य परंपराएं भी मिलीं जो कि भक्तिकालीन परंपराओं का विस्तार भी कही जा सकती हैं। ऐसी काव्य धाराओं में भक्तिपरक, नीतिपरक, वीरकाव्य, प्रकृति, राजप्रशस्ति, वैद्यक एवं चिकित्सा संबंधी तथा ज्योतिष संबंधी काव्य–सृजन भी चलता रहा, परंतु यह गौण रहा। मुख्य रूप से रीतिकाल में 'शृंगार' की प्रवृत्ति ही मुखर रही।

अलंकार निरूपण रस विवेचन, नायक–नायिका भेद तथा नखशिख वर्णन आदि का जो विशाल भंडार इस युग के साहित्य में उपलब्ध है, वह संस्कृत की परंपरा का पोषक ही कहा जा सकता है। इसकी प्रेरणा भी वही है। इस काल के नामकरण को लेकर भी पर्याप्त विवाद है, अतः उस पर दृष्टि डालना भी आवश्यक है।

नामकरण एवं काल सीमा

रीतिकाल के नामकरण को लेकर भी पर्याप्त विवाद रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। उनके अनुसार 'रीति' शब्द एक विशेष प्रकार की पदरचना या परिपाटी का सूचक है। रीति वास्तव में प्रणाली या प्रस्तुति का द्योतक है। इन कवियों ने एक विशिष्ट प्रणाली को दृष्टि में रखते हुए काव्य रचना की। यह प्रणाली ऐसी थी जिसमें सर्वप्रथम कवि आचार्य धर्म का निर्वाह करते हुए काव्य रचना की रीति या लक्षण प्रस्तुत करते थे तद्नुरूप रचना करते थे। ये उदाहरण उनके अपने रचे हुए भी होते थे और कभी दूसरे कवियों के भी दे दिए जाते थे। अतः लक्षण बताकर उदाहरण देने की प्रवृत्ति इसी युग में एक परंपरा सी बन गई। ये उदाहरण अधिकांशतः

टिप्पणी

शृंगारी होते थे। अतः इन लक्षणों की एक रीति सी बन गई थी। यही कारण है कि कवि शिक्षा देने या लाक्षणिक ग्रंथ लिखने के कारण इन कवियों को आचार्य या आचार्य–कवि भी कहा जाता है। इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। इसी प्रकार अन्य बहुत से कवियों ने भी 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्य–रचना के अर्थ में किया है। अतः यह नामकरण अत्यंत सटीक, सारगर्भित एवं अर्थवान बन गया।

मिश्रबंधुओं ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबंधु–विनोद' में इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया है। किंतु इससे यह प्रतीत होता है कि इस काल में केवल अलंकार आदि को ही प्रमुख प्रवृत्ति मान लिया गया है। 'अलंकृत काल' मान लेने से जो अन्य शृंगार, नीति, रीति, वीर और प्रशस्ति आदि से संबद्ध काव्य की अवहेलना हो जाती है। शृंगार की प्रवृत्ति इस युग में प्रमुख है और शृंगार संबंधी काव्य परिमाण में भी पर्याप्त है परंतु यह भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि इस युग के बहुत से कवियों ने लक्षण–ग्रंथ लिखकर भी शृंगार को कोई स्थान नहीं दिया। नीति, भक्ति, प्रवृत्ति के ऐसे कई ग्रंथ भी हैं जहां शृंगार उपलब्ध नहीं है। साथ ही शृंगार वर्णन भी राजा या आश्रयदाताओं की रुचि को केंद्र में रखकर ही किया गया, स्वेच्छा से नहीं। अतः शृंगार काल नाम भी पूरी तरह से उपयुक्त एवं सटीक नहीं लगता। इसमें भी अव्याप्ति दोष है। यही बात 'कला काल' के संदर्भ में भी कही जा सकती है। यह नाम डॉ. रमाशंकर शुक्ल रसाल ने दिया। यह नाम संभवतः काव्य–शास्त्र के निर्माण और कलापक्ष के परिष्कार और उत्कर्ष की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति का द्योतक है। किंतु इस नाम से भी सभी प्रवृत्तियों का परिचय नहीं मिलता।

अतः रीतिकाल नाम ही सर्वाधिक वैज्ञानिक और संगत है। इस युग में रीति संबंधी ग्रंथ तो अधिक लिखे ही गए साथ ही इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रंथ रचने की रही। फिर शृंगार रस के उदाहरण भी लक्षण के रूप में ही प्रस्तुत किए गए। अतः ये भी रीतिबद्ध काव्य से अधिक दूर नहीं रहे। रीतिनिरूपण की यह प्रवृत्ति भक्तिकाल में ही जन्म ले रही थी। यद्यपि यह नाम भी पूर्णतः उचित नहीं है। इसका कारण है कि रीतिकाल के कुछ कवि इस 'रीति' से अलग रहे। आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर जैसे कवियों पर न तो काव्यशास्त्र का प्रभाव रहा और न ही इन्होंने रीति निरूपक काव्य ग्रंथों की रचना की। इसी प्रकार सूदन, जोधराज जैसे वीर रस के कवि भी इस नाम के अंतर्गत नहीं आ पाते। किंतु इन कवियों को रीतिमुक्त अथवा रीतिइतर श्रेणी में रखा जा सकता है। तथापि 'रीतिकाल' नाम 'अलंकृत काल', 'कला काल' तथा 'शृंगार काल' कहने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। स्पष्ट है कि विषय चयन एवं विषय विस्तार के आधार पर रीतिकाल कहना ही उचित है। साथ ही अधिकांश कवियों द्वारा शृंगार को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण करना भी एक विशिष्ट पद्धति के अंतर्गत आता है। अनेक आचार्यों के रीति निरूपण संबंधी ग्रंथ भी इसके प्रमाण हैं। रीतिमुक्त कवियों पर भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से 'रीति' के प्रभाव को देखा जा सकता है।

किसी भी काल का आदर्श सीमा–निर्धारण संभव नहीं है। कारण यह है कि काव्यधारा या प्रवृत्ति विशेष को किसी विशेष निश्चित तिथि में नहीं बांध सकते। आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल की समय सीमा 1700 से 1900 विक्रमी संवत् मानी है। बाद के आचार्यों ने भी इसे मान्यता दी है। रीतिकाल के प्रथम कवि को लेकर भी विवाद रहा है। कुछ विद्वान केशव को मान्यता देते हैं, जबकि कुछ ने चिंतामणि को माना है।

टिप्पणी

आचार्य केशव की रचना 'रसिकप्रिया' (सन् 1591) में ही रीतिकाव्य सृजन की परंपरा डल चुकी थी परंतु अविच्छिन्न रूप से रीतिनिरूपण विषयक ग्रंथों की रचना चिंतामणि के रचनाकाल से ही प्रारंभ हुई। अतः केशव से रीतिकाव्य परंपरा के स्रोत खोजे जा सकते हैं परंतु समय सीमा के आधार पर उन्हें भक्तिकाल के उत्कर्ष का कवि आचार्य ही माना जा सकता है।

रीतिकालीन परिस्थितियां

कोई भी साहित्य समाज की परिस्थितियों से निर्मित होता है। कवि या साहित्यकार को प्रेरक बिंदु प्रदान करने और उनकी अभिव्यक्ति के लिए परिवेश प्रदान करने का श्रेय परिस्थितियों को ही जाता है। रीतिकालीन समाज के परिवेश ने भी साहित्य को दिशा प्रदान की। युगीन घटनाओं ने साहित्य को आकार दिया। आश्रयदाता राजाओं की रुचियां साहित्यकार को एक खास तरह की मानसिकता दे रही थीं। कवि ने सामाजिक अनुभूति को ही साहित्यिक अभिव्यक्ति बनाकर प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। जनसामान्य की स्थितियों को तथा काव्य एवं कला के स्वरूप को राजाओं की चितवृत्ति के अनुसार ढलना पड़ा। युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां इन्हीं चितवृत्तियों तथा मनोवृत्तियों से प्रभावित हुईं और फिर साहित्य तथा साहित्यकार को प्रेरित–प्रभावित किया। अतः रीतिकालीन साहित्य या साहित्यकारों पर लगने वाले आक्षेपों का उत्तर युगीन परिस्थितियां ही बनती हैं। यही साहित्य की दिशा निर्धारित कर कवि या साहित्यकार का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यहां हम इन परिस्थितियों का विश्लेषण करेंगे–

1. **ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियां**– यह युग अशक्ति और अव्यवस्था का युग था। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों के उदय एवं अंग्रेजों के आगमन के कारण इस युग में हिंदी भाषा–भाषी प्रदेशों में अशक्ति और अव्यवस्था का वातावरण बना रहा। यह काल आक्षेपों और आरोपों का युग रहा।

   भक्तिकालीन साहित्य के उत्कर्ष के समय ही रीतिकाल की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। यह काल सुख–समृद्धि का काल था। यह अकबर का काल था, तत्पश्चात जहांगीर का शासनकाल आया। इस समय तक राजनीतिक विघटन प्रारंभ हुआ। राजनीतिक षड्यंत्रों, भयावह युद्धों एवं गृहकलह के कारण घटित होने वाली रक्तरंजित घटनाओं ने यहां के राजनीतिक वातावरण में अस्थिरता उत्पन्न कर दी। अतः राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव और चरमोत्कर्ष तथा फिर उत्तरोत्तर ह्रास, पतन और निराशा का युग कहा जा सकता है।

   शाहजहां के शासनकाल में वास्तुकला अपने चरम पर थी, किंतु शासन का पतन प्रारंभ हो गया। तत्पश्चात औरंगजेब के शासनकाल में धर्मांधता एवं कट्टरता के साथ–साथ राज्य विस्तार की लिप्सा ने पहले तो राजनीतिक दीवारों में दरार डाली और फिर यही खाई धीरे–धीरे बढ़ती चली गई। इसी अत्याचार के विद्रोह स्वरूप हिंदू–मुसलिम नरेश सजग हुए। अस्तित्व रक्षा के लिए विद्रोह करती दक्षिण की मराठा–शक्ति तथा पंजाब की सिख–शक्ति का उदय हुआ।

टिप्पणी

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हुआ। कालांतर में दैवी प्रकोप या संघर्ष के कारण कोई भी शासक दीर्घकाल तक सत्तासीन नहीं रह सका। परिणामतः विलास भोग बढ़ता गया तथा अव्यवस्था फैल गई। केवल मुगल राजनीति ही नहीं, मराठों और सिक्खों की राजनीति के उत्थान–पतन भी इस युग को झेलने पड़े। भारतीयों के बंटे होने के कारण रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में आते–आते अंग्रेज़ों की सत्ता का निरंतर विकास होता गया। परिणामतः मराठों और सिक्खों की पराजय के कारण लोगों में जीवन के प्रति अनास्था जगी तो विलास के प्रति आस्था प्रबल होने लगी। राजाओं के राजदरबार और नवाबों के महल विलासिता के अखाड़े बनकर रह गए। अस्थिरता से उदासीनता बढ़ी और असुरक्षा की भावना ने विलासिता को विस्तार दिया। मुगल दरबारों की शान तथा विलासिता की भावना ने युगीन वातावरण को इस रूप में उद्दीप्त कर दिया कि जन–जन की रुचि तथा चित्तवृत्ति श्रृंगारी होती चली गई। साहित्य तथा साहित्यकार इसी वातावरण तथा राजनीति का लाभ उठाने के लिए दरबारी बनने लगे। सन् 1857 की देशव्यापी राज्यक्रांति ने अंतिम निष्फल प्रयास कर विलासी मुगलों को प्रतिष्ठा दिलानी चाही, परंतु व्यर्थ रहा। स्पष्ट है कि ऐसी राजनीतिक चालों और गिरते हुए मूल्यों के बीच रचा गया रीतिकालीन साहित्य युग के राजाओं, नवाबों और आश्रयदाताओं के दरबार की नुमाइश बनकर रह गया।

2. **सामाजिक परिस्थितियां**– सामाजिक दृष्टि से यह युग पतन का युग था। इस युग में सामंतवादी प्रथा थी, अतः सामंतवादी समाज के दोष भी विद्यमान थे। चाटुकारिता का बोलबाला था। रीतिकाल में जन–सामान्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्गों में विभक्त थे। इन वर्गों में खान–पान, विवाह आदि अपनी ही जाति के लोगों तक सीमित हो गया था। समाज अनास्था, अराजकता और कुंठाओं से ग्रस्त होता जा रहा था। ब्राह्मणों का अन्य जातियों पर प्रभुत्व था। क्षत्रिय वर्ग उच्च पदों पर आसीन थे। क्षत्रिय वर्ग मदिरापान में लगा था। वैश्यों और शूद्रों की स्थिति अच्छी न थी। शूद्र बहुविवाह, सती प्रथा, लोक मर्यादा का भय आदि सामाजिक दोष पनप रहे थे। बलि प्रथा, परदा प्रथा और अंधविश्वास भी समाज में फैल रहे थे।

शिक्षा की दृष्टि से भी समाज विघटन की ओर उन्मुख था। आश्रम प्रथा समाप्त हो गई। धर्म–दर्शन एवं विज्ञान आदि का अध्ययन–अध्यापन बहुत कम जगह पर था। स्त्री–शिक्षा का प्रचलन न था। समाज पर संभ्रांत वर्गों का ही प्रभुत्व था। धनाधिक्य ने इन्हें विलासी तथा दुराग्रही बना दिया था। यही कारण है कि कवि या लेखक जिस साहित्य का सृजन कर रहे थे वह जन–सामान्य का साहित्य न था। जनता भी शासक वर्ग की देखा–देखी विलासोन्मुख होती जा रही थी। नारी विलासिता की वस्तु बनती जा रही थी। आदर्श के अभाव में कुंठाएं पनपने लगी थीं। जनता पर संभ्रांत वर्ग की विलासिता का बोझ था। कला, संस्कृति, व्यापार, अर्थव्यवस्था, आचार–विचार सभी संकटों से गुजर रहे थे। अतः सामाजिक जीवन निरंतर ह्रासोन्मुख होता जा रहा था। नैतिक मूल्य पतनोन्मुख थे। कुल मिलाकर दुराचार, अनाचार और व्यभिचार के इस युग में सामाजिक व्यवस्था पूर्णतः बिखर गई थी।

टिप्पणी

3. **सांस्कृतिक परिस्थितियां**– सांस्कृतिक दृष्टि से भी रीतिकाल का युग अत्यंत असंतुलित व्यवस्था का सूचक है। औरंगज़ेब की कट्टर सांप्रदायिक नीतियों के कारण सांस्कृतिक एकता स्थापित होने के प्रयास विफल हो गए। पारस्परिक मेलजोल, सांप्रदायिक आदान–प्रदान में अंतराल आने लगा था। एक–दूसरे के प्रति सौहार्द और विश्वास कम हो रहा था। संप्रदायों की दृष्टि अब तत्वचिंतन की न होकर भौतिक होने लगी। जीवन की सभी गतिविधियां अपनी वास्तविकता से दूर होती जा रही थीं। आस्था और विश्वास के अर्थ बदल चुके थे। इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टि से समाज अस्त–व्यस्त था।

4. **साहित्यिक परिस्थितियां**– जिस श्रृंगार की मदिरा ने भक्तिकाल में औषधि का काम किया था वही रीतिकाल में घातक व्यसन बन गई। पहले भक्त कवि श्रृंगार की कविता अपने इष्टदेव की भक्ति का अंग मानकर करते थे। श्रृंगारिक कविता इन (रीतिकाल) कवियों के हाथ में एक प्रकार का व्यसन मात्र रह गई। राधा और कृष्ण श्रृंगारिक कविता के आलंबन मात्र हो गए। रीतिकाल के कवियों के लिए कवित्व का प्राधान्य हो गया। वास्तव में रीतिकालीन कवियों में अपनी श्रृंगारिक प्रवृत्ति के परिपोषण के लिए राधा–गोविंद का नाम एक बहाना मात्र रह गया। जैसा कि भिखारीदास ने कहा भी है–

आगे के सुकवि रीझिहैं तो सुकबिताई
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

रीतिकाल में कविता स्वान्तः सुखाय न बनकर राजदरबार की वस्तु बनकर रह गई थी। प्रत्येक कवि अपने प्रतिद्वंद्वी से बाजी ले जाना चाहता था, और अपने आश्रयदाता को 'येन–केन प्रकारेण' प्रसन्न करने हेतु प्रयत्नशील रहता था। इसके लिए उसे संस्कृत और प्राकृत साहित्य से अवगाहन कर प्राचीन रत्नों को नए रूप में रखना पड़ता था। इस प्रकार कविता स्फूर्ति का विषय न बनकर एक आवश्यकता का विषय हो गई थी।

श्रृंगार प्रधान काव्य, नायक–नायिका भेद, नखशिख वर्णन एवं विविध क्रीड़ाओं का रसमयी शैली में विवेचन इस काल में प्रमुखतः किया गया है। इस युग का साहित्य किन परिस्थितियों से चालित एवं प्रेरित होता रहा, इसकी समीक्षा करना ही लक्ष्य है। वास्तव में परिस्थितियां साहित्य सृजन की प्रभावी प्रेरणा तो बनती ही हैं साहित्यकार एवं कलाप्रेमियों की दिशा–निर्देशिका का कार्य भी करती हैं। इस प्रकार साहित्यकार और परिस्थितियां एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। संपूर्ण विश्व के एवं सभी भाषाओं के साहित्य पर परिस्थितियों के प्रभाव को देखा–समझा जा सकता है।

रीतिकालीन साहित्य श्रृंगार से ओतप्रोत था। किंतु इसका कारण क्या था यह विचारणीय विषय है। कवियों को घोर श्रृंगारी साहित्य लिखने की प्रेरणा कहां से मिली। इन प्रश्नों का उत्तर भी तात्कालिक परिवेश में ही छिपा है।

साथ ही यह भी पूर्णतः सत्य नहीं है कि इस युग में केवल श्रृंगारी काव्य का ही सृजन हुआ हो। श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य कई प्रवृत्तियां भी इस युग के काव्य में देखने को मिलती हैं।

टिप्पणी

5. **धार्मिक परिस्थितियां**– रीतिकाल न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक पतन का युग था, वरन् धार्मिक दृष्टि से भी सभी मापदंड समाप्त हो रहे थे। धार्मिक स्थितियां भी आदर्श विमुख थीं। शाहजहां के काल की धार्मिक सहिष्णुता को औरंगजेब ने समाप्त कर दिया, धीरे–धीरे यह धार्मिक कट्टरता बनकर सामने आई। धर्म की उदात्तता नष्ट हो गई। विलास वासनाओं और ऐहिक संपूर्तियों ने धर्म को आच्छादित कर दिया। बाह्याचारों, अंधविश्वासों और धार्मिक अनाचारों ने जनता को ठगना प्रारंभ कर दिया। अधकचरे मौलवियों, ढोंगी साधु–संतों ने धार्मिक असंगतियों तथा दुराग्रहों से समाज को बंधक बना लिया। साधारण जनता लिप्सा–ग्रस्त होने लगी। भक्तिभाव मांसल तथा ऐंद्रिक बनते गए। राधा और कृष्ण के नाम पर कुत्सित भावनाओं का प्रदर्शन हुआ। धार्मिक आड़ में अनाचार फले–फूले।

   हिंदू और मुसलिम एक्य की जो लहर भक्तिकाल में चली थी, वह अब समाप्त होने लगी। अब इन दोनों में एक विभाजन रेखा खिंच गई। हिंदू धर्म अनेक साधना पद्धतियों में लिप्त हो गया। वैष्णव, शाक्त, शैव, जैन, सिद्ध आदि अनेक पंथ चले और हिंदुओं की आस्था के केंद्र बन गए। मंदिर–मसजिद राजमहलों से नियंत्रित थे। राजसत्ता धर्म का प्रयोग अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु कर रही थी। यही कारण है कि बाल कृष्ण की बाल लीलाएं, युवा कृष्ण की काम क्रीड़ाएं बनकर रह गईं। मर्यादा–पुरुषोत्तम राम भी इस युग में आकर रसिक संप्रदाय के रसिक बन गए। सखी संप्रदाय ने राम–सीता की शृंगारी लीलाओं का वर्णन किया है। यद्यपि निर्गुण भक्ति संप्रदाय भी चल रहे थे, किंतु इनकी भक्ति भी युगीन परिवेश से संपृक्त थी।

   ऐसे धार्मिक पतन के युग में कला और साहित्य भी दरबारी बन गए। शृंगार अपनी शुचिता से विलासिता की ओर जाने लगा। वास्तव में रीतिकालीन साहित्य समस्त समाज का दर्पण न होकर एक सामंती समाज का प्रतिबिंब है। जन सामान्य से तो इस युग का साहित्य विमुख ही रहा है।

2.3.2 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां

रीतिकाल की परिस्थितियों का परिचय हम पूर्व में प्राप्त कर चुके हैं। रीतिकाल में संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परिपाटी के लिए 'रीति' शब्द का प्रचलन प्रारंभ हुआ। इस काल में जिन विषयों से संबद्ध कविता लिखी गई वे हैं– शृंगार, राजप्रशस्ति, भक्ति, नीति, प्रकृति तथा अन्य विषय। साथ ही रीतिकाल में दो प्रकार के कवि थे– एक वे जो राजदरबार में रहकर काव्य रचना करते थे, तथा दूसरे वे जो बाहर काव्य रचना करते थे। इनकी अधिकांश रचनाओं में दरबारी संस्कृति और संस्कृत के लक्षण–ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. **रीति निरूपण**– इस काल के कवियों की यह प्रधान विशेषता है। इन कवियों ने तीन प्रकार की रचनाएं कीं। प्रथम वे कवि थे जिन्होंने काव्यांगों का परिचय दिया तथा ऐसे ग्रंथों में लक्षण के साथ उदाहरण अन्य कवियों से दिए गए। यथा जसवंत सिंह का 'भाषाभूषण', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि। द्वितीय अंतप्रवृत्ति में रीति कर्म और कवि कर्म का

टिप्पणी

समान महत्व रहा है। इसमें ग्रंथकार लक्षण देकर और उसी के अनुरूप कवित्वपूर्ण रचना करता है। चिंतामणि, मतिराम, भूषण, देव, कुलपति और श्रीपति के ग्रंथ इसी प्रकार के हैं। तृतीय अंतःप्रवृत्ति के अंतर्गत ग्रंथकारों ने सभी छंदों की रचना यद्यपि काव्यशास्त्रीय नियमों में बंधकर की है, किंतु लक्षण के फेर में वे नहीं पड़े। बिहारी, भूपति, चंदर आदि द्वारा रचित ग्रंथ इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं।

विवेच्य शैली के आधार पर रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति की तीन शैलियां हैं– प्रथम में लक्षणों, उदाहरणों की व्याख्या देकर विवेच्य विषयों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी शैली संक्षेप शैली है। जिसमें लक्षण व उदाहरण पृथक–पृथक दिए गए हैं। तीसरी शैली में लक्षण और उदाहरण देकर विषय निरूपण किया गया है। अतः रीतिनिरूपण रीतिकाल में पर्याप्त मात्रा में है।

2. **शृंगारिकता**– यह रीतिकालीन कवियों की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति है। इन कवियों ने आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक–नायिका के संयोग–वियोग वर्णन, नखशिख वर्णन, काम दशाओं और काम चेष्टाओं का वर्णन किया है। यह इस काल के सभी ग्रंथों में ही नहीं देखा जा सकता, प्रत्युत सतसई ग्रंथों तथा स्फुट शृंगारी छंदों में भी देखने को मिलता है। अतः नायिका स्वरूप वर्णन शृंगारिकता की पहली और सर्वव्यापक अन्तःप्रवृत्ति कही जा सकती है प्रायः कवि परंपरागत ढंग से नायिकाओं के विभिन्न शरीरावयवों का स्थूल वर्णन करते हुए दृष्टिगत होते हैं। कुछ कवियों ने तो नखशिख संबंधी स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है। तोश, मंडन, कुलपति, रसानंद इसी अंतःप्रवृत्ति के प्रमाण हैं। जैसा कि आचार्य शुक्ल का कथन है– ''इस रस का इतना अधिक विस्तार साहित्य में हुआ कि इसके एक–एक अंग को लेकर स्वतंत्र ग्रंथ रचे गए।'' एक उदाहरण प्रस्तुत है–

कुंदन को रंग फीको लगे, झलके ऐसौ अंगन चारू गुराई।
आंखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।।

शृंगार के अंतर्गत इन्होंने मुख्यतः संयोग पक्ष का एवं नायिका के सौंदर्य का निरूपण किया। आलंबन की मधुर छवि एवं उसकी सूक्ष्म चेष्टाओं के अंकन के लिए उन्होंने नखशिख वर्णन की परंपरागत शैली में थोड़ा संशोधन करके नई पद्धति का विकास किया। दूसरी ओर शट्ऋतु और बारहमासा के वर्णन की प्रवृत्ति भी इस काल के कवियों में देखने को मिलती है। अनुभावों का वर्णन इन कवियों की प्रमुख विशेषता रही है किंतु किसी ग्रंथ में इन्हें एकांत रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया। इसी प्रकार वियोग शृंगार के वर्णन में दशकामदशाओं तथा विप्रलम्भ शृंगार के भेदों का वर्णन भी प्रायः कवियों ने शास्त्रीय परिपाटी के अनुसार किया है, किंतु वहां पर भी एतत्संबंधी किसी अंतःप्रवृत्ति के होने की बात नहीं की जा सकती।

3. **राजप्रशस्ति**– यह भी रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसका दर्शन सामान्यतः द्वंद्व और अलंकार के निरूपण संबंधी ग्रंथों तथा आमुखों के रूप में होता है। इस प्रवृत्ति के भीतर किसी अंतःप्रवृत्ति को तो स्पष्टतः नहीं देखा जा सकता पर आश्रयदाताओं और उनके पूर्वजों के वैभव, उनके शौर्य और पराक्रम तथा उनकी दानशीलता का वर्णन इन कवियों का मुख्य वर्णन विषय रहा है, पर उसमें

आश्रयदाताओं के शत्रुओं की कायरता तथा आश्रयदाताओं के आतंक के वर्णन की प्रवृत्ति के सिवाय कोई वैशिष्ट्य दृष्टिगत नहीं होता।

टिप्पणी

राजप्रशस्ति के अंतर्गत उद्देश्यों की पूर्ति कवियों का लक्ष्य रहा– (1) अपने ग्रंथों का नामकरण आश्रयदाता के आधार पर करना। (2) आश्रयदाता के जीवन चरित्र को लेकर खंडकाव्य की रचना करना। यद्यपि इस प्रकार के ग्रंथ प्रबंधत्व की दृष्टि से सफल नहीं हैं, किंतु इस प्रवृत्ति का एक लाभ अवश्य हुआ कि ऐतिहासिक या अर्द्धऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर वीररसात्मक काव्यों की रचना हुई। कवियों की वाणी जो शृंगार रस की मंद–मंद स्वर लहरियों को गुंजाने की अभ्यस्त थी, उसने रौद्र और वीर तुमुल घोष करने का भी साहस दिखाया।

4. **भक्ति भावना**– इन सभी कवियों ने विभिन्न देवी–देवताओं के प्रति अपनी आस्था या भक्ति भावना का प्रदर्शन उसी प्रकार से किया है, जिस प्रकार से उस युग में एक सामान्य गृहस्थ अपने परिवार और अपने कल्याण के लिए व्यक्त करता था। न तो इनमें किसी विशिष्ट देवी या देवता के प्रति भक्ति भाव का आग्रह है और न किसी विशिष्ट भक्ति संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुरूप अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति ही है; यथा–

   मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय

   जा तन की झांई परत, श्याम हरित दुति होय।

   कतिपय रचनाओं में कवियों ने दार्शनिक विचार भी व्यक्त किए हैं। किंतु उनमें कोई विशिष्ट सैद्धांतिक बात नहीं मिलती जिसे किसी प्रवृत्ति की संज्ञा दी जा सके। उस काल के सामान्य व्यक्ति को अद्वैत दर्शन अथवा उनकी व्याख्याओं का जो अधकचरा ज्ञान प्राप्त था, वही प्रायः दृष्टिगत होता है। कवि में भावुकता का गुण होना सहज स्वाभाविक है, अतः जब ये भक्ति संबंधी छंदों की रचना में प्रवृत्त होते हैं तो वहां कहीं–कहीं सच्चे भक्त का भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। वैराग्य की प्रवृत्ति को अतिशृंगारिकता की प्रतिक्रिया के रूप में ग्रहण करना उचित होगा। डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार– वृद्धावस्था में अशक्त होकर केशव, देव, पद्माकर आदि सभी प्रमुख कवि वैराग्य से ग्रसित दिखाई पड़ते हैं जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक है।

5. **नीति**– भक्ति के समान काव्यशास्त्रीय नियमों में बंधी नीतिपरक रचनाएं इस काल के रीति ग्रंथों तथा रीति की परिपाटी में बद्ध ग्रंथों में मिलती है। इनमें प्रथम वे रचनाएं हैं जिनमें कवि अपने जीवन के अनुभवों अथवा महापुरुषों की वाणी के आधार पर व्यक्ति को कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध कराता है अथवा अपने आपको संबोधित करता है। इनमें सतसई ग्रंथों तथा अलंकार–निरूपण संबंधी ग्रंथों के कतिपय छंदों में भी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। दूसरे वे ग्रंथ हैं जिनमें कवि 'अन्योक्ति' की सहायता से किसी व्यक्ति को सावधान करता है अथवा कर्तव्य बोध कराता है। ये रचनाएं अधिकांशतः उस युग के दरबारी वातावरण में लिखी गई हैं जहां कोई व्यक्ति शासक के कोप के भय से स्पष्टतः कुछ नहीं चाहता। यथा–

   कनक–कनक तैं सौ गुनी मादकता अधिकाइ

   या खाए बौराइ जग वा पाए बौराइ।

टिप्पणी

6. **प्रकृति चित्रण**– रीतिकाल दरबारी काव्य था। रीतिकालीन कवियों के पास प्रकृति में विचरण करने का अवकाश नहीं था। अतः प्रकृति का चित्रण नायक–नायिका की मनोदशा के अनुकूल ही किया गया है। संयोगावस्था में यदि प्रकृति का मनोमुग्धकारी एवं प्रफुल्लित रूप का चित्रण है तो वियोगावस्था में विदग्धकारी रूप का चित्रण है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण शट्ऋतु तथा बारहमासा की चित्रण पद्धति पर किया गया है।

7. **आलंकारिकता**– रीतिकाल प्रदर्शन, चमत्कार और रसिकता का युग था। विलासी राजदरबार का प्रभाव जनजीवन पर पड़ चुका था। कवियों को अलंकारशास्त्र के अनुसार स्वयं के काव्य को ढालना पड़ता था। संस्कृत के काव्यशास्त्र से लक्षण लेकर उन्होंने उनके उदाहरण स्वयं ही रचे। उस काल की मनोवृत्ति ही कुछ इस प्रकार की हो चली थी कि अलंकारशास्त्र के ज्ञान के बिना कवि को दरबार में सम्मान मिलना संभव नहीं था। ये कवि चमत्कारप्रिय थे। आचार्य केशव ने लिखा भी है–

   जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।

   भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त।।

8. **मुक्तक शैली**– रीतिकाल में हमें मुक्तक शैली की प्रमुखता दिखाई देती है। यह शैली रीतिकाल की काव्य प्रवृत्ति के अनुसार थी। इसी कारण वे ही शब्द अपनाए गए, जो मुक्तक काव्य में सहायक हो सकें। कवित्त, सवैया, बरवै, दोहा आदि इस काल के प्रमुख छंद हैं।

9. **ब्रजभाषा का प्रयोग**– ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा कृष्णभक्त कवियों द्वारा ही की जा चुकी थी। रीतिकालीन कवियों द्वारा उसका और अधिक विकास हुआ। लाक्षणिक प्रयोगों, स्वाभाविक अलंकरण, भावपक्ष की कोमलता एवं सरसता से युक्त होकर रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा अपने संपूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई। ब्रजभाषा का इन कवियों ने परिमार्जन करके उसे सुसंस्कृत एवं शक्तिशाली बनाया और 200 वर्ष तक वह हिंदी साहित्य क्षेत्र में एकछत्र राज्य करती रही। इसमें कोई संदेह नहीं कि रीतिकाल के रचयिता चाहे सफल आचार्य नहीं बन सके हों किंतु उन्होंने अपने दीर्घ भाषा अभ्यास एवं उसकी सूक्ष्म जानकारी का परिचय अवश्य अपनी शैली की प्रौढ़ता के द्वारा दिया है।

अस्तु, रीतिकालीन काव्य, क्षेत्र की संकीर्णता, रूढ़ियों की परिधि एवं नियमों की शृंखलाओं में ही आबद्ध रहा, किंतु इन परिस्थितियों में भी उसने जैसी कोमलता एवं मार्मिकता प्रदर्शित की वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस काल में शृंगार का जैसा चित्रण हुआ, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

सभी ने अपने काल की परिस्थितियों से प्रभावित होकर मुख्य रूप से रीतिनिरूपण संबंधी ग्रंथ लिखे जिनके भीतर संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर रस, छंद, अलंकार आदि काव्यांगों के विवेचन के लिए लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए गए। इस प्रकार इस काल की मुख्य प्रवृत्तियां रीतिनिरूपण और शृंगारिकता की तथा गौण प्रवृत्तियां राजप्रशस्ति, भक्ति, नीति तथा प्रकृति आदि अन्य विषयों की कही जा सकती हैं।

टिप्पणी

2.3.3 रीतिकाल की विभिन्न काव्यधाराएं एवं विशेषताएं

रीतिकाल को कुछ विद्वानों ने दो शाखाओं में बांटा है तथा कुछ विद्वानों ने तीन शाखाओं में बांटा है। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में इस काल के सभी कवियों को दो भागों में बांटा है। एक वर्ग तो ऐसे कवियों का है जिन्होंने समग्रतः या अंशतः रीति परंपराओं का पालन किया। दूसरे वर्ग के कवि वे हैं जिन्होंने परंपरा से मुक्त रहकर काव्य–सृजन किया। पहले वर्ग के कवियों को रीतिबद्ध कवि कहते हैं; तथा दूसरे वर्ग के कवि रीतिमुक्त शाखा के अंतर्गत आते हैं। शुक्ल जी के बाद के विद्वानों ने रीति परंपरा को स्पष्टतः अपनाने, काव्य में इसके प्रत्यक्षतः या परोक्षतः पालन करने तथा इनसे सर्वथा मुक्त रह कर भी रस–दृष्टि से सम्पृक्त रहने के आधार पर रीतिकाल को तीन वर्गों में विभक्त किया–

(क) रीतिबद्ध काव्यधारा

रीतिबद्ध काव्य के विवेचन से पूर्व 'रीति' के अर्थ को समझना आवश्यक है। संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतर्गत 'रीति' शब्द काव्य के उस विशिष्ट अंग के लिए रूढ़ है जिसे काव्य की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य वामन ने तत्संबंधी पृथक संप्रदाय का प्रवर्तन किया। उनकी विधायी विशेष पद्धति–विशेष लोकव्यवहार में 'मार्ग' शब्द से ही अभिहित होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्यरचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष में व्यवहृत हुआ है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों में भी अनेक ऐसे हैं जिन्होंने काव्य–रचना पद्धति को 'रीति' और उसके पर्याय 'पंथ' से ही अभिहित किया है। अतएव व्युत्पत्ति प्रयोग और परंपरा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिंदी में भी बहुत पहले से काव्य–रचना पद्धति के लिए रूढ़ है।

जिन कवियों ने काव्यशास्त्र का आधार लेकर लक्षण–ग्रंथों की रचना की, लक्षणों का विवेचन करते हुए सुंदर उदाहरणों की योजना की, रीतिबद्ध कवि कहलाए, उन्हें लक्षण–ग्रंथकार भी कहा गया। इसी काल में श्रृंगारी कवियों की श्रेणी में से एक ऐसा वर्ग भी सामने आया, जिन्हें रीतिसिद्ध कवि माना गया। इन्होंने यद्यपि लक्षण–उदाहरण पद्धति को तो नहीं अपनाया, पर इनका काव्य भी काव्यशास्त्रीय परिपाटी के निकट रहा। रीतिबद्ध कवियों की प्रेरणा का स्रोत संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा ही रही है, जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। आचार्य शुक्ल के अनुसार– ''इन रीति ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण–ग्रंथों से चुनकर इकट्ठे करें तो उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।

रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताएं

1. **संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव**– रीतिबद्ध कवियों ने श्रृंगारकालीन रीतिग्रंथों की रचना की जो संस्कृत के आचार्य कवियों से प्रभावित थे। कुछ ग्रंथ तो सीधे–सीधे छायानुवाद रूप में भी हैं। यथा कुलपति मिश्र का 'रस रहस्य' तथा जसवंत सिंह का 'भाषा भूषण' आदि। रीति निरूपण के सैद्धांतिक पक्ष में तो प्रायः मौलिकता नहीं है।

टिप्पणी

2. **लक्षण ग्रंथों का निर्माण**– रीतिबद्ध कवियों की यह प्रमुख विशेषता है। उन्होंने रस, रीति, अलंकार, छंद, शब्दशक्ति का विस्तृत विवेचन किया है। इन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में हुई विवेचना के आधार पर ही हिंदी काव्यशास्त्र के निर्माण का प्रयत्न किया था। भामह, उद्‌भट, आनंदवर्द्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, जयदेव आदि के ग्रंथ उनके आधार और प्रेरणा स्रोत रहे।

3. **लौकिक श्रृंगार की व्यंजना**– रीति कवियों का क्षेत्र श्रृंगार में ही सिमटकर रह गया जो सर्वथा लौकिक ही था। यद्यपि रीतिकाल को श्रृंगार की परंपरा पूर्ववर्ती कवियों से ही प्राप्त हुई, पर भक्तिकाल में उस पर जो अलौकिकता का आवरण था, वह हट गया। इसी कारण उन्होंने स्वीकार भी किया है–

आगे के कवि रीझिहैं तो सुकबिताई
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

संयोग श्रृंगार के अंतर्गत अनुभावों की भी व्यंजना की है–

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौंन में करत है, नैननु हीं सब बात।।

वियोग वर्णन में ऊहात्मकता के चित्र अधिक हैं–

औंधाई सीसी सु लखि, विरह–बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौं, छीटों हुई न गात।।

4. **पद्यबद्धता के कारण विवेचन में अस्पष्टता**– हिंदी के ग्रंथकारों ने प्रायः पद्य में ही रीति ग्रंथों का प्रणयन किया है। कहीं–कहीं बीच–बीच में गद्य का भी पुट मिलता है। किंतु पद्य की प्रधानता से काव्यशास्त्र का विवेचन इन ग्रंथों में संस्कृत के ग्रंथों की भांति सुलझे एवं स्वाभाविक रूप में नहीं हो पाया है।

5. **चमत्कार प्रदर्शन**– अधिकांश रीतिकवि दरबारी थे। फलतः चमत्कार प्रदर्शन की भावना का उनमें होना स्वाभाविक है। इनकी यह विशेषता विलक्षण है कि इन्होंने सामान्य बात को भी चमत्कारी ढंग से कहकर चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

6. **अतिशय अलंकरण की प्रवृत्ति**– इस काल में अलंकारों की प्रधानता के कारण ही सम्भवतः डॉ. रसाल ने इसे 'अलंकृत काल' कहा है। भाषा–परिष्कार, अलंकारों का सार्थक मनोरम उपयोग, संक्षेप में बहुत अधिक कहने की प्रवृत्ति, चमत्कार प्रदर्शन, जीवन के आकर्षक एवं मनोरम प्रसंगों की ही व्यंजना करना, वाग्वैदग्ध्य, काव्य–नियमों के परिपालन के प्रति सचेत रहना आदि बातों ने इस काव्य को कलापक्ष की दृष्टि से काफी समृद्ध बना दिया है। वस्तुतः इस काव्य में भावना की सुकुमारता, अनुभूति की सत्यता और गहनता एवं कल्पना की मौलिकता की अपेक्षा उक्ति की वक्र–व्यंजना पर ही अधिक बल दिया गया। कवियों की दृष्टि काव्य की आत्मा रस की अपेक्षा अभिव्यक्ति की मनोरमता और वक्रता के प्रति अधिक रही। वस्तुतः इस अलंकरण की प्रवृत्ति के मूल में दरबारी प्रभाव ही कार्य कर रहा था क्योंकि दरबार में उक्ति वैचित्र्य के द्वारा प्रदर्शन ही श्रेयस्कर माना जाता है।

टिप्पणी

7. **मुक्तक की प्रधानता**– रीतिकाव्य में मुक्तक रचनाओं की प्रधानता है। इसके कारण हैं– लक्षण ग्रंथों का निर्माण तथा दरबारी वातावरण का प्रभाव। लक्षण ग्रंथ मुक्तक–शैली में लिखे जा सकते हैं, साथ ही शृंगार की प्रधानता के कारण भी मुक्तक शैली ही इस काल के कवियों के लिए अधिक उपयुक्त थी। दरबारी वातावरण भी इसके अनुकूल था क्योंकि दरबारों में प्रबंध सुनने की न तो रुचि थी और न ही अवकाश ही था। मनोरंजन के लिए मुक्तक ही उपयुक्त था।
8. **प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण**– रीतिकाव्य में मानवीय भावों को उद्दीप्त करने में सहायक प्रकृति का रूप ही उभरकर सामने आया। इस काल से पूर्व भी प्रकृति का यही रूप रहा था। रीतिकाल के कवियों का प्रकृति का वर्णन बहुत ही प्रभावी और सरस रहा है।
9. **भाषा**– इस काल में भाषा–सौंदर्य अपने चरम पर रहा। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन कवियों की भाषा में मिश्रण की प्रवृत्ति और व्याकरण के नियमों की अवहेलना करने का दोष लगाया है, पर कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि अन्य भाषाओं के शब्द अपना लेने से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विकास ही हुआ है। डॉ. राजनाथ शर्मा ने इस काल के कवियों की भाषा शक्ति की महत्ता स्वीकार करते हुए माना कि इस काल का सा भाषा–परिष्कार और सौंदर्य छायावादी काव्य के अतिरिक्त हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा में कोमलकांत पदावली, अलंकारों का रम्य, सार्थक प्रयोग, मुहावरों, कहावतों आदि का सुंदर और प्रचुर उपयोग जैसा इस काल में हुआ, उसकी हल्की सी झलक कृष्ण भक्ति काव्य में ही मिलती है।

   अस्तु, उपयुक्त प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि रीतिकाव्य क्षेत्र की संकीर्णता, रूढ़ियों की परिधि एवं नियमों की शृंखलाओं में ही आबद्ध रहा, किंतु इन परिस्थितियों में भी उसने जैसी सरसता, कोमलता एवं मार्मिकता प्राप्त की, वह कम महत्व की बात नहीं है। चाहे उन्होंने केवल शृंगार को ही लिया, किंतु उसके विभिन्न अंगों का जैसा चित्रण उन्होंने किया, वह अन्यत्र सुलभ नहीं उनकी दृष्टि चाहे नायिका भेद तक ही सीमित रही, किंतु उनकी जैसी सजीव एवं हाव–भावपूर्ण अनेकानेक मूर्तियां उन्होंने प्रस्तुत की हैं, वैसी किसी अन्य साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होतीं। साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदी में ये पहले कवि थे, जिन्होंने कला को शुद्ध कला के रूप में देखा, सौंदर्य की साधना को ही अपने कर्तव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार किया।

रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि

ये वे कवि थे जिन्होंने रीति परंपरा में बंधकर लक्षण–ग्रंथ प्रमुख रूप से लिखे। जो लक्षण इन्होंने प्रस्तुत किए उन्हें स्पष्ट एवं पुष्ट करने के लिए उदाहरणस्वरूप अपनी कविता भी प्रस्तुत की। चिंतामणि, मतिराम, देव, भिखारीदास, जसवंत सिंह आदि इसी प्रकार के कवि हैं।

(ख) रीतिसिद्ध काव्यधारा

रीतिकाव्य में दूसरा वर्ग उन ग्रंथों का है जिनमें रचयिता लक्षण देने के चक्कर में नहीं पड़ा– केवल अपना कवित्व–प्रदर्शन उनका उद्देश्य रहा है। इन ग्रंथों की विशेषता यह

टिप्पणी

रही है कि इनका प्रत्येक छंद किसी लक्षण का उदाहरण न होते हुए भी किसी लक्षण का उदाहरण बन सकता है, कारण इनके रचयिताओं ने इनकी रचना करते समय जाने–अनजाने में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन कर लिया है। शास्त्रीय नियमों में बद्ध रीतिबद्ध काव्य–संबंधी उदाहरणों से इन छंदों का अंतर यही है कि वे जहां किसी विशिष्ट लक्षण के साथ जुड़े हुए हैं वहां ये शास्त्रीय नियमों में बद्ध होते हुए भी सर्वथा स्वतंत्र हैं। दूसरे शब्दों में काव्यशास्त्रीय नियमों की स्थिति इनके भीतर ही स्वतः सिद्ध है– अर्थात काव्यशास्त्र संबंधी विशिष्ट नियम इनके भीतर सहज रूप से इतने घटित हुए प्रतीत होते हैं कि यह इन नियमों के अनुरूप रचे हुए प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि ये नियम इस छंद की रचना के समय कवि के संस्कार में गहराई से बैठे हुए थे।

वस्तुतः रीतिबद्ध कवि एवं रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएं लगभग समान ही हैं। दोनों में काव्यशास्त्रीय संस्कार तो समान रूप से रहते ही हैं, अंतर यदि है भी तो केवल इतना ही कि रीतिबद्ध काव्य–रचना में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन अनिवार्यतः किया जाता है जबकि रीतिसिद्ध काव्य में से नियम संस्कारवश स्वतः फलीभूत हो जाते हैं। अतएव रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध विशेषण किसी कवि विशेष के लिए न जोड़े जाकर उसके ग्रंथ अथवा रचना विशेष के साथ ही जुड़ने चाहिए। एक ही कवि की रचनाएं अपनी विशेषताओं के अनुसार भिन्न हो सकती हैं। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की अभिव्यंजना पद्धति भी समान है जिसमें भाषा का स्वरूप और सौष्ठव एक कवित्त, सवैया और दोहे या मुक्तक की सभी विशेषताओं सहित प्रयोग किसी भी प्रकार से प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त इन दोनों की सांस्कृतिक, साहित्यिक और काव्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि तथा दरबारी परिवेश भी समान है। अंतर है तो यही की रीतिबद्ध काव्य काव्यांक विशेष के विवेचन में लक्षण के साथ उसके उदाहरण के रूप में लिखा गया है और रीतिसिद्ध लक्षणों के बिना और स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है– यद्यपि कवियों के काव्यशास्त्रीय सहकारों के कारण नियमबद्धता इसके मूल में विद्यमान है। कहने का अभिप्राय है कि रीतिसिद्ध काव्य रीतिबद्ध काव्य का एक प्रकार से परिष्कृत रूप है।

रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि

ऐसे कवि जिन्होंने लक्षण बताने वाले ग्रंथ तो नहीं लिखे, फिर भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस परंपरा की मान्यताओं का अपने काव्य में उपयोग किया और सृजन के क्षणों में उनका पूर्ण ध्यान भी रखा। बिहारी, सेनापति इसी प्रकार के कवि हैं।

(ग) रीतिमुक्त काव्यधारा

रीतिमुक्त कवि वे थे जो अपनी अनुभूति को, अपनी प्रेम वेदना को तथा अपनी विरह व्यंजना को काव्य में अश्रुओं सा तरल एवं सहज बनाकर ढाल रहे थे। रीतिमुक्त कवियों ने रीति के सारे मानदंड ठुकरा कर, दरबारों का बहिष्कार करते हुए निजी प्रेम की मर्मस्पर्शी पीड़ा को गीतों में पिरोया। ये कवि अपनी स्वच्छंद एवं उन्मुक्त चेतना के कवि थे जिन्हें उनकी प्रियतमाओं का वियोग उपहार स्वरूप मिला था। श्रृंगार तथा भक्ति के सौंदर्य युक्त पदों का सृजन करने वाले इन प्रेम चितेरों ने संयोग पक्ष का सर्वथा बहिष्कार किया। संयोग कहीं आया भी तो स्मृति बनकर। इनका विरह भी रीतिपरक

टिप्पणी

श्रृंगार के समान नारी का ऊहात्मक विरह नहीं दर्शाता, यहां तो पुरुष का विरह वर्णित है। स्वच्छंद काव्य के ये कवि विरह के अतिरेक में फारसी सूफी काव्य के उस साधक की तरह हो जाते हैं जो प्रियतमा में ही साक्षात ब्रह्म या परमपुरुष की कल्पना करने लगता है। यहां तो ये स्वयं को ही प्रेयसी रूप नारी समझकर पुरुषरूप प्रिया के प्रति विरह भाव की अभिव्यक्ति करने लगते हैं।

कुछ विद्वान भक्ति, दर्शन, प्रकृति, राज–प्रशस्ति, वीर तथा ज्योतिष आदि विषयों से संबद्ध काव्यसृजन करने वालों को रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत ही गिनते हैं। इसी युग में ''रीति पद्धति से मुक्त रहकर काव्यकर्म करने वाले ऐसे बहुत से कवि भी थे जिन्होंने अपनी कविता का वर्ण्य–विषय रीतिमुक्त कवियों से भिन्न तथा प्रेम के स्थान पर भक्ति, प्रकृति, प्रशस्ति, नीति को बनाया। यह काव्यधारा बंधन या परिपाटियों से मुक्त थी। वास्तव में ये कवि स्वच्छंद प्रवृत्ति के और उन्मुक्त चेतना के कवि थे। इन कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि को अनुपयुक्त कहकर ललकारा।

रीतिमुक्त कवि संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा में बंधकर लिखना नहीं चाहते थे। ये किसी भी रीति पर चलकर या परिपाटी का पालन कर काव्यसृजन करने को काव्यप्रतिभा के बंधन की तरह मानते थे। इसी काव्यप्रतिभा को बांधने के विरूद्ध इन्होंने विद्रोह भाव की अभिव्यक्ति की। इनकी इसी विद्रोही प्रतिक्रिया ने उनकी अभिव्यंजना शैली को प्रखर और मुखर भी किया। रीतिमुक्त काव्य रीतिबद्ध या रीतिकाव्य की तरह आत्मप्रदर्शन परक, वस्तु प्रधान अथवा चमत्कार प्रधान न होकर आत्माभिव्यक्ति एवं व्यक्ति प्रधान काव्य कहा जा सकता है। डॉ. महेंद्र कुमार ने लिखा भी है– ''रीतिमुक्त काव्य के अंतर्गत प्रेम का अर्थ मन का उत्कट उन्मुखीभाव है जिसकी अभिव्यक्ति करने के लिए प्रेमी समस्त मर्यादाओं का उल्लंघन कर डालता है। रीतिकाव्य के समान मर्यादाभीत विलासी के इंद्रियसुख की आतुर अभिलाषा नहीं जिसे वह बहुत बड़ा मूल्य देकर क्रय करना तो चाहता है पर अपनी नैतिक प्रतिष्ठा पर आंच न आने देने के उद्देश्य से समाज की दृष्टि से ओझल भी रहना चाहता है।''

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि

इस युग में इस दरबारी वातावरण से दूर रहकर निजी प्रेम की पीर को गाने वाले स्वच्छंद चितेरे कवि भी थे जो रीतिमुक्त कवि कहलाए। इन रीति इतर कवियों ने भक्ति, नीति, वीरता, वैद्यक–चिकित्सा तथा ज्योतिष आदि विषयों पर भी काव्य–सृजन किया। इन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और न रीतिकालीन परंपराओं को ही निभाया। इस प्रकार के दबाव से पूर्णतः स्वतंत्र रहकर विशुद्ध श्रृंगार की आत्मानुभूतिपरक कविता लिखी। विरक्ति–भावना और प्रकृति–चित्रण से संबंधित मुक्त काव्य रचने वाले ये रीतिमुक्त कवि निज प्रेम की पीड़ा को गाते–सुनाते रहे। इस तरह के कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा एवं द्विजदेव जाने जाते हैं।

इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूप सौंदर्य पर रीझने और सौंदर्य के मार्मिक संवेदनात्मक वर्णन करने की रही है। प्रेम में विरह पक्ष की महत्ता एवं विशिष्टता को इन सभी ने स्वीकृति दी है। निजी प्रेम की अनुभूति को वैयक्तिकता का स्वर देकर मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करना इनकी विशिष्टता रही है।

टिप्पणी

रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं

1. **रीतिस्वच्छंदता**– इस धारा के कवि भावुक थे तथा उन्होंने अपने को किसी भी काव्यशास्त्रीय परंपरा से आबद्ध नहीं रखा। काव्यशास्त्र का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था पर फिर भी उन्होंने अलंकार, छंद, नायक–नायिका भेद, रीति या वक्रोक्ति आदि सिद्धांतों की पद्धति विशेष का अनुकरण नहीं किया। उनका विश्वास अनुभूति की मौलिक प्रस्तुति में रहा। उन्होंने रीतिपरिपाटी से स्वयं को पूर्णतः मुक्त रखा। ये लक्षणों के फेर में नहीं पड़े तथा निजी प्रेम के उच्छवासों को ही काव्यबद्ध करते रहे और इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

2. **स्वच्छंद प्रेम**– जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, इन कवियों के जीवन एवं काव्य में स्वच्छंद प्रेम या रोमांसिकता की प्रधानता है। स्वच्छंद प्रेम का अर्थ यह है कि इन्होंने विशुद्ध सौंदर्यानुभूति की प्रेरणा से जाति समाज एवं धर्म के बंधनों की अवहेलना करते हुए ऐसी नायिकाओं से प्रणय संबंध स्थापित किया था, जो अन्य जाति से संबंधित थीं। ऐसी स्थिति में इन्हें प्रेम के क्षेत्र में पर्याप्त साहस, संघर्ष एवं त्याग का परिचय देना पड़ा। इन्होंने प्रेम के क्षेत्र में सत्यता, गंभीरता एवं औदात्य का परिचय दिया। यथा–

   एक सुजान के आनन पै, कुरबान जहां रूप जहां को।

   जानि मिलै तो जहान मिलै, नहीं जान मिलै तो जहान कहां कौ।

3. **प्रेरणा स्रोत एवं काव्य–प्रयोजन**– प्रस्तुत परंपरा के कवियों ने सामान्यतः स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति की प्रेरणा से काव्य–रचना की है, इस क्षेत्र में उन्होंने किसी बाह्य निर्देश को स्वीकार नहीं किया है। यथा घनानंद ने कहा भी है–

   लोग हैं लागि कवित्त बनावत

   मोहिं तो मोरे कवित्त बनावत।

   वस्तुतः इस परंपरा के कवि सहजानुभूति से प्रेरित काव्य को सच्चा मानते थे। चेष्टापूर्वक रचित काव्य का तो उन्होंने उपहास किया है। इससे स्पष्ट है कि कवियों ने सच्ची कविता के मर्म को समझकर सहजानुभूति एवं सच्ची प्रेरणा के महत्व को स्वीकार किया था तथा यही कारण है कि हम इनके काव्य में काव्येतर तत्वों के स्थान पर अनुभूति की प्रधानता पाते हैं।

4. **नारी सौंदर्य के प्रति आस्था**– इन कवियों ने नारी के व्यक्तिव एवं सौंदर्य को आस्था की दृष्टि से देखते हुए उसका चित्रण अत्यंत स्वच्छ, सूक्ष्म एवं उदात्त रूप में किया है। उन्होंने परंपरा के अनुसार नखशिख की स्थूल परिपाटी का निर्वाह करने के स्थान पर उनके सौंदर्य के प्रभाव की व्यंजना की है। यथा–

   छवि को सदन, गोरो बदन रुचिर भाल

   रस निचुरत मृदु मीठी मुस्क्यानि में।

5. **विरह की प्रधानता**– इनमें से अधिकांश कवियों का प्रेमपूर्ण जीवन प्रायः प्रेयसी की मधुर स्मृति में ही व्यतीत हुआ था। सामाजिक परिस्थितियों की विषमता के कारण वे अपने जीवन में संयोग की घड़ियां प्राप्त करने में असफल रहे। यही कारण है कि उनके काव्य में विरह वेदना की अभिव्यक्ति अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक रूप में हुई है। यथा–

अती सूधो सनेह को मारग है, यहां नैक सयानप बांक नहीं
यहां सूधो चलै तजि आपनपौ, झिझकें कपटी ते निसांक नहीं।

टिप्पणी

6. **वैयक्तिकता**– हिंदी साहित्य में कदाचित ये पहले कवि हैं, जिन्होंने लौकिक प्रेम की वैयक्तिक अनुभूतियों को निःसंकोच रूप में व्यक्त किया है। इन्होंने अपनी प्रेम कहानी सुनाने के लिए न तो राधा–कृष्ण की भक्ति का आवरण उधार लिया और न ही किसी रत्नसेन या पद्मावती का आश्रय ग्रहण किया। साथ ही अपनी प्रेयसियों को स्वतः संबोधित करने का साहस भी किया है। वस्तुतः ऐसी वैयक्तिकता आगे चलकर छायावादी कवियों में ही प्राप्त होती है।

7. **भावप्रवणता**– रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि भावप्रवण थे। प्रेम की पीड़ा को स्याही बनाकर अपने हृदय के उद्गारों को लिखना इनकी रूचि बन गई थी। भाव विभोर होकर ये ऐसे प्रवाहित होने लगते हैं कि अभिव्यंजना के सभी उपकरण स्वतः ही भावों को गति प्रदान करने के लिए उपस्थित होते चले जाते हैं। भावावेग इनकी कविता की प्रेरणा तो बनता ही है, साथ ही हेतु भी बन जाता है। विषम प्रेम के प्रति आसक्ति इन प्रेमियों के तन–मन में पूरे प्राणपण में मौजूद है।

8. **अभिव्यंजना सौष्ठव**– रीतिमुक्त कवियों का भावावेग अभिव्यंजना के सभी उपकरणों को अपने अनुकूल ढालकर सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावी तो बनाता ही है साथ ही आलंकारिकता तथा कृत्रिमता आदि दोषों से मुक्त रखता है। भाषा को अलंकारों, लाक्षणिक प्रयोगों तथा लयात्मक विधानों से सज्जित कर ये कवि अभिव्यंजना–शिल्प के नये आयाम खोलते हैं। सहज स्वाभाविक तथा संतुलित शब्द प्रयोग, अपेक्षानुसार अप्रस्तुत विधान एवं चमत्कार पैदा करती वाग्विदग्धता ही मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति का कारण बनती है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग लोकजीवन से जोड़ता है तो उक्ति–वैचित्र्य कविता में कौतूहल पैदा करता है।

   इन कवियों ने शब्दों का परिमार्जित प्रयोग किया। समास वक्रता इसमें नहीं है। मोहक शब्द, वक्रता और उसकी लोच ध्वनिगत आभा तथा अर्थगत व्यंजना, सभी मिलकर भाषा को अद्भुत बना देते हैं। इनकी मुहावरेदार भाषा और शब्दों की बारीक अभिव्यक्ति क्षमता वास्तव में अतुलनीय है। नाद, संगीत, लय का प्रवाह इन्होंने विशेष ध्यान रखा है। इसी प्रकार उक्ति–वैचित्र्य काव्य भंगिमा को तथा उसकी व्यंजकता को स्पष्ट करता है। सरल, मनोहारी तथा रंग वैभव से संपन्न बिंबयोजना इनकी कलात्मकता का परिचय देती है।

   वस्तुतः कह सकते हैं कि रीतिमुक्त काव्यधारा के इन भावप्रवण कवियों ने अपने काव्य को पूरी ईमानदारी से, हृदयगत तल्लीनता एवं भावगत सच्चाई से प्रभावी बनाया है। भाव तथा कला की दृष्टि से यह काव्यधारा पूरी तरह से एक विशिष्ट काव्यधारा बनकर उभरती है। स्वानुभूति की तीव्रता, प्रेम की अभिव्यक्ति, विरह का आधिक्य, भाषा का विचित्र सौष्ठव, शब्दों का अर्थगत सौंदर्य, लाक्षणिक प्रयोग, सहज एवं मार्मिक बिंबयोजना सभी मिलकर इन काव्यधारा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. रीति को काव्य की आत्मा किसने कहा?

(क) आचार्य वामन ने (ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने

(ग) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने (घ) डॉ. नरेंद्र ने

4. इनमें से क्या रीतिकालीन काव्यधारा नहीं है?

(क) रीतिबद्ध (ख) भक्ति रीति

(ग) रीतिसिद्ध (घ) रीतिमुक्त

2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)

2.5 सारांश

भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में भक्ति की परंपरा सुदीर्घ काल से चली आ रही है। भक्ति का प्रतिपादन महाभारत और गीता में स्पष्ट रूप से हुआ है। महाभारत के शांति पर्व तथा भीष्म पर्व में नारायणोपाख्यान का वर्णन है। वस्तुतः पौराणिक धर्म पूर्ववर्ती भागवत धर्म का ही एक ऐसा नवपरिवर्तित रूप है जिसमें एक ओर भक्ति भावना को प्रमुख स्थान दिया गया। दूसरी ओर उनमें ऐसे तत्वों का समावेश हुआ जिससे वह जैन और बौद्ध धर्म की प्रतिस्पर्धा में टिक सके। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के स्वरूप का सांगोपांग विवेचन किया गया है। शांडिल्य भक्ति सूत्र रचना काल की दृष्टि से इससे भी पूर्व ठहरता है, पर उसमें विवेचन संबंधी स्पष्टता नहीं। जहां भक्ति के सैद्धांतिक स्वरूप का विकास सूत्र ग्रंथों में हुआ, वहां उसके व्यावहारिक रूप के विकास का प्रयत्न पुराण साहित्य के द्वारा संपन्न हुआ।

आचार्य शुक्ल ने पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल की संज्ञा से भी अभिहित किया है जो कि प्रस्तुत काल की केवल एक ही प्रवृत्ति को ध्वनित करता है, जबकि सच यह है कि इस काल में भक्ति की धारा के साथ–साथ काव्य की अन्य अनेक परंपराएं भी पर्याप्त सक्रिय रही हैं। शुक्ल जी ने ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, कृष्ण भक्ति तथा रामभक्ति की धाराओं का उल्लेख तो किया है किंतु उन्होंने रसिक भक्ति की एक सशक्त काव्यधारा की उपेक्षा कर दी है। हमारा यह विश्वास है कि समूचे मध्यकाल में काव्य की समान धारायें प्रवाहित होती रही हैं। इस काल में धर्म, राज्य तथा लोकाश्रयों में साहित्य सृजन की प्रक्रिया बराबर चलती रही। भक्ति की धारा के अतिरिक्त मैथिली गीत परंपरा, ऐतिहासिक रास काव्य परंपरा, चरित काव्य परंपरा, ऐतिहासिक मुक्तक परंपरा, शास्त्रीय मुक्तक परंपरा, रोमांटिक कथा काव्य परंपरा और स्वच्छन्द प्रेम काव्य

परंपरा की वेगवती काव्यधारा में मध्यकालीन साहित्य को उर्वर बनाती रही है, जिन्हें किसी भी दशा में भक्ति की धारा से क्षीण नहीं कहा जा सकता है।

टिप्पणी

हिंदी–रीति निरूपण–परंपरा का आरंभ कृपाराम की 'हिततरंगिणी' से ही माना जाना चाहिए, क्योंकि इसकी रचना के समय तक हिंदी भाषा और उसके साहित्य में इस विषय के लिए अपेक्षित प्रौढ़ता ही नहीं आ गयी थी, अपितु उसके उपयुक्त वातावरण भी उपस्थित हो गया था। इस समय तक वैष्णव धर्म के व्यापक प्रभाव और प्रसार के परिणामस्वरूप निर्गुण ब्रह्मवादियों द्वारा निरूपित जटिल दार्शनिक सिद्धांतों तथा कठोर साधना की अपेक्षा भक्ति की सरल पद्धति के प्रति लोग अधिक आकृष्ट होने लगे थे और इसे समझने–समझाने का प्रयत्न बराबर हो रहा था।

इस युग में रीति संबंधी ग्रंथ तो अधिक लिखे ही गए साथ ही इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रंथ रचने की रही। फिर शृंगार रस के उदाहरण भी लक्षण के रूप में ही प्रस्तुत किए गए। अतः ये भी रीतिबद्ध काव्य से अधिक दूर नहीं रहे। रीतिनिरूपण की यह प्रवृत्ति भक्तिकाल में ही जन्म ले रही थी। यद्यपि यह नाम भी पूर्णतः उचित नहीं है। इसका कारण है कि रीतिकाल के कुछ कवि इस 'रीति' से अलग रहे। आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर जैसे कवियों पर न तो काव्यशास्त्र का प्रभाव रहा और न ही इन्होंने रीति निरूपक काव्य ग्रंथों की रचना की। इसी प्रकार सूदन, जोधराज जैसे वीर रस के कवि भी इस नाम के अंतर्गत नहीं आ पाते। किंतु इन कवियों को रीतिमुक्त अथवा रीतिइतर श्रेणी में रखा जा सकता है। तथापि 'रीतिकाल' नाम 'अलंकृत काल', 'कला काल' तथा 'शृंगार काल' कहने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **सगुणोपासक** : ईश्वर का प्रतीक बनाकर उसकी उपासना करने वाले।
- **निर्गुणोपासक** : ईश्वर के निराकार स्वरूप की उपासना करने वाले।
- **आश्रयदाता** : सहारा/शरण देने वाला।
- **एकेश्वरवाद** : देवी–देवताओं, अवतारों से इतर एक ईश्वर में विश्वास वाली अवधारणा।
- **अंधविश्वास** : बिना किसी आधार के विवेकरहित विश्वास।
- **कालखंड** : समय का एक भाग।
- **परिपाटी** : परंपरा।
- **रक्तरंजित** : खून से सनी।

2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किस प्रकार किया है?
2. भक्तिकालीन राजनैतिक परिस्थितियां क्या थीं?

टिप्पणी

3. भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा से क्या आशय है?
4. सूफी मत के सिद्धांत क्या हैं?
5. रीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए दो रीतिकालीन कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाल की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए।
2. भक्तिकाल की विभिन्न प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
3. भक्तिकाल की काव्यधाराओं एवं विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
4. रीतिकाल की पृष्ठभूमि अंकित करते हुए इस काल की प्रवृत्तियों का अवलोकन कीजिए।
5. रीतिकाल की विविध काव्यधाराओं एवं विशिष्टताओं का विश्लेषण कीजिए।

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, 'कबीर की विचारधारा', साहित्य निकेतन, कानपुर।
2. डॉ. विजेन्द्र स्नातक, 'कबीर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'सूर साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. गोविन्द राय शर्मा, 'सूर की काव्य साधना', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. रामचंद्र शुक्ल, 'गोस्वामी तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
6. रामनरेश त्रिपाठी, 'तुलसीदास और उनका काव्य', राजपाल एंड संस, दिल्ली।
7. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', बिहारी रत्नाकर, लोकवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'भूषण ग्रंथावली', वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
9. परमानंद सुहाने, 'शिवराज भूषण', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

इकाई 3 भक्तिकालीन कवि कबीर, सूर और तुलसी : समीक्षात्मक अध्ययन

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कबीर
- 3.2.1 कबीर की भक्ति भावना
- 3.2.2 कबीर की रहस्य साधना
- 3.2.3 कबीर का दर्शन एवं प्रासंगिकता
- 3.2.4 निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान

3.3 सूरदास
- 3.3.1 सूर की भक्ति भावना
- 3.3.2 भ्रमरगीत परंपरा एवं सूर
- 3.3.3 कृष्ण काव्यधारा में सूर का स्थान

3.4 तुलसीदास
- 3.4.1 तुलसीदास की भक्ति भावना एवं दार्शनिक चेतना
- 3.4.2 तुलसीदास के काव्य में समन्वय भावना
- 3.4.3 राम काव्यधारा में तुलसी का स्थान

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

भक्तिकाल में निर्गुण उपासक के रूप में कबीर का स्थान अप्रतिम है। कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे वे कहते हैं–''मसि कागद छुओ नहीं, कलम गहयो नहीं हाथ'। कबीर बहुत ज्ञानी और बहुश्रुत व्यक्तित्व वाले थे। वे मस्तमौला तथा फक्कड़ संत थे। बचपन से ही वे निडर, विद्रोही तथा क्रांतिकारी और समाज सुधारक थे। डॉ. हजारी प्रसाद लिखते हैं– ''वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव में अक्खड़, आदत से फक्कड़, भक्त के समान गिरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल से साफ , दिमाग से तंदुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृष्य तथा कर्म से वंदनीय थे।''

सूरदास कृष्ण–भक्त कवियों के सिरमौर हैं। उन्होंने हिन्दी भक्ति–साहित्य में सखाभाव को स्थापित करने का कार्य सम्पन्न किया। उनकी भक्ति–भावना में दैन्य का समावेश कम है, बल्कि वे अपने आराध्य के सामने दृढ़ता से खड़े होते हैं और कभी–कभी तो हठ भी कर जाते हैं। सूरदास ने प्रेम, श्रृंगार और सौन्दर्य के चित्रण में भी भक्ति को समाविष्ट करते हुए उसे नया आयाम प्रदान किया है। बाबू गुलाब राय ने लिखा है कि ''उनके विनय के बहुत से पदों में चुनौती की सी ध्वनि है, 'कै प्रभु हारि मानिकै बैठहु, कै करहु विरद सही।' वे अपने भगवान से खुलकर बात करते हैं, 'पतित

पावन हरि विरद तुम्हारौ कौने नाम धर्‌यो/तुम कब मोसो पतित उधार्‌यौ/काहै को प्रभु विरद बुलावत बिन मसकत के तार्‌यो।' इस अक्खड़पन में हठवाद नहीं है, वरन् निजी सम्बन्ध का विश्वास और शरणागत भाव की दृढ़ता है, 'नाहिन मै काचो कृपानिधि करौ कहा रिसाइ/सूर तबहूं न द्वार छांड़ै हारि हो कढ़ाइ।' अक्खड़पन के साथ कहीं–कहीं विरद बिनु करने की धमकी भी है और अपनी दृढ़ता के बलबूते लड़ने की भी बात कही गयी है।''

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में अपने समाज का दृष्टिपात किया। तत्कालीन समाज के विशृंखलित और जर्जरित रूप को देखकर वे अत्यधिक व्याकुल हो उठे। उन्होंने देखा कि समाज में उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग के बीच एक बहुत बड़ी खाई बन चुकी है। उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार कर रहे हैं और निम्न जाति के लोगों को नीच और शूद्र कहकर धिक्कारते थे और उनसे घृणा करते थे। इस सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए तुलसी जी ने राम को निषाद का मित्र सिद्ध कर दिखाया है। राम शबरी के जूठे बेर खाते हैं, वशिष्ठ और वानरों तथा भालुओं (जाति विशेष) को अपने सहायक बनाते हैं। क्षत्रिय जातियों में श्रेष्ठ राम और भरत, ब्राह्मणों में वशिष्ठ मुनि तथा शूद्र जातियों में निषाद तथा केवट को गले लगाते हैं।

इस इकाई में हम कबीर, सूर और तुलसी का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कबीर की भक्ति भावना, रहस्य साधना एवं प्रासंगिकता आदि का आकलन कर पाएंगे;
- सूरदास की भक्ति भावना समझते हुए कृष्ण काव्यधारा में उनका स्थान रेखांकित कर पाएंगे;
- तुलसी के दर्शन, काव्य सौष्ठव, समन्वयात्मक दृष्टिकोण आदि की विवेचना कर पाएंगे।

3.2 कबीर

कबीर भक्तिकालीन संत काव्यधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वह एक महान संत, सच्चे समाज सुधारक, युग नेता, महामानव तथा महान कवि थे। निरक्षर होते हुए भी उन्होंने उच्च कोटि के काव्य की रचना की तथा सामाजिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। वह संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं अतः संत काव्य की सभी विशेषताएं उनके काव्य में सहज रूप से देखी जाती हैं।

• जीवन–वृत्त एवं कृतित्व

आज भी कबीर का जीवन–वृत्त अंधकार से भरा है। इस महान संत ने अपने विषय में कोई स्थूल सूचना नहीं दी। 'कबीर' के जन्म के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर सिकंदर लोधी के समकालीन थे। कबीर जी के लिए यह पद प्रसिद्ध है–

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ भए।
जेठ सुदी बरसायत की, पूरनमासी प्रगट भए।।
घन गरजे दामिनि दमके, बूंदे, बरसे झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिलो, तहं कबीर भानु प्रकट भए।

कबीर का जन्म सम्वत् 1455 सन् 1398 ई. के ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को सोमवार के दिन हुआ। कई ज्योतिषों की गणना के आधार पर यह दिन 1455 को न पड़कर 1456 को पड़ता था। कुछ कवि कबीर जी का जन्म 1456 को मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान कबीर का जन्म वर्ष 1455 को मानते हैं।

जिस तरह कबीर के जन्मकाल की जानकारी निश्चित नहीं थी, उसी प्रकार उनका जन्म किस स्थान पर हुआ, इसके बारे में भी निश्चित जानकारी नहीं थी। एक मत के अनुसार कबीर का जन्म काशी में हुआ दूसरे मत के अनुसार मगहर तथा तीसरे मत के अनुसार उनका जन्म जिला आजमगढ़ के बेलहरा गांव में हुआ था। कुछ विद्वानों के अलग–अलग मत थे। एक मत के अनुसार कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ जो लोक समाज के भय से कबीर को काशी के लहरतारा नामक सरोवर की सीढ़ियों पर फेंककर चली गई। नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा ने कबीर जी का पालन–पोषण किया। कुछ कबीरपंथियों ने कबीर के जन्म के साथ अनेक घटनाएं जोड़ी हुई हैं। कबीर का विवाह हो चुका था तथा उनकी की पत्नी का नाम लोई था। कबीर का एक पुत्र तथा एक पुत्री थी। पुत्र का नाम कमाल तथा पुत्री का नाम कमाली था। कमाल के बारे में दोहा भी लिखा है–

''बूड़ा वंश कबीर का उपज्यो पूत कमाल।
हरि कौ सुमिरन छाड़ के घर ले आया माल।।''

कबीर के गुरु का नाम रामानंद था तथा वे सूफी संत शेख तकी के संपर्क में भी आए इसीलिए उनके काव्य पर सूफी मत का प्रभाव भी देखा जा सकता है। कबीर की आयु 120 साल की थी, अतः 1575 में उनका देहांत हो गया। एक विद्वान ने लिखा भी है–

संवत पंद्रह सौ औ पांच मो, मगहर कियो गौन।
अगहन सुदी एकादसी मिलौ पौन में पौन।

रचनाएं–पहले बताया जा चुका है कि कबीर जी पढ़े–लिखे नहीं थे अर्थात् वह निरक्षर थे। निरक्षर होते हुए भी उनके शिष्यों ने कबीर वाणी का संकलन किया। कबीर जी की एक प्रामाणिक रचना है–'बीजक'। इसके तीन भाग हैं–साखी, सबद तथा रमैणी। कुछ कबीरपंथियों और विद्वानों ने कबीर द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 57 से 61 तक मानी है।

• साहित्यिक विशेषताएं

कबीर मूलतः संत कवि थे। उनके काव्य का लक्ष्य है– समाज सुधार। इसलिए उन्होंने हमेशा मानव के कल्याण के लिए कार्य किया। पढ़े–लिखे न होने पर भी वे बहुगुणी थे। सत्संगी प्रवृत्ति के होने के कारण वे देश प्रदेश का भ्रमण करते रहते थे। इनके काव्य की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(क) निर्गुण तथा निराकार ईश्वर में आस्था–कबीर निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म के उपासक हैं। उनका ब्रह्म सृष्टि के कण–कण में बसता है। वह न केवल

टिप्पणी

अजन्मा है बल्कि निर्विकार भी है। उसे मंदिर तथा मस्जिद में खोजने की आवश्यकता नहीं है वह सदा हमारे हृदय में निवाास करता है। जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है परंतु माया से ग्रस्त होने के कारण हम उसे जान नहीं पाते और बाहर खोजने लगते हैं। एक स्थल पर वह कहते भी हैं–

कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूढै बन माहिं।
ऐसे घट में पीव हैं, दुनिया जानै नाहिं।।

कबीर ने ब्रह्म की साधना की। उनका साक्षात्कार भी किया। उन्होंने बार–बार दृढ़तापूर्वक कहा कि जीवन का लक्ष्य ब्रह्म के बारे में विचार करना है परंतु ब्रह्म विचार कोई सहज कार्य नहीं है। जिस पर गोविंद की कृपा होती है, वही इस प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है। परंतु ब्रह्म क्या है यह कहना बड़ा कठिन है। अतः कबीर ने उसको गूंगे का गुड़ कहा है। ब्रह्म के संबंध में वह अपने अद्वैतवादी विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तत् कहयो ज्ञानी।''

(ख) गुरु का महत्व–कबीर ने अपनी वाणी में गुरु को अत्याधिक महत्व प्रदान किया है। वे गुरु को परमात्मा से अधिक महत्व देते हैं। कारण यह है कि गुरु ही शिष्य को परमात्मा से मिलाता है। कवि के विचारानुसार सद्गुरु की महिमा असीम है। वह हमारा अत्यधिक उपकार करता है, हमें दिव्य नेत्र देता है और उस ईश्वर के दर्शन कराता है। यदि संपूर्ण पृथ्वी को कागज बना लिया जाए, वन की लकड़ी को लेखनी और सातों समुद्रों को स्याही तो भी गुरु के गुण नहीं लिखे जा सकते। एक स्थल पर वह कहते भी हैं–

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार।।
सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय।
सात समुंद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाए।।

कबीर का कहना है कि गुरु से प्राप्त ज्ञान के बिना सारी साधनाएं व्यर्थ हैं। गुरु ही शिष्य को सच्चा मार्ग दिखाता है। इसलिए कवि गोविन्द की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्व देता है। यदि गुरु और गोविन्द दोनों सामने खड़े हों तो किसके चरण स्पर्श किए जाएं, कवि इसका निर्णय नहीं कर पाता। अंत में कवि गुरु को ही गोविन्द की अपेक्षा अधिक महत्व देता हुआ कहता है–

गुरु गोविद दोऊ खड़े, काकै लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियौ मिलाय।।

(ग) बहुदेववाद तथा अवतारवाद का खण्डन–कबीर दास ने निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन किया और बहुदेववाद तथा अववारवाद का खंडन किया। वह मूर्ति पूजा पर विश्वास नहीं करते थे। यह तत्कालीन युग की मांग भी थी। उस समय के मुस्लिम शासक मूर्ति भंजक तथा एकेश्वरवादी थे। संभवतः इसलिए कबीर ने हिंदू–मुस्लिम की एकता स्थापित करने के लिए जहां एक ओर

टिप्पणी

बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध किया वहां दूसरी ओर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया। वे ईश्वर को सभी देवताओं से ऊपर मानते थे–

अक्षय पुरुष एक पेड़ हैं निरंजन वाकी डार।

तिरदेव शाखा भए, पात भया संसार।।

परन्तु वैष्णव धर्म के प्रति कबीर की श्रद्धा और पूर्ण सहानुभूति थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इसकी प्रशंसा की है और शाक्तों की अपेक्षा वैष्णवों को श्रेष्ठ माना है। परन्तु उन्होंने वैष्णव धर्म में व्याप्त बहुपदों का खण्डन भी किया है और सच्चे वैष्णव आचरण की ओर उनका ध्यान दिलाया। यही कारण है कि कबीर वेश धारण तथा छापा तिलक को व्यर्थ मानते थे–

बैसनो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक,

छाया तिलक बनाई करि दग्ध्या लोक अनेक।

(घ) बाह्य आडंबरों का विरोध–कबीर ने हिन्दुओं के धार्मिक आडंबरों तथ पाखण्डों का खंडन करने वाले अनेक पद लिखे हैं। वे अपने भक्तों को यह संदेश देते हैं कि वे पाखण्ड से दूर रहकर आराध्यदेव राम की भक्ति करें और गुरु की सेवा करें परन्तु उनका राम निर्गुण, निराकार हैं। वह सगुण नहीं हैं। वे कहते भी हैं–

पूजहु राम निरंजन देवा।

हरि का नाम न लेहि गंवारा फिर क्या सौचे बारम्ब।

इस दृष्टि से कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बाह्य आडंबरों का डटकर सामना किया। एक ओर कबीर ने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा, व्रत आदि का खण्डन किया तो मुसलमानों के रोजा, नमाज या हज की कटु आलोचना की। मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए उन्होंने कहा–

पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।

ताते वह चाकी भली, पीस खाय संसार।।

इसी प्रकार से वे मुसलमानों को फटकारते हुए कहते हैं–

कांकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, का बहिरा हुआ खुदाय।।

(ङ) जाति–पांति का विरोध–यही नहीं, कबीर ने उस भारतीय समाज की भी खबर ली जो वर्ण व्यवस्था के दलदल में फंसा हुआ था। तत्कालीन ब्राह्मण स्वयं को उच्च जाति का मानते थे और शूद्रों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। कबीर ने मानव धर्म की स्थापना की तथा जाति–पांति और वर्ग भेद का विरोध किया। उनका विचार था कि संसार में व्याप्त वर्ग भेद मानव कल्याण के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। दूसरा, कबीर स्वयं निम्न जाति के थे और उन्होंने समाज में निम्न जाति के लोगों का अपमान होते देखा था। इसलिए वे बार–बार वर्ण व्यवस्था का विरोध करते दिखाई देते हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

जाति–पांति पूछे नहिं कोई।

हरि को भजे सो हरि का होई।।

टिप्पणी

कबीर सभी मनुष्यों को ईश्वर की संतान बताते हुए कहते हैं कि भगवान की दृष्टि में कोई छोटा–बड़ा नहीं, सब समान हैं। एक स्थल पर वह कहते हैं–

एक बूंद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जाति थे सब उतपना, कौन बाम्हन कौन सूदा।।

इस संदर्भ में डॉ. हरिहर त्रिवेदी तथा डॉ. मण्डन त्रिवेदी लिखते भी हैं–''कबीर तत्कालीन विशृंखलित भारतीय समाज को एकता के सूत्र में पिरो कर सामाजिक क्रांति द्वारा भारतीय समाज की संरचना करना चाहते थे। उन्होंने स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुता का उपदेश देकर भारतीय समाज को क्रांतिकारी चेतना प्रदान की थी। वस्तुतः क्रांतिकारी कबीर ने मानसिक तथा आध्यात्मिक क्रांति के माध्यम से क्रांति की चेतना का स्वर गुंजरित किया।''

(च) नाम स्मरण पर बल–कबीर ने अपनी वाणी में नाम स्मरण पर विशेष बल दिया है। उनके विचारानुसार नाम–स्मरण से ही ईश्वर को पाया जा सकता है। कवि का कथन है कि लोग दुख में भगवान का स्मरण करते हैं परंतु सुख में स्मरण नहीं करते। यदि सुख में भगवान का स्मरण कर लिया जाए तो दुख होगा ही नहीं। वह मन की एकाग्रता के साथ–साथ नाम स्मरण पर भी बल देते हैं। उनका कहना है कि जो साधक हाथ में माला फेरते हैं और मुख से राम नाम लेते हैं उनका मन तो दसों दिशाओं में भटकता रहता है। यह प्रभु–स्मरण नहीं कहा जा सकता। कवि यह भी कहता है जब तक शरीर रूपी दीपक मे प्राण रूपी बत्ती बुझ नहीं जाती तब तक निडर होकर प्रभु के नाम का स्मरण करना चाहिए। जब आयु रूपी तेल घट जाएगा तो उस समय मानव को लंबी नींद सोना ही पड़ेगा–

दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुखः काहे को होय।
कबीर निर्भय राम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटै बाती बुझे, तब सोचो दिन राति।।

कबीर का यह भी कहना है कि जब साधक एकाग्र मन से नाम की साधना करता है तो वह परमात्मा का रूप धारण कर लेता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि साधक का निजी व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। नाम–स्मरण करते–करते मैं भी तू का रूप धारण कर लेता है। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
वारि फेरि बलि गई, जित देखूं तित तूं।।
लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

(छ) रहस्यानुभूति–कबीर हिन्दी साहित्य के महान रहस्यवादी कवि कहे जाते हैं। उनका रहस्यवाद उस ब्रह्म की जिज्ञासा का ही स्वरूप है। कवि ने विरहिणी आत्मा का रूपक बनाकर आत्मा तथा परमात्मा के संबंधों पर प्रकाश डाला है। आत्मा रूपी प्रेमिका परमात्मा रूपी प्रिय के लिए व्याकुल है। वह अपने प्रियतम से मिलना चाहती है, परंतु सांसारिक मोह–माया के कारण मिल नहीं पाती। वह

दिन–रात उसी को प्राप्त करने के लिए तड़पती रहती है। कारण यह है कि आत्मा को अज्ञान और अविद्या ने ढंक रखा है। जब आत्मा पर से अज्ञान और अविद्या का पर्दा उत्तर जाता है तब जीवात्मा परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है। दोनों में कोई अंतर नहीं रहता। कबीर कहते हैं–

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यहु तत कहौ गियानी।।
हेरत हेरत हे सखी, सहया कबीर हेराइ।
बूंद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाइ।।

कबीर के रहस्यवाद के बारे में डॉ. राम कुमार वर्मा लिखते हैं–''कबीर का रहस्यवाद अपनी विशेषता लिए हुए है। वह एक ओर तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद के क्रोड में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी सिद्धांतो को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमानों के सूफी सिद्धांतो में रहे हैं और वह प्रारंभ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस मे दूध–पानी की तरह मिल जाएं। इसी विचार के वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से संबंध रखते हुए अपने सिद्धांतों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्वैतवाद और सूफी मत की गंगा–जमुनी धारा एक साथ बहा दी।''

(ज) सदाचार पर बल–कबीर ने अपनी वाणी में सहज, सरल तथा शुद्ध जीवन जीने पर बल दिया है। पहले बताया जा चुका है कि वे बाह्य आडंबरों और पाखंडों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने मन की पवित्रता और सदाचारी जीवन को अधिक महत्व दिया है। उन्होंने अपनी साखियों में बार–बार संदेश दिया कि हमें दूसरों के कल्याण के लिए ही कर्म करना चाहिए। वे सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक धरातल पर साम्य की प्रतिष्ठा चाहते थे। उन्होंने अपने काव्य में व्यंग्य का सहारा लेकर हिंदुओं तथा मुसलमानों को फटकार लगाई है। कबीर के साहित्य में हमें सौंदर्य नहीं मिलता लेकिन एक महान संदेश मिलता है। यह संदेश मानव जीवन के कल्याण से संबधित है। वे कहते भी हैं–

जो तो को कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल को फूल हैं, बाको हैं तिरसूल।।
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुं सीतल होय।।

इस संदर्भ में डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं–''कबीर का समाज सुधारकों में प्रथम स्थान है। उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान को सुंदर रूप दिया है। उनके उपदेशों में विश्वास है, शांति है तथा जीवन है।''

(झ) भक्ति–भावना और प्रेम–भावना– कबीर निर्गुण–निराकार ईश्वर के सच्चे भक्त थे। अतः उनकी भक्ति–निर्गुण ईश्वर की भक्ति है। कवि ने अहंकार, क्रोध आदि को त्यागकर ईश्वर का नाम स्मरण करने का उपदेश दिया। उनकी भक्ति–भावना मे नाम–स्मरण, कीर्तन, श्रवण, दास्य भाव, आदि सभी स्थितियां देखी जा सकती हैं। वह बार–बार कहते हैं–

''निर्गुण राम जपहुं रे भाई, अविगत की गति लखि न जाई।''

एक स्थल पर वह कहते हैं–

पूजहु राम एक ही देवा
सांचा नावंणु गुरु की सेवा।।
अंतरि मैल जो तीरय हावै तिन बैकुण्ठ न जाना।
लोक पतीत कछू ना होवै नाहीं राम अचाना।।
जल के मज्जनि जो गति होवै नित नित मेंढ़क हावै।
दिवस न रैनि नेह नहिं सासत तहां बसै निंरकारा।
कहै कबीर नर तिसहिं घियावहु बावरिया संसारा।।

इनके साथ–साथ कबीर जी ने प्रेमभावना पर भी विशेष बल दिया है। उनके विचारनुसार प्रेम के बिना ज्ञान का कोई महत्व नहीं है। अतः प्रेम जीवन का अनिवार्य तत्व है परंतु प्रेम पाना आसान नहीं है। कबीर का कहना है कि जिस हृदय में प्रेम का संचय नहीं है, वह हृदय श्मशान है। सच्चा प्रेम त्याग और बलिदान मांगता है। वह कहता भी है–

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै, भुंइ धरै, सौ पैठे घर माहिं।।
सीस उतारै भुंइ धरे, तापर राखै पांव।
दास 'कबीरा' या कहै ऐसा होय तो आव।।

(ञ) माया के प्रति सावधानी–कबीर ईश्वर–प्राप्ति के मार्ग पर माया को सबसे बड़ी बाधा मानते हैं और मनुष्य को माया से सावधान रहने की चेतावनी देते हैं। वे माया को महा ठगनी कहते हैं जो मीठी वाणी बोलकर सभी को फंसा लेती है। माया के जाल में फंसकर मानव ईश्वर को भूल जाता है और सांसारिक बंधनों में फंस जाता है। कबीर का विचार है कि जन्म–मरण थक जाते हैं, पर माया नहीं थकती। संसार में इस मीठी माया को किसी ने कड़वी नहीं कहा और सभी इसकी प्रबल और अचूक माया से हारते रहे। यहा तक कि इस चुड़ैल ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी मोह लिया। कबीर माया के विभिन्न रूपों की निन्दा करते हैं। वह कहते भी हैं–

एक कनक अरू कामिनी जग में दोई फंदा।
इनपै जौन बंधनई, ताका मैं बंदा।
देह धरे इन मांहि वास, कहु कैसे छुटै।
सीस भये ते ऊबरै, जीवत ते लूटै।।

माया ऐसी पापिन है जो ईश्वर से भी धोखा करती है। यह भक्त के मुख में दुर्बुद्धि को उत्पन्न करती है जिससे मानव राम का समरण नहीं कर पाता। वह माया मीठी है, अतः छोड़ी नहीं जा सकती। अज्ञानी व्यक्ति को तो यह तत्काल ठग लेती है।

कबीर माया पापणी, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।

× × × × × ×

मीठी–मीठी माया तजी न जाई।

अग्यानी पुरुष को भोलि भालि खाई।

पहले बताया जा चुका है कि माया आत्मा और परमात्मा के बीच व्यवधान उत्पन्न करती है। कबीर माया को मिथ्या कहते हैं। एक स्थल पर वे माया को पापिणी कहते हैं जो कि ईश्वर को भी धोखा देती है। यही नहीं, वह माया को अनंत भी कहते हैं। माया कभी नहीं मरती और मनुष्य का मन और शरीर मर जाता है परंतु मायाजन्य आशा और तृष्णा कभी नहीं मरती। कबीर कहते भी हैं–

''कबीर माया पापणी, हरि सूं करै हराम।

मुखी कड़ियाली कुमति की कहण न दई राम

× × × × × ×

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।

आसा तिश्णा नां मुई, यौ कहि गया दास कबीर।।

• नारी भावना

इसके साथ–साथ कबीर ने नारी के प्रति अपने विचार व्यक्त किए हैं। वे नारी को माया का प्रतीक मानते हैं और उसे विष की पुड़िया, कांटो की झाड़ी तथा नागिन तक कह डालते हैं। उनका कहना है कि नारी की परछाई पड़ने से सांप भी अंधा हो जाता है फिर मनुष्य की क्या बिसात है। नारी–निंदा के कारण कुछ आलोचकों ने कबीर का विरोध भी किया है, परंतु कबीर ने इस प्रकार के दोहे उन नारियों के लिए लिखे हैं जो पर–पुरुषों को रिझाने में लगी रहती हैं। कबीर ने पतिव्रता नारी की बहुत प्रशंसा की है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह नारी के निंदक नहीं थे। वह तो केवल चरित्रहीन नारियों के निंदक थे। एक स्थल पर वे कहते हैं–

नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।

कबिरा तिनकी का गति, जो नित नारी के संग।।

• भाषा–शैली, छंद और अलंकार

कबीर की भाषा के बारे में विद्वान एक मत नहीं हैं क्योंकि उनकी भाषा का एक निश्चित रूप नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' भी कहा है। उनकी भाषा को खिचड़ी, घुमक्कड़ी अथवा पंचमेल भी कहा गया है परंतु यदि हम ध्यान से देखें तो उनकी भाषा को जनभाषा कहना अधिक उचित होगा। वस्तुतः कबीर एक घुमक्कड़ साधु थे। उन्होंने देश–विदेश में भ्रमण किए फलस्वरूप उनकी भाषा में राजस्थानी, खड़ी बोली, पूर्वी हिंदी, ब्रज, अरबी, फारसी आदि सभी भाषाओं के शब्दों का सुंदर मिश्रण देखा जा सकता है। परंतु इतना निश्चित है कि कबीर का भाषा पर असाधारण अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी उनकी भाषा के बारे में लिखते भी हैं– ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है कृ बन गया है तो सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। कबीर के सामने भाषा कुछ लाचार–सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नहीं कर सके। अकथ कहानी को रूप

टिप्पणी

देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।''

कबीर की भाषा में प्रतीकात्मक शब्दों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है यथा हंस यदि ज्ञानी का प्रतीक है तो आग ज्ञान का, मकड़ी माया का तथा गंगा हीरा का, यमुना पिंगला का। प्रतीकों के कारण ही कबीर की कविता कुछ स्थलों पर काफी प्रभावशाली बन गई है। कुछ उदाहरण देखिए–

'हरि जननी मैं बालक तोरा।''

'पिता हमरों बहु गुमाई।'

'हंसि–हंसि कंत ना पाइये।'

'पूत पियारी पिता को।'

'विरहिणी पिव पावै नहीं।'

'हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया।'

शैली विधान की दृष्टि से कबीर की रचनाओं में साखी और पद दो रूपों का प्रयोग हुआ है। साखियां दोहा छंद में लिखी गई हैं लेकिन दोहा छंद के अतिरिक्त सोरठा, सार, चौपाई तथा हरिपद छंद में भी साखियां मिल जाती हैं। शब्द को ही पद कहा जाता है। ये सभी गेय पद हैं। कबीर के पद दोहा, खेड़ी तथा सार आदि अनेक छंदों से मिलकर बने हैं।

कबीर की कविता में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है लेकिन इनके रूपक स्वाभाविक होने पर भी जटिल हैं। कवि ने प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, उदाहरण, दृष्टांत, विभावना, अन्योक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखिए–

रूपक– नैनों की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै पिय को लिया रिझाय।।

दृष्टांत– संत न छाड़ै सतई जो कोटिक मिलै असंत।
चंदन भुजंगा बैठिया, सीतलता न तजन्त।।

अत्योक्ति– माली आवत देखि करि, कलियां करी पुकार।
फूले फूले चुणि लिए, काल्हि हमारी बार।।

उपमा– यहु ऐसा संसार है, जैसा संबल फूल।
दिन दस के त्यौहार की झूठे रंगि न भूल।।

3.2.1 कबीर की भक्ति भावना

कबीरकालीन भारतीय समाज पूर्णतः अस्त–व्यस्त हो गया था। मुस्लिम शासक हिन्दुओं पर तरह–तरह के अत्याचार कर रहे थे और उन्हें मुस्लिम धर्म ग्रहण करने के लिए बाध्य कर रहे थे। दूसरी ओर ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिए उन्हें नियम तथा संयम में जकड़ने का प्रयास किया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि संसार में हीन कहे जाने वाले लोग हिन्दू धर्म से दूर हटने लगे। इसके साथ–साथ हिन्दुओं तथा

टिप्पणी

मुसलमानों में वैमनस्य उत्पन्न हो चुका था। सिद्ध और नाथ अपनी–अपनी साधना के द्वारा जन–साधारण को भी मोहित कर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि उस समय प्रचलित नाना धर्म साधनाए जनता को भूल–भुलैया में डाल रही थीं। ऐसी स्थिति में कबीर की भक्ति ने भारतीय जन–मानस को आलंबन प्रदान किया। उन्होंने अपनी प्रेम भक्ति द्वारा जनता को राम रस में डुबो दिया। कबीर से पहले रामानंद ने भक्ति की धारा प्रवाहित की थी। उनके बारे में कहा भी गया है कृ

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।'

परंतु रामानंद के प्रसार का क्षेत्र सीमित था इसलिए कबीर ने ही अपनी प्रेमभक्ति का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। इसलिए कहा जाता है कि कबीर ने 'सतद्वीप नवखण्ड' में भक्ति को प्रकट किया।

(1) भक्ति का स्वरूप–कबीर की भक्ति को वैष्णव विचारधारा ने आंशिक रूप से प्रभावित किया। परंतु कबीर का विवेचन करने से पहले हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि भारतीय भक्ति का स्वरूप क्या है और आचार्य ने इसकी व्याख्या किस प्रकार की है। रामानुजाचार्य ने 'ब्रह्म सूत्र' का भाष्य प्रस्तुत करते हुए भक्ति के बारे में कहा है–

ध्रुवानुस्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभि धीयते।

अर्थात् परमात्मा के निरंतर स्मरण को ही भक्ति कहते हैं। व्यास ने कहा है कि प्राणिधान वह भक्ति है जिसके द्वारा परमेश्वर उस योगी पर कृपा दृष्टि करते हैं तथा उसकी इच्छाओं की पूर्ति का उसे वरदान देते हैं। इस प्रकार की भक्ति पतंजलि, भोज आदि ने भी की है। भक्त राज प्रहलाद ने भक्ति की सुंदर व्याख्या करते हुए कहा है कृ ''जैसे तीव्रासक्ति अविवेकी पुरुष की इंद्रियों विषयों में होती हैं उसी प्रकार आसक्ति आप का (प्रभु) स्मरण करते समय मेरे हृदय से निकल न जाए।'' नारद ने 'भक्ति सूत्र' के अंतर्गत भक्ति की महिमा का गान करते हएु लिखा है–

''सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।''

अर्थात् वह भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेमस्वरूप है और वह अमृत स्वरूप भी है। पराशर ने उसे निहित विधि कर्मों मे सीमित करते हुए अनुरागपूर्ण माना है–

''पूजादिष्वनुराग।''

शांडिल्य भक्ति सूत्र में उसे पराकोटि की मानते हएु ईश्वर के प्रति परम अनुराग रूप माना है।

(2) भक्ति के भेद–नारद ने भक्ति के दो रूप माने हैं कृ प्रेमरूपा, तथा गौणी। प्रेमारूपा भक्ति के उन्होंने दो भेद किए हैं, प्रथम है–कामरूपा जिसमें एक ही भाव की प्रधानता होती है जैसे गोपियों की कृष्ण में भक्ति कामरूपा कही जाएगी। दूसरा संबंधरूपा होती है जिसमें दास्य, साख्य, वात्सल्य, आत्म आदि भाव विद्यमान रहते हैं।

कबीर की भक्ति मुख्यतः कामरूपा है लेकिन संबंधरूपा के उदाहरण भी उसमें देखे जा सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिए–

दास्यासक्ति– ''कबीरकूता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेवड़ी, जित खैचे तित जाउं।''

कांतासक्ति– ''मोरे घर आये राम भरतार।
तन रति कर मैं मन रति करिहौं, पांच तत्त्व बराती
रामदेव मोहे ब्याहन आये, मैं जोवत मदमाती।''

वात्सल्यासक्ति– हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहि न अवगुन बकसहु मोरा।''

कबीर की भक्ति किसी संप्रदाय विशेष से प्रभावित दिखाई नहीं देती। उन्होंने अपने आराध्य के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है। कहीं वे उसे राम कहते हैं, कहीं शिव, कहीं हरि, कहीं खुदा तथा कहीं अल्लहा। उनकी भक्ति का स्वरूप तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार दिखाई देता है। कबीर ने देखा कि तत्कालीन हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि रूढ़ियों तथा बाह्य आडंबरों के शिकार बने हुए हैं। मुस्लिम शासक मुल्लाओं के कहने पर हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे और बलपूर्वक उनसे धर्म परिवर्तन करा रहे थे। ऐसी स्थिति में कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति पर बल दिया।

(3) नारदी भक्ति का प्रतिपादन–कबीर एक सच्चे समाजसुधारक तथा भक्त थे। कवि तो वह स्वतः बन गए। यद्यपि उनकी भक्ति–भावना सब धर्मों से अलग है, परंतु उनकी भक्ति–भावना पर नारद भक्ति सूत्र का बहुत प्रभाव देखा जा सकता है। नारदी भक्ति उनके जीवन का आदर्श था और इसके द्वारा वे भवसागर से पार उतरना चाहते थे। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

भगति नारदी मगन सरीरा,
खइह विधि भव तरी कहे कबीरा।

इस उक्ति के अनुसार कर्म, ज्ञान तथा योग आदि से भक्ति अधिक प्रभावशाली मानी गई है। कबीर भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उनका तो स्पष्ट कथन है कि भक्ति के बिना भी साधना पूर्णतः सफल है। यदि कोई साधक निष्काम भाव से योग साधना नहीं करता तो उसके सारे प्रयास व्यर्थ हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

'सुध बुध होइ भज्यों नहीं सांई, काछयो उमंग उदत कै तांई।
हिरदै कपट हरि सूं नहीं सांचौ, कहा भयो जे अनहद नाच्यो।

परंतु कबीर ने नारदी भक्ति के अतिरिक्त प्रेमभक्ति को भी आवश्यक माना है। फिर भी वह नारदी भक्ति का ही समर्थन करते हुए देखे जा सकते हैं–

हिंडोलना तहां झूलै आतमराम।
प्रेम भगति हिंडोलनां, तब सन्तनि को विश्राम।।
× × ×× × ×
प्रेम भक्ति ऐसी कीजिए, मुनि अमृत बरिषै चंद।
आपही आप बिचारिये, तव केता कोइ अनंद रे।।''

कबीर ने मूर्ति पूजा को अस्वीकार किया है, इसलिए वैष्णव भक्ति का उनकी भावना में कोई स्थान नहीं है। यद्यपि उन्होंने कछ स्थानों पर वैष्णवों के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया है परंतु वे वैष्णव भक्त नहीं थे फिर भी उनका थोड़ा–बहुत

झुकाव वैष्णव की ओर देखा जा सकता है। वैष्णव भक्ति से संबंधित उनकी निम्नलिखित पंक्तियां विशेष महत्त्व रखती हैं–

1. मेरे संगी दोई जणां एक वैष्णव एक राम।
2. वैष्णों की छपरी भली, न साकत को बड़ गाऊ।

परंतु अन्यत्र वह वैष्णव संप्रदाय के अंधविश्वासों तथा बाह्य आडंबरों का विरोध भी करते हैं और वे माला फेरने वाले वैष्णव को फटकार भी लगाते हैं–

''वैष्णव, हुआ तो क्या भया, माला मेली चारि।
बाहर कंचनवा रहा, भीतरि भरी भंगारि''।।

अन्यत्र वे रामानंद की भक्ति–भावना के अनुसार जातिगत भेदभाव को नकारते भी हैं–

''जाति–पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।''

(4) निर्गुण ब्रह्म की भक्ति पर बल–कबीर ने अपनी भक्ति में जिस आराध्य का वर्णन किया वह उपनिषदों की अद्वैत भावना से मेल खाता है, लेकिन कुछ स्थलों पर वे अद्वैत से भिन्न भी दिखाई देते हैं। कारण यह है कि कबीर किसी सिद्धांत का समर्थन नहीं करते। उन्होंने ब्रह्म का जो कुछ तथा जितना भी वर्णन किया है वह सब अनुभव पर आधारित है। वे पहले भक्त हैं और बाद में कवि हैं। जिस–जिस रूप में वे ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं, उसी रूप में उसका वर्णन करते हैं। यही कारण है कि कबीर के ब्रह्म का स्वरूप निश्चित नहीं है। वे किसी भी दर्शन के मापदंड से परे हैं। वे पुस्तकीय ज्ञान से अगम्य परंतु प्रेम से प्राप्य हैं। उनके ब्रह्म का स्वरूप अनुभूति का विषय है। उसे केवल वहीं जानते हैं। इसलिए डॉ. राम कुमार वर्मा ने उचित ही लिखा है– ''वह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगंध ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि हम उसे किसी प्रशस्त वन में नहीं देख सकते, वरन् उसे कलकल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं।'' अनुभूति के अनुसार कबीर का ब्रह्म कहीं अद्वैत है, कहीं द्वैताद्वैत, कहीं विशिष्टाद्वैत है, उसका एक स्वरूप नहीं है। परंतु उन्होंने प्रायः अद्वैत वर्ग का ही वर्णन किया है–

''कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन माहि।
ऐसे घट, घट राम है, दुनियां देखे नाहिं।।
× × × × × ×
मृगा पास कस्तूरी बास, आप न खोजै घास।''

वह अद्वैत की सत्ता को ही स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि वह ब्रह्म रोम–रोम में, सृष्टि के कण–कण में निवास करता है। यद्यपि वह हमारे हृदय में विद्यमान है, परंतु वह हमें दूर दिखाई देता है। कबीर का कथन है कि जब प्रियतम हमारे साथ है तो हम उसे संदेश क्यों भेजें क्योंकि संदेश भेजना मात्र दिखावा है। हम जहां चाहें ईश्वर की सत्ता को देख सकते हैं। यह केवल अनुभव करने की बात है–

प्रियतम को पतिया लिखूं, जो कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा संदेस।।
× × × × × ×

टिप्पणी

कागद लिखै सौ कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आलम दृष्टि कहा लिखै, जित तित पीव।।''

कबीर ने ब्रह्म की स्थिति सर्वत्र मानी है। उन्होंने ईश्वर की व्यापकता को अनुभव किया। अपनी अद्वैत भक्ति के अनुसार वे निर्गुण तथा निराकर ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। उनका ब्रह्म ही संसार को बनाने वाला है और नष्ट करने वाला है। यह आत्मा उसी ब्रह्म का अंश है। जब आत्मा इस नश्वर शरीर को त्यागकर परमात्मा में लीन हो जाती है तब वह ब्रह्मलीन बन जाती है। कबीर कहते भी हैं–

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इति तत्त कथ्यौ ग्यानी।।

निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करना सर्वथा असंभव है। वह पूर्णतः सूक्ष्म है। उसके गुणों का वर्णन करना भी असंभव है। कबीर जी कहते भी हैं–

जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप सुरूप।
पुहुप बास में पातरा ऐसा तत्त्व अनूप।।
सात समुद्र की मसी करूं, लेखनी सब बनराइ।
सब धरती कागद करूं प्रभु गुण लिखा न जाइ।।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर ने केवल निर्गुण–निराकार भक्ति का ही प्रतिपादन किया है। एक स्थल पर वे निर्गुण राम का जाप करने की सलाह देते हैं और कहते हैं कि उसकी गति अविगत है जो कि देखी नहीं जा सकती।

(5) सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन–भले ही कबीर ने तत्कालीन रूढ़ियों तथा आडंबरों का डटकर विरोध किया हो, परंतु वह ईश्वर के साकार स्वरूप की उपासना की अवहेलना नहीं कर सके और न ही उसके प्रभाव से बच पाए। कारण यह है कि बड़े–से बड़े कवि लोक परंपरा का पूर्णतः बहिष्कार नहीं कर सकता। वस्तुतः उनके निराकार ब्रह्म का अर्थ निर्विषय नहीं है इसलिए कबीर ने न चाहते हुए भी अपने निर्गुण ब्रह्म में गुणों का आरोप कर दिया है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित लिखा है– '' कबीर के निर्गुण ब्रह्म में गुण का अर्थ सत्य, रज आदि गुण हैं, इसलिए निर्गुण ब्रह्म का अर्थ वे निराकार, निस्सीम आदि समझते हैं, निर्विषय नहीं।'' सच्चाई तो यह है कि जब कबीर अपने प्रभु के गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगते हैं तो वे उसके निर्गुण गुणों को भूल जाते हैं। यही कारण है कि उनकी वाणी में हमें ऐसे अनेक स्थल प्राप्त हो जाते हैं जहां हम ब्रह्म के सगुण तथा साकार गुणों की चर्चा करते हैं और यहां तक कि उसे अवतारी पुरुष भी कह बैठते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर की वाणी को केवल शुष्क ज्ञान ही कहा है, इसलिए उन्होंने कबीर की चर्चा ज्ञानमार्गी कवियों के अंतर्गत की है परंतु वास्तविकता कुछ और है। कबीर की भक्ति में जहां उनकी आत्मा अपने विरहिणी नायिका के रूप में आत्म–निवेदन करती है, वहां भाषा की सरसता देखते ही बनती है। यहां तक कि कबीर नाम स्मरण, कीर्तन, श्रवण, वंदन आदि की भी चर्चा करते हुए दिखाई देते हैं। यह सभी स्थल साकार ब्रह्म की भक्ति से संबंधित हैं यथा–

फाड़ि पुटौला धज करों कामड़िली पहिराऊं।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोई सोई भेष कराऊं।।''

× × × × × ×

टिप्पणी

बिरहिन अभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलेंगे आइ।।
बहुत दिन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाही विश्राम।।''

(6) निष्काम भक्ति का प्रतिपादन–कबीर ने हमेशा निष्काम भक्ति पर ही बल दिया है और सकाम भक्ति का विरोध किया है। वे एक स्थल पर कहते हैं–

''जब लग भक्ति सकामता।
तब लग निष्फल सेव।।''

वे प्रभु की भक्ति के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। राम की भक्ति के सामने संसार के सभी भोग व्यर्थ हैं। यहां तक कि स्पर्श का आंनद भी निरर्थक है। वे अपने प्रियतम के बिना मुक्ति की कामना भी नहीं करते। अपने निर्गुण–निराकार ब्रह्म को पाने के लिए अनेक प्रकार के रूपों का निर्माण करते हैं और अपने स्वामी को अपनी आंखों में बंद कर लेना चाहते हैं–

1. नैनन की कर कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारि के पिव को लेऊं रिझाय।।
2. नैनां अन्तरि आव तूं, ज्यों ही नेन झपेऊं।
ना मैं देखूं और कू, ना तुझ देखन देऊं।।

कबीर की भक्ति–भावना में सत्संगति का विशेष महत्व है। कवि का कथन है कि सज्जनों की संगति करने से ही भक्त के मन में अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है और उसे सद् आचरण की आवश्यकता होती है। सत्संगति तथा गुरु से उन बाधाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है जो भक्ति के मार्ग की रुकावटें हैं। कबीर का विचार है सत्संगति कभी निष्फल नहीं जाती, बल्कि साधु सेवा तो प्रभु की सेवा के समान है। वह कहते भी हैं–

''कबीर संगत साध की, कदे न निसफल होई।
चंदन होसी बंबना, नीव न कहसी कांइ।।
जा घर साथ न सेवि यहि, हरि की सेवा नांहि।
ते घर मरहद सारखे, भूत बसहिं तिन माहि।।

इसके साथ–साथ कबीर ने गुरु को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। गुरु हमारा सच्चा हितैषी है और उसकी महिमा अनंत है, वही हमें ज्ञान प्रदान करता है और ईश्वर से मिलाता है। कवि ने गुरु और गोविंद को एक समान माना है। जो भक्त गुरु का आदर–मान नहीं करता, उसकी सारी तपस्या व्यर्थ है। कबीर जी कहते भी हैं–

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावनहार।।''

× × × × × ×

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारि गुर आपने, जिनि गोविंद दियो बताय।''

कबीर ने अपनी भक्ति–भावना में जहां एक ओर वैराग्य भावना को महत्त्वपूर्ण माना है वहीं दूसरी ओर माया से बचने का भी उपयोग दिया है। वे संसार की तुलना सेंबल के फूल से करते हैं और उसे नश्वर मानते हैं। माया की तो उन्होंने घोर निंदा की है क्योंकि माया का काम भक्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करना है। माया ही काम, लोभ, अहंकार की जननी है। अतः वह विषय–वासनाओं तथा माया का खंडन करके वैराग्य भाव को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

माया तजूं तजी नहीं जाइ, फिर फिर माया मोहि लपटाइ।
माया आदर माया मान, माया नहीं तहां ब्रह्म गियांन।।
माया रस माया कर जांन, माया कारनि ततै परान।।
माया जप तप माया जोग, माया बांधे सबही लोग।।
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहुं पासि।।
माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता।।
माया मारि करै त्यौहार, कहैं कबीर मेरे राम अधार।।

इसके साथ–साथ कबीर संसार की नश्वरता का भी प्रतिपादन करते हैं। कबीर का विचार है कि जब साधक सांसारिक मोह–माया से विरक्त हो जाता है तभी उसके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। वैराग्य आंतरिक उत्पत्ति है और इससे भक्ति प्राप्त होती है। इसके साथ–साथ कवि ने ज्ञान तथा योग को अपनी भक्ति–भावना में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। ज्ञान के द्वारा भक्त ब्रह्म तथा संसार की वास्तविकता को जान पाता है और उसके मन में आराध्य के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। योग द्वारा भक्त अपनी चित्तवृत्तियों को संयमित कर सकता है और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है। इसलिए कवि ने योग के लिए भक्ति को आवश्यक माना है। वह कहते भी हैं–

''तन खोजौ नर का करौ बड़ाई।
युगति बिना भगति किन पाई।।''

(7) नवधा भक्ति का प्रतिपादन– कबीर की भक्ति–भावना के अनेक रूप हैं परंतु इनको शास्त्रीय पद्धति में नहीं बांधा जा सकता। फिर भी श्रीमद्भागवत पुराण में तथा रामचरितमानस में भक्ति के नौ भेद बताए गए हैं। उनमें से कुछ कबीर वाणी में भी देखे जा सकते हैं। भागवत पुराण में नाम स्मरण, कीर्तन, श्रवण, वंदन, अर्चन, दास्य आदि भक्ति के नौ प्रकार माने गए हैं–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।

कबीर ने इन सभी की ओर यत्र–तत्र संकेत दिया है। भले कबीर अनपढ़ थे, लेकिन वे बहुश्रुत थे। रामानंद जैसे उनके समर्थ गुरु थे फिर उनको संतों की संगति भी प्राप्त थी इसलिए उन्होंने भक्ति के इन सभी रूपों का यत्र–तत्र वर्णन किया है।

(i) नाम–स्मरण–कबीर ने नाम–स्मरण पर अत्यधिक बल दिया है। वे तो नाम को ही ब्रह्म मानते हैं। कबीर का कहना है कि नाम स्मरण ही एक ऐसा आधार है जिसके द्वारा मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। सारे वेदों तथा शास्त्रों का भी

टिप्पणी

यही कहना है कि राम का नाम श्रेष्ठ तथा ग्राह्य है। इसलिए साधक को निरंतर राम–नाम का चिंतन करना चाहिए तथा अन्य बातों को छोड़ देना चाहिए। राम नाम को तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कबीर लिखते हैं–

''तत तिलक तिहूं लोक मैं, राम नाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोहया, दूजा देखो काल।।''

(ii) कीर्तन–कबीर जी ईश्वर के गुणों के गान पर भी बल देते हैं। भक्ति के आवेग में आकर वे अपने दार्शनिक सिद्धांत भूल जाते हैं और निर्गुण राम में अनेक दिव्य गुणों का गान करने लगते हैं। प्रभु कीर्तन पर बल देते हुए वे कहते हैं–

क. कबीर सूता क्या करे, गोविन्द के गुण गाइ।

ख. गुण गाय गुण न करे, हरे न राम वियोग।।

(iii) श्रवण–इस अवस्था के अंतर्गत साधक प्रभु के नाम या गुणों का श्रवण करता है। नाम के श्रवण से ही उसमें भक्ति की भावना उत्पन्न होती है। कबीर एक स्थल पर कहते हैं–

वाहु वाहु क्या खूब गावता है।
हरि का नाम मेरे मन भावता है।।

(iv) वंदन–नवधा भक्ति में वंदन का भी अत्यधिक महत्व है। यह अवस्था कबीर के साहित्य में भी देखी जा सकती है। कवि ईश्वर की दया के लिए वन्दना करता हुआ लिखता है–

माधौ कब करि हौ दाया।
काम क्रोध हंकार विधापै ना छूटै माया।।
उत्पति बिंदु भयौ जा दिन तैं कबहुं सचु नहि पायौ।
पंच चोर संगि लाइ दिए है इन संगि जनम गंवायौ।।

(v) अर्चन–इस अवस्था में ईश्वर की पूजा–विधि पर बल दिया जाता है। परंतु कबीर की अर्चन विधि वैष्णव भक्तों से मेल नहीं खाती। यह विशेष प्रकार की है। उन्होंने परंपरागत अर्चन विधियों का निषेध करते हुए मन को संयमित तथा पवित्र रखने की बात कही है–

पूजहुं राम एक ही देवा।
सांचा नवगुण गुरु की सेवा।।
अंतिर मैलि जो तीरथ न्हावै तिन बैकुण्ठ न जाना।
लोक अतीत कछु नां होवै नाहीं राम अयानां।।
जल के मज्जनि जे गति होवै नित मदुक छावै।।
दिवस न रैनि न हुमहिं सासत तहां बसै निरंकारा।
कहै कबीर नर तिसहि धियांवहु वावरिया संसारा।।

टिप्पणी

(vi) दास्य एवं पाद सेवन–दास्य भाव की भक्ति के अंतर्गत मनुष्य के अहं का विगलन हो जाता है। कबीर ने स्वयं को राम का दास कहा है तथा उनसे कृपा की याचना भी की है। वे स्वयं को राम का गुलाम बताते हुए कहते हैं–

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाई।
तन–मन धन मेरा राज जी की ताई।।
कबीर कुत्ता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेवड़ी जित खैंचें तित जाऊं।।

(vii) वत्सल–भाव–कबीर ने ईश्वर को कहीं माता के रूप में और कहीं पिता के रूप में देखा है। प्रभु पर मातृ भाव का आरोप करते हुए वे कहते हैं–

हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहे न औगुण बकसहु मोरा।।
बाप राम सुनि बीनति मोरी।
तुम्ह सो प्रगट लोगनि सूं तोरी।।

(viii) आचरण की शुद्धता पर बल–कबीर की भक्ति–भावना की अन्य विशेषता यह है कि उसमें सदाचार पर बल दिया गया है। कवि सदाचार को भक्ति का प्रमुख अंग मानते हैं। इसलिए उनका कहना है कि मनुष्य का आचरण शुद्ध होना चाहिए। आचरण की यह शुद्धता तभी आ सकती है जब भक्त संपूर्ण विकारों को उत्पन्न करने वाली दो वस्तुओं कनक तथा कामिनी का प्रयोग न करे। ''एक कनक एक कामिनी दुर्गम घाटी दोय' कहकर कबीर ने एक कनक और कामिनी को भक्ति मार्ग की प्रमुख बाधा सिद्ध किया है। यह दोनों मानव के शत्रु हैं। इनमें से कामिनी तो मानव के सुखों का विनाश कर देती है और मनुष्य भक्ति और मुक्ति में प्रवेश नहीं कर पाता।

नारि नसावै तीन सुख, जा नर पासै होय।
भगति मुकति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोय।।

कवि ने कामिनी को काली नागिन भी कहा है। वह खांड की बनी मधुर मछली है। इन दोनों को त्यागकर भक्त काम, क्रोध, भय, मोह, अहंकार से स्वतंत्र हो जाता है परंतु साथ ही कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंगति के त्याग पर बल दिया है। कबीर के विचारानुसार सज्जनों की संगति करने से मानव शुद्ध आचरण की ओर प्रवृत्त होता है और दुर्गति का विनाश होता है–

कबीर संगति साधु की, बगि करीजै जाइ।
दुरमति दूरि गंबाइ सो, वेसी सुमति बलाद।।

इस प्रकार कबीर एक सच्चे भक्त कवि थे। उनकी भक्ति पीयूष–सलिला भागीरथी के समान पावन है। जो भी साधक उसमें अवगाहन करता है उसके मन–कुरंग को विश्रांति मिलती है। भले ही कबीर ने अपनी भक्ति पद्धति में हठयोग का मिश्रण किया है। मुख्यतः उन्होंने निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन किया है। इस संदर्भ में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना लिखते भी हैं–''कबीर की भक्ति–भावना का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें निष्काम भाव की प्रबलता है, निर्गुण ब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया गया है।''

(ix) आत्म–समर्पण की अनिवार्यता– बाह्य साधनों की अपेक्षा आंतरिक साधनों पर जोर देते हुए मानसिक पूजा एवं मानसिक ध्यान को महत्त्व प्रदान किया गया है, शुद्ध आचरण एवं सत्याचरण पर जोर दिया गया है। मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद का खण्डन करते हुए केवल नाम–स्मरण द्वारा ब्रह्म के साक्षात्कार करने का आग्रह किया गया है। भगवान के गुण–कीर्तन को महत्व देते हुए भक्त के आत्म–समर्पण को भक्ति का अनिवार्य अंग घोषित किया गया है तथा सत्संगति, साधु सेवा, इन्द्रिय निग्रह, वैराग्य, माया एवं तृष्णा का परित्याग, गुरु सेवा, माधुर्य भाव आदि का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए सहज एवं सरल रूप में दीनता एवं विनम्रता के साथ भगवान की भक्ति को अपनाने का आग्रह किया गया है।

3.2.2 कबीर की रहस्य साधना

प्राचीन काल से ही व्यक्त एवं दृश्यमान जगत के भीतर अव्यक्त व्यापक सत्ता को खोजने के प्रयत्न चल रहे हैं। मानव अनेक विधियों द्वारा उस अव्यक्त और अदृश्य के साथ एकत्व स्थापित करने का प्रयास करता है। लेकिन फिर भी वह उसे जान नहीं पाता। ऋग्वेद आदि प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के अद्वैतमूलक एवं रहस्यात्मक विचार अनेक स्थलों पर मिलते हैं। वैदिक ऋषियों ने तत्व–चिंतन के समय यह अनुभव किया कि इस दृश्यमान जगत के नाम–रूपों में कोई सूक्ष्म सत्ता अवश्य विद्यमान है। वह सूक्ष्म सत्ता समूचे संसार का नियमन करती है। विश्व विद्यमान है। पर वह सूक्ष्म सत्ता अवर्णनीय है। वही सत्ता समूचे संसार का नियमन करती है। विश्व की इसी अव्यक्त की जिज्ञासा से रहस्यवाद संबंधित है। ''जब मानव आत्मा उस अव्यक्त सत्ता तक पहुंचने का प्रयास करती हुई विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों प्राप्त करती है और उन्हें भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करती है तो इस प्रकार के भाव समूह को साहित्यिक शब्दावली में रहस्यवाद कहते हैं।''

हमारे जीवन में रहस्यात्मकता है। कविता जीवन से संपृक्त है। अतः कविता में भी रहस्यात्मकता अनिवार्यतः समाविष्ट हो जाती है। आज तो रहस्यवाद के नाम से एक काव्य धारा भी स्वीकृत हो चुकी है।

रहस्यवाद– अर्थ एवं स्वरूप– रहस्यवाद अंग्रेजी भाषा के मिस्टिसिज्म का पर्यायवाची है। यह 'रहस्य' और 'वाद' दो शब्दों के मिलने से बना है। 'रहस्य' शब्द के अनेक अर्थ हैं– अज्ञात रहस्यमयी बात, छिपा हुआ या गुप्तता। श्रीमद्भगवद् गीता में रहस्य शब्द भक्त तथा ईश्वर के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है– ''भक्तोखसि में सखा चेति।'' संस्कृत कवि कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में रहस्य शब्द का प्रयोग अर्थ–गोपन के अर्थ में किया है। रहस्य शब्द रह धातु में 'असुन्' प्रत्यय लगने से 'रहस्' तथा 'यत्' प्रत्यय जुड़ने से 'रहस्य' बना है। व्युत्पत्ति लक्ष्य अर्थ के अंतर्गत इस का अर्थ प्रतीयमान सत्ता से संबंधित है। साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद का अर्थ काव्यधारा विशेष, प्रवृति विशेष और शैली विशेष होगा। उदाहरण के रूप में कबीर की वाणी में उसी अज्ञात एवं अदृश्य शक्ति को जानने की जिज्ञासा देखी जा सकती है–

चीन्ह चीन्ह क्या गाबहू, वाणी परी न चीन्ह।
अदि अंत उतपति प्रलय, आपुहिं के के लीन्ह।। –बीजक

रहस्यवाद की परिभाषाएं–

(i) महादेवी वर्मा के अनुसार– ''असीम का ससीम से संबंध ही रहस्यवाद है।''

(ii) डॉ. रामकुमार वर्मा– ''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है, यह संबंध यहां बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।''

(iii) डॉ. गोविंद त्रिगुणायत द्वारा रहस्यवाद की परिभाषा– ''जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।''

(vi) परशुराम चतुर्वेदी– ''रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। प्रधानतः उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष, गंभीर एवं तीव्र अनुभूति के साथ संबंध रखती है। इस अनुभूति का वास्तविक आधार अंतर्हृदय हुआ करता है जो वैयक्तिक चेतना का मूल स्रोत है और इसमें 'इदम्' 'एवं' है, जिसका लक्षण है– प्रेमाश्रयी अद्वैतानुभूति एवं प्रतीकाश्रयी सांकेतिक अभिव्यक्ति।''

कबीर के काव्य में रहस्यवाद– कबीर हिंदी के प्रथम रहस्यवादी कवि कहे जा सकते हैं। उनके असंख्य पदों तथा साखियों में उस अज्ञात, अव्यक्त तथा अदृश्य परमशक्ति के प्रति नाना प्रकार की अभिव्यक्तियां मिलती है। कवि यत्र–तत्र उस परमात्मा की अनुभूति का परिचय भी देता है। यदि कबीर के रहस्यवाद के बारे में गहराई से चिंतन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रहस्यवादी भावना, वेदांत, हठयोग तथा सूफियों के प्रेम तत्वों पर आधारित है। वे एक सच्चे अद्वैतवादी के समान समस्त जगत में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं। शंकराचार्य ने भी इसी का समर्थन किया था। फिर भी कबीर जी उस परब्रह्म का वर्णन करने में असमर्थ हैं। वे कहते भी हैं–

''पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे वूफं सोभा नहिं देख्यां हि परमान।''

अद्वैतवादी आत्मा–परमात्मा की एकता की चर्चा करते हैं। कबीर भी कुछ इसी की चर्चा करते हुए यह स्वीकार करते हैं कि आत्मा परमात्मा का ही अंश है, परंतु उनमें भेद उत्पन्न करने वाली माया है। इसकी चर्चा करते हुए वे कहते हैं–

''ना इहु मानसु न इहु देउ।
ना इहु जति कहावै सेउ।।
ना इहु जोगी ना अवधूता
ना इहु माइ न काहू पूता।।''

''कहै कबीर इहु राम को अंसु।
जस कागद पर मिटै न मंसु।।''

अज्ञान तथा अविद्या के कारण सांसारिक प्राणी अंश–अंशी के संबंध को पहचान नहीं पाता। माया उसे बार–बार भ्रमित कर देती है। माया तो संसार के सभी प्राणियों को भ्रमित करती है। कबीर ने माया को 'महाठगिनी' कहा है। इससे छुटकारा पाना सहज नहीं है। परंतु जिन साधकों पर सदगुरु की कृपा होती है वे उस माया से मुक्त हो जाते हैं। माया की निंदा करते हुए कवि कहता है कि–

''कबीर माया पापणी हरि सूं करै हराम।
मुख कड़ियाली कुमति की, कहन न देइ राम।।''

कबीर के रहस्यवाद के दो रूप– कबीर की रहस्यवादी भावना पर जहां एक ओर वेदों तथा उपनिषदों का प्रभाव है तो दूसरी ओर सिद्धों तथा नाथों का प्रभाव देखा जा सकता है। यही नहीं सूफियों की प्रेम भावना ने भी उनके रहस्यवाद को प्रभावित किया। फिर भी कबीर की रहस्यभावना काफी उलझी हुई और अस्पष्ट है। इसके दो कारण हैं– एक तो वे भावना की अपेक्षा साधना को अधिक महत्व देते हैं। दूसरा हठयोग की भावना भी उनके रहस्यवाद की भावना को दुरूह बना देती है। कबीर के रहस्यवाद के दो रूप हैं– भावनात्मक रहस्यवाद तथा साधनात्मक रहस्यवाद। परंतु डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने कबीर की रहस्य भावना के चार रूप माने हैं–

(क) भावात्मक रहस्यवाद

(ख) यौगिक रहस्यवाद

(ग) पारिभाषिक रहस्यवाद

(घ) अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद

वस्तुतः उन चार रूपों में से अंतिम तीन साधनात्मक रहस्यवाद के ही अंग हैं। उधर डॉ. सरनाम सिंह ने कबीर की रहस्य भावना के चार उपादन स्वीकार किए हैं– आस्तिकता, प्रेम भावना, गुरु तथा मार्ग।

यहां पर रहस्यवाद के प्रमुख रूपों– भावनात्मक तथा साधनात्मक को विस्तार से वर्णित किया जा रहा है–

(क) भावात्मक रहस्यवाद– कबीर के भावात्मक रहस्यवाद की तीन अवस्थाएं स्वीकार की जा सकती हैं।

अनुराग– यह कबीर के रहस्यवाद की प्रथम अवस्था है जिसकी परिणति विरह में होती है। ईश्वर के प्रति अनुराग की जागृति गुरु कृपा से होती है। गुरु कृपा से साधक के दिव्य चक्षु खुल जाते हैं तथा उसे अनंत के दर्शन होने लगते हैं। परमतत्व की झलक मात्र से ही कबीर का हृदय आनंद विभोर होता है। गुरु कृपा की चर्चा करते हुए वे कहते हैं–

''सतगुरु हम पर रीझि कर एक कह्या प्रसंग।
बरसया बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग।।
ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गरू मिलिया आइ।।''

यहां अनुराग की परिणति प्रेमाभूति में हो जाती है। संसार के मोह माया साधक को काटने दौडते हैं। इससे बचने का एक मात्र उपाय है 'हरि स्मरण'। परंतु जीवत्मा

टिप्पणी

अभी तक सांसारिक मोह माया से मुक्त नहीं हो पाई। अभी तक संसार के आकर्षण उसे बार–बार अपनी ओर खींचते हैं। अतः जीवात्मा न तो परमात्मा के पास जाने योग्य है तथा न ही उसे अपने पास बुला सकती है। कबीर कहते भी हैं–

''आइ न सकौं तुज्य पैं, सवूफं पै, सवूफं न तुझै बुलाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ।।''

कवि की यह प्रेमानुभूति धीरे–धीरे विरहानुभूति में बदल जाती है। अब विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए बहुत आतुर है। वह रात–दिन उसके पथ पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। प्रीतम से मिले बिना उसे पल भर का चौन भी नहीं है। कबीर कहते भी हैं–

''बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबदे मिलैंगे आइ।।
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन वूफं, मनि नाहिं विश्राम।।''

कबीर की दृष्टि में विरहानुभूति के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए 'विरह कौ अंग' में कबीर साहित्य अद्वितीय बन पड़ा है। ऐसा लगता है मानों कबीर की सी अनुभूति हिंदी के अन्य कवियों में बहुत कम देखने को मिलती है। प्रियतम को पाने के लिए वे शरीर को स्याही तथा लेखनी बनाकर प्रभु को प्रेम–पत्र भेजना चाहते हैं–

(1) यह तनु जारौं मसि करौं लिखौं राम का नाम।
लेखनि करूं करंक की लिखि–लिखि राम पठाऊ।।
(2) बहुत दिनन की जोहति बाट तिहारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन वूफं मन नाहीं विश्राम।।

परिचय– कबीर के रहस्यवाद की यह दूसरी अवस्था है। ज्ञानी जन इसे 'आत्मज्ञान' की संज्ञा भी देते हैं। सूफी इसे 'फना' कहते हैं। कबीर ने इसके लिए 'वर–वधू' के विवाह का रूपक प्रयुक्त किया है। 'परचा कौ अंग' में इसी अवस्था का मार्मिक वर्णन किया गया है। इसमें कबीर जी आत्मा तथा परमात्मा को परिचय का सुंदर वर्णन करते हैं। कबीर जी कहते हैं–

''कबीर तेज अनंत का मानौ ऊगी सूरज सेणि।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि।।''

इस अवस्था में आत्मा परमात्मा का पूर्ण वरण कर लेता है। कवि इसे 'रवि ससि बिना उजास' कहता है। परंतु कबीर स्वीकार करते हैं कि परिचय की अनुभूति व्यक्त करके भी उन्हें संतोष नहीं है। वे कहते भी हैं–

''पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिवे कूं सोभा नहिं, देख्या ही परमान।।''

परिचय की यह अवस्था ऐसी प्रतीत होती है मानो जीवात्मा रूपी प्रेमिका परमात्मा रूपी प्रिय में लीन हो रही है। इस अवस्था को प्राप्त कर विरह की ज्वाला शांत हो गई है। परिचय की अवस्था में कबीर एक ज्ञानी भक्त तथा रहस्यवादी प्रतीत होने लगते हैं। पानी तथा हिम के रूपक द्वारा कबीर ने परिचय की स्थिति को व्यक्त किया है–

''पानी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाए।
जो कुछ या सोहि भया, अब कुछ कहा न जल जाए।।''

अब कवि के हृदय में ईश्वर प्रेम प्रकाशित हो गया है। आत्मा परमात्मा का जो सनातन संबंध था, वह जाग उठा है। प्रेम भावना के जागृत होने के कारण अज्ञान से उत्पन्न भ्रम भी अब नष्ट हो गया है। कबीर जी कहते भी हैं–

''पिंजर प्रेम प्रकासिया, अतंरि भया उजास।
मुख कसतूरी महमहीं, बांणी फूटी बास।।''

मिलन– कबीर के भावात्मक रहस्यवाद की यह अंतिम अवस्था है। इसे 'सिद्धावस्था' भी कहा जा सकता है। इस स्थिति में पहुंचकर 'मैं' और 'तू' का भेद मिट जाता है। यह अवस्था आत्मा– परमात्मा के पूर्ण विलय की अवस्था हैं। 'बूंद समानी समुंद में' और 'समुंद समाना बूंद में' की स्थिति लगभग ऐसी ही है। मिलन की अवस्था में कवि ने आत्मा तथा परमात्मा के मिलन के बड़े ही हृदयाकर्षक चित्र अंकित किए हैं। अब जीवात्मा के आराध्य स्वयं उसके पास आ गए हैं। तथा उसके जीवन की साधना अब सफल हुई है। जीवात्मा इस मिलन से उत्पन्न उल्लास तथा आह्लाद के कारण आनंदित हो उठती है। वह गाती हुई कहती है–

''दुलहिन गावहुं मंगलाचार,
हम घर आए हो राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करि, है पंच तत्त बराती।
रामदेव मोरे पाहुन आए हौं जोबन मदमाती।।''

अब साधक को प्रियतम की प्राप्ति हो गई है। वह किसी भी स्थिति में प्रभु से अलग होना नहीं चाहता। जीवात्मा अनुनय–विनय करके प्रियतम को रिझाने का प्रयास करती है। मिलन की स्थिति में जीवात्मा के सभी संशय दूर हो गए हैं और उसे आनंद की प्राप्त हो गई है। अब जीव और ब्रह्म की अभेदमयी अवस्था उत्पन्न हो चुकी है। इस अवस्था में दोनों एकात्म हो गए हैं और साधक को ब्रह्ममयी दिव्य आभा के दर्शन होने लगते हैं। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं–

(1) लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।
(2) तूं तूं करता तूं भया मुझ में रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई जित देखों तित तूं।।

कबीर के रहस्यवाद में आस्तिकता का विशेष महत्व है। इसीलिए उसमें प्रेम भक्ति स्वतः समा जाती है। उनके रहस्यवाद को किसी विशेष कोटि में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि कबीर ने पूर्ण सत्य को पहचानने का प्रयास किया है। पुनः उनके रहस्यवाद में प्रवृत्यात्मकता है, एकांतिकता नहीं है। उसमें गुरु का विशेष महत्व है और माया के प्रति सावधानी दर्शायी गई है, क्योंकि माया आत्मा तथा परमात्मा के मिलन में बाधा उत्पन्न करती है। अंततः कबीर के रहस्यवाद में जहां एक ओर आध्यात्मिकता है वहां दूसरी ओर आत्मा तथा परमात्मा के संबंध में दांपत्य भावना का सुंदर रूपक भी अपनाया गया है।

(ख) साधनात्मक रहस्यवाद– पहले बताया जा चुका है कि कबीर पर नाथों, सिद्धों तथा योगियों की विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव रहा है। उन्होंने आत्मा तथा परमात्मा के

टिप्पणी

ऐक्य के लिए योग–साधना के विभिन्न तत्वों का भी प्रयोग किया है। महर्षि पतंजलि ने भी स्वीकार किया है जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में भी है। अतः ईश्वर प्राप्ति के लिए नाना प्रकार की साधनाएं शरीर में भी की जा सकती है। परंतु कबीर ने ढोंगी योगियों तथा हठसाधना करने वालों की कड़ी आलोचना भी की है। कबीर की रचनाओं में मन उलटी चाल, उन्मनावस्था, षट्चक्र, अनहदनाद, गगन–गुफा, इड़ा–पिंगला और सुषम्ना नाड़ियों, ब्रह्मरंध्र आदि का वर्णन मिलता है। दो एक उदाहरण देखिए–

(1) 'नहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अवगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।

(2) गगन गरजै बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुं दिसि दमके दामिनी भीजै दास कबीर।।

कहीं–कहीं कबीर जी उस परम सत्ता के लिए विभिन्न रूपकों, उलटबांसियों, पारिभाषिक शब्दों तथा प्रतीकों का भी प्रयोग करने लगते हैं। ऐसे में भावना की अपेक्षा यौगिक क्रियाओं की चर्चा अधिक रहती है। इसलिए कबीर का रहस्यवाद शुष्क तथा जटिल हो गया है।

(i) हठयोग की प्रक्रिया का वर्णन करते समय कबीर जी योग साधना के विभिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसे प्रयोगों से यह स्वतः स्पष्ट होता है कि वे सिद्धों तथा योगियों से प्रभावित हैं। एक उदाहरण देखिए–

''अष्ट दल कंवल निवासिया, चहु कौ फेरि मिलाइ रे।
रहूं मैं बीच समाधियां, तहां काल न पावै आइ रे।।''

(ii) इस प्रकार से कबीर ने योग संबंधी अनेक परिभाषिक शब्दों जैसे अनहदनाद, अजपा जाप, बिंदु शून्य, सूरति–निरति आदि का प्रयोग किया है। डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के शब्दों मैं– ''कबीर ने स्थान–स्थान पर अनेक रहस्यपूर्ण पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। संभवतः इन शब्दों के प्रयोग के पीछे नाथों तथा सिद्धों का हठयोग कार्य कर रहा था। इन शब्दों के प्रयोग में उलटबांसियों, चौसठ क्रियाओं, चौदह चंद्रमा, सोलह पवन आधारों, बावन कोठरियों, सोलह चक्रों तथा दस दरवाजों का वर्णन हुआ है। ये सभी शब्द हठयोग की विभिन्न क्रियाओं में प्रयोग आने वाले स्थानों तथा वस्तुओं के प्रतीक हैं।'' एक उदाहरण देखिए–

''सुरति समानी निरत मैं, अजपा माहै जाप।
लेख समाणां अलेख मैं, यूं आपा माहै आप।।''

(iii) कबीर की अटपटी उलटबांसियों में हमें उनकी अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद के दर्शन मिलते हैं। कभी–कभी वे अन्योक्तियों तथा रूपकों का भी सहारा लेते हैं। ऐसी उक्तियों का रहस्यमय अर्थ होता है जिसे कोई विरला साधक समझ सकता है। आराधक को ये उक्तियां उल्टी प्रतीत होती हैं। अतः ये सामान्य साधक की समझ से परे हैं। इनमें न तो मधुरता है तथा न सरसता। परंतु जब कोई इनके गहन अर्थ को जान लेता है तब वह चमत्कृत हो उठता है।

(क) नाव विच नदिया डूबी जाए।
(ख) वरसे कंबल भीजै पानी।
(ग) बैल विआये बांझ भयी गाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि कबीर वाणी में भावात्मक तथा साधनात्मक दोनों प्रकार का रहस्य देखा जा सकता है। परंतु जहां उन्होंने साधनात्मक रहस्यवाद का सहारा लिया है वहां उनकी कविता शुष्क हो गई है। परंतु भावानात्मक रहस्यवाद में कबीर ने स्वयं को ईश्वर की पत्नी मानकर जो विचार व्यक्त किए हैं, वे सर्वथा अनूठे हैं। उनके रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का सर्वाधिक प्रभाव है। यद्यपि उन्होंने ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप की वंदना की है, परंतु प्रेम तत्व के मिश्रण के कारण उनका काव्य भावनात्मक हृदय को छू लेता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कबीर हिंदी के प्रथम परंतु उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि थे। उनके रहस्यवाद में जो अनुभूति की तीव्रता तथा गहनता है, भावों की मधुरता तथा विरह की व्यापकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। केवल जायसी तथा महादेवी ही उनकी रहस्यानुभूति का स्पर्श करते दिखाई देते हैं। श्यामसुंदर दास ने उचित ही कहा है– ''रहस्यवादियों में कबीर का आसन सबसे ऊंचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है।''

3.2.3 कबीर का दर्शन एवं प्रासंगिकता

कबीर का लक्ष्य न तो कविता करना था और न ही दर्शन की किसी गुत्थी को सुलझाना। परन्तु उन्होंने अपनी भक्ति में प्रेम की विविध भावनाओं को व्यक्त करते हुए ब्रह्म, जीव तथा माया के बारे में अपने दृष्टिकोण को भी प्रकट कर दिया। उनके इन्हीं विचारों के आधार पर हम उनकी विभिन्न धारणाओं को जान सकते हैं। भले ही कविता तथा दर्शन अलग–अलग विषय होते हैं परन्तु प्रत्येक कवि की कविता में कुछ–न–कुछ दार्शनिक विवेचन भी रहता है। लेकिन कवि का दर्शानिक पक्ष इस रूप में नहीं रहता जैसे किसी दार्शनिक विद्वान का रहता है। इस सन्दर्भ में *'महादेवी वर्मा'* ने कहा भी है–'कवि में दार्शनिकता खोजना बहुत साधारण हो गया है। जहां तक सत्य के मूल रूप का संबंध है वे दोनों एक दूसरे के अधिक निकट हैं अवश्य, परंतु साधन और प्रयोग की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं है। बुद्धि के निम्न स्तर पर अपनी खोज आरम्भ करके उसे सूक्ष्म बिन्दु तक पहुंचाकर दार्शनिक सन्तुष्ट हो जाता है। उसकी सफलता यही है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुंचने के लिए वही बौद्धिक दशा सम्भव रहे। बुद्धि अन्तर का बोध कराकर एकता का निर्देश करती है और सहज एकता की अनुभूति देकर अन्तर की ओर संकेत करती है। परिणाम यह है कि चिन्तन की विभिन्न रेखाओं का समान्तर रहना अनिवार्य हो जाता है। सांख्य जिस रेखा पर बढ़कर सत्य की प्राप्ति करता है, वह वेदान्त को अंगीकृत न होगी ओर वेदान्त जिस क्रम से चलकर सत्य तक पहुंचता है, उसे योग स्वीकार न कर सकेगा।''

महादेवी का यह कहना भी है कि काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित होती है इसलिए उसका दर्शन न तो बौद्धिक तर्क प्रणाली है और न ही सूक्ष्म बिन्दु पर पहुंचने वाली विचार प्रवृत्ति है। इसलिए कवि का दर्शन उसकी आस्था का दूसरा नाम है। कबीर सांसारिक जीवन से विरक्त हो गए थे और जीवन मुक्ति की दशा में पहुंच गए थे। इसी सन्दर्भ में कबीर ने अपने कुछ विचारों को व्यक्त किया है जो कि उनके चिन्तन का परिणाम कहा जा सकता है–

टिप्पणी

1. ब्रह्म विषयक विचार–कबीर का ब्रह्म उपनिषदों के अद्वैतवाद से अत्यधिक प्रभावित दिखाई देता है परन्तु उस अद्वैत की प्राप्ति का आरम्भ परमात्मा से वियुक्त हृदय की मनोभावना द्वारा अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। यह स्थिति द्वैत की है जो कि एक भ्रम और अज्ञान है। परन्तु इस द्वैत भावना से कबीर का द्वैतवाद तनिक भी प्रभावित नहीं होता। कवि अद्वैत का निरूपण उपनिषदों के समान करते दिखाई देते हैं। एक स्थल पर वे कहते हैं–

''कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूंढे बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनियां देखे नाहिं।''

कबीर के ब्रह्म संबंधी विचार उनकी आत्म–अनुभूति तथा आत्म–चिन्तन पर आधरित हैं। ऐसा लगता है कि कवि ने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया था। कवि को यह अनुभव हुआ कि प्रिय ब्रह्म की ज्योति चारों ओर फैली हुई है। कबीर ने इसे अनुभव किया और उसे ढूंढने के लिए निकल पड़े। अन्ततः कबीर को ब्रह्म का पूर्ण साक्षात्कार हुआ और चारों ओर लाली–ही–लाली दिखाई दी। इसलिए कबीर कहते भी हैं–

''लाली मेरे लाल की जित देखूं उत लाल,
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।''

कबीर ने ब्रह्म की साधना की और उसका साक्षात्कार किया, परन्तु कबीर इसका श्रेय अपने गुरु को देते हैं, क्योंकि उन्होंने ही ज्ञान का प्रकाश दिया। कबीर बार–बार दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि उनके जीवन का लक्ष्य ब्रह्म पर विचार करना है। परन्तु यह कोई सहज कार्य नहीं है। जिस पर गुरु गोविंद की कृपा होती है वह ही उसकी ओर अग्रसर होता है। परन्तु ब्रह्म क्या है यह कहना कठिन है। कबीर उसे गूंगे का गुड़ कहते हैं। यह सत्य है कि ब्रह्म का अनुभव करके उसका वर्णन करना असम्भव है। इस सन्दर्भ में कबीर कहते भी है–

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना, इति तत कथ्यो ज्ञानी।''

डॉ. सरनाम सिंह ने कबीर के ब्रह्म के बारे में लिखा है, ''उसी अद्वैत तत्व को कबीर ने अनेक नामों से अभिहित किया है। पारब्रह्म, ब्रह्म परमात्मा, हरि, निंरजन, अलख, खालिक, निर्गुण, भगवान, राम, पुरुषोत्तम आदि अनेक नामों से वे उसी अद्वैत तत्व की ओर संकेत करते हैं। वे गुण–विहीन हैं। उसका न कोई रूप है, न रंग है उसमें न ही देखने की कोई चीज है। उसका कोई नाम भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह निर्गुण और निराकार है।'' अन्य अद्वैतवादियों के समान कबीदास मानते हैं कि ब्रह्म से ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण होता है और अन्त में उसी में विलय होता है। पानी और बर्फ के रूपक द्वारा कबीर इसी भाव को व्यक्त को करते हुए कहते हैं–

''पानी हिते हिम गया, हिमे ही गया बिलाय।
कबीरा जो था सो भया, अब कुछ कहा ना जाय।''

कबीर का ब्रह्म केवल सृष्टि का निर्माता ही नहीं है, वह पूर्ण निराकार, रूप–विहीन है। वह ब्रह्म प्रत्येक अणु में व्याप्त है तथा प्रत्येक हृदय में निवास करता है। वह शरीर में स्थित ज्योतिस्वरूप निराकर है। यह अखण्ड तथा एकरस भी है।

टिप्पणी

सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होने के कारण उसकी महिमा अपरम्पार है। वह सब कुछ जानने वाला तथा सब कुछ करने वाला है। बिना किसी रूप, आकार तथा बिना इन्द्रियों वह सब कार्य करता रहता है–

''शरीर सरोवर भीतर आद्द कमल अनूप।
परम ज्योति पुरुषोत्तम, जाकै रेख न रूप।''

× × × × × ×

''आदि मध्य और अन्त सौ अविहड़ सदा अभंग।
कबीर उस कर्ता की सेवक तजै न संग।''

× × × × × ×

''बिन मुख खाइ, चरन बिन पालै, बिन जिभा गुण गावै
आपै रहे ठौर नहीं द्दड़ै दस दिसिहीं फिरि आवै।
बिनहीं ताला बजावै, बिन मंडल पर ताला।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहां नित है गोपाला।''

कबीर ने ब्रह्म निरूपण करते समय अनेक नामों का प्रयोग किया है। इससे पाठक के मन में भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि वह राम और हरि शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग कर रहे हैं। इससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि वे विष्णु के अवतारवाद में विश्वास रखते हैं अथवा वे दशरथ के पुत्र राम या देवकी के पुत्र हरि को ही ब्रह्म मानते हैं। उन्होंने ईश्वर का स्मरण करने के लिए ही इन नामों का सहारा लिया है। यह भी सम्भव है कि स्वामी रामानंद के प्रभाव स्वरूप राम के नाम का बार–बार प्रयोग किया। इसी प्रकार कबीर कहते भी हैं–

''दशरथ सुत तिहूं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।''

कबीर के विचारानुसार ब्रह्म को कोई नहीं पहचान सकता है। जो पहचानता है वह ब्रह्म के समान हो जाता है। प्रायः सभी धार्मिक सम्प्रदायों ने ब्रह्म को जटिल जाल में जकड़ लिया है। सभी उसके ऊपरी रूप को देखते हैं, उसके असल रूप को कोई नहीं जान पाता। इसीलिए वह ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाते तथा ब्रह्म तथा अज्ञान का शिकार हो जाते हैं। जब ब्रह्म तथा अज्ञान का पर्दा हटता है तभी साधक ब्रह्म को जान पाता है। इस सन्दर्भ में 'कबीर' लिखते भी हैं–

''न जानै साहब कैसा है।
मुल्ला होकर बांग जा दैवे।
क्या तेरा साहब बहरा है
चींटी के पग नेवर बाजे,
सो भी साहब सुनता है
माला फेरी तिलक लगाया,
लम्बी जटा बढ़ता है

टिप्पणी

अन्तर तेरे कुफर–कटारी
यो नहीं साहब मिलता है।''

यही कारण है कि कबीर ने भले ही ब्रह्म को राम, गोपाल, कृष्ण, मुरारी आदि नामों से सम्बोधित किया हो, परन्तु वे बैष्णवों के अवतारी नाम को मान कर भी ब्रह्म को अवतारी नहीं मानते। यहां कहीं उन्होंने सगुण भक्त के समान उक्तियों का प्रयोग किया है, वह केवल ब्रह्म के प्रति प्रेमातिरेक के कारण है। कबीर जी लिखते भी हैं–

''जा जसरथ घरि औतरी आवा, ना लंका का राव सतावा
देवै कूखि न औतरि आवा, मां जसवै लै गोद खिलावा।''

× × × × × ×

ना वो ग्वालन के संग किरिया, गोबरधन लै न कर घरिया।
बावन होइ नहीं बलि छलिया, धरनी वेद लेन उधरिया।''

कबीर ने साधना क्षेत्र में ही प्रेम क्षेत्र को जोड़ दिया है। वे मानते हैं कि प्रेम ही ईश्वर है ईश्वर, ही प्रेम है। परन्तु यह प्रेम कोई मौसी का घर नहीं है। इसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति इस प्रेम को नहीं पा सकता। जो व्यक्ति अपने शीश को उतार सकता है, वही ब्रह्म के घर में प्रवेश कर सकता है। पहले बलिदान करना होगा, तभी ब्रह्म हो पाया जा सकता है। इसका अर्थ है–अहम् का विर्सजन करना। जो व्यक्ति अपने अहम् का विनाश कर लेता है, वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर का ब्रह्म व्यक्त रूप है तो अव्यक्त रूप भी है। वह बुद्धिमूलक है तो प्रेममय भी है। कवि के ब्रह्म निरूपण पर वेदान्त का प्रभाव है और वे उपनिषदों की व्याख्या करते हैं। इस सन्दर्भ में गोविन्द त्रिगुणायत लिखते भी हैं– ''कबीर ने अपने ब्रह्म का वर्णन उपदेशात्मक, भावात्मक, रहस्यात्मक और बुद्धिमूलक शैली में ही किया है। उपनिषदों में भी ब्रह्म का वर्णन अधिकतर रहस्यमयी भावात्मक शैली में ही हुआ है। यही कारण है कि उनका ब्रह्म निरूपण उपनिषदों के अधिक मेल में है। उपनिषदों में अद्वैतवाद को पूर्ण प्रतिष्ठा मिली है। उपनिषदों का अद्वैतवाद कबीर में भी मिलता है।''

2. आत्मा विषयक विचार–कबीर अध्यात्म लोक के साधक थे। उनके काव्य में अनुभूति तथा चिन्तन का संयोग मिलता है। उन्होंने अनेक विषयों पर अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किए हैं। परन्तु सर्वत्र उनके विचारों में मौलिकता देखी जा सकती है। आत्मा के सन्दर्भ में भी उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। वे पूर्णतया मौलिक हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं–''कबीर की साखियों और पदों को देखने से स्पष्ट होता है कि उन्होंने आत्म–विचार को विशेष महत्व प्रदान किया है। कवि ने साधना करते हुए आत्म चिन्तन किया तथा उपनिषदों के कथन का पालन करते हुए अपने आप को जानने का प्रयास किया। यही कारण है कि कवि के आत्म तत्व में गहराई तथा व्यापकता है।'' वे कहते भी हैं–

''आप पिछाने आपै धाय।''
अपने में रंगि आपन यौ जान।
जिहिं रगि जानि ताहि कू भान!''

कबीर ने आत्मा को हंस अथवा हंसा कहा है और उसे चेतना की चेतावनी भी दी है। कवि बार–बार प्रश्न करता है कि वह हंस किस देश से आया है और उसे कहां जाना है। यह हंसा कहां विश्राम करेगा और किसकी आशा लगाई है। परन्तु वे हंस को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हमारे साथ चलो और उस मूल स्थान पर पहुंच जाओ जहां ब्रह्म का आनंद है। वहां पहुंचकर किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। इसलिए कवि आत्मा को अजर–अमर कहता है। कवि लिखता भी है– ''हे जीव! तुम इस बात को समझो कि यहां आने से पहले तुम कहां थे, क्या थे और यहां क्यों आए? तुझे यहां क्या करना था, तुम यहां क्या कर रहे हो? अभी भी चेत जाओ देर नहीं हुई है। अपने उसी मूल स्थल पर पहुंच जाओ जहां ब्रह्म का आनंद है और जहां पहुंचकर किसी भी प्रकार के संशय और सुख आदि की गुंजाइश नहीं रह जाती।''

कबीर ने आत्मा को परमात्मा का अंश माना है। इस दृष्टि से वे उपनिषदों से अत्याधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। जिस प्रकार अद्वैतवादियों ने ब्रह्म और आत्मा की एकता को स्थापित करने का प्रयास किया, उसी प्रकार कबीर ने आत्मा और परमात्मा को अंश, अंशी माना और उनकी एकता पर विचार किया। कबीर अपने रहस्यवाद में सर्वत्र आत्मा–परमात्मा की एकता की स्थापना करते दिखाई देते हैं–

''प्रीतम कूं पंतियां लिखूं, जौ कही होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताकौ कहां संदेस।।

कबीर की आत्मा ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए व्याकुल है। वे इस विरह को अधिक मानते हैं और स्पष्ट करते हैं कि जो आत्मा है वही परमात्मा है, जो परमात्मा है वही आत्मा है। जो इस तथ्य को जान लेता है, वही परमात्मा को पा लेता है–

''सेई तुम्ह सेई हम एक कहियत, जब आपा पर नहीं जाना।
ज्यूं जल में पासि न निकसै, कहै कबीर मन माना है।''

किन्तु आत्मा और परमात्मा की पृथकता का कारण माया है। वह आत्मा और परमात्मा को कभी एक नहीं होने देती, बल्कि वह बाधा का काम करती है। परन्तु जब माया का आवरण हट जाता है तो आत्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे जल में तैरते हुए कुंभ में भी जल होता है। ये दोनों जल एक जैसे हैं लेकिन फिर भी अलग–अलग हैं। इन दोनों जलों का मिलन तभी संभव है जब कुंभ रूपी माया (शरीर) की सत्ता समाप्त हो जाएगी।

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।,
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तत् कथ्यौ ग्यानी।''

कबीर के आत्म तत्त्व विवेचन में आत्मानुभूति तथा आत्म–चिंतन है। यदि उन पर उपनिषदों का गहरा प्रभाव है तो गीता का भी है। कहीं–कहीं वे आत्मा की जगह 'प्राण' शब्द का प्रयोग करते हैं तथा उसे मुक्त हंस भी कहते हैं। उनके अनुसार दीपक की ज्योति के समान आत्मा सदैव प्रकाशमान है। यद्यपि कवि ने आत्मा का वर्णन निराकार रूप में किया है, कहीं–कहीं वे साकार रूप में उसका वर्णन करते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत लिखते हैं– ''आत्मा के इस साकार वर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी स्थलों पर कबीर ने उसको निराकार और निर्गुण ही ध्वनित किया है। वे निज स्वरूप को ही मानते हैं। वह निर्गुण सच्चिदानन्द स्वरूप है। जीव के सत्य स्चरूप को

कबीर ने विविध प्रकार से ध्वनित किया है। कभी तो वे आत्मा को अमर कहते हैं, कभी उसे ब्रह्म के समकक्ष मानते हैं और कभी वे उसे घरवासी अद्वैत तत्त्व कहते हैं। आत्मा की चित्तशक्ति में भी कबीर को पूर्ण विश्वास है। वे उसे ज्ञानस्वरूप और सक्रिय एवं स्वयं प्रकाश चेतन तत्व मानते हैं। आत्मा के आनन्द–स्वरूप होने में उन्हें कोई सन्देह नहीं है।''

जब आत्मा परमात्मा की खोज में निकलती है तो उसे सर्वत्र परमात्मा दिखाई देता है, अतः आत्मा उस परमात्मा में लीन हो जाती है। इसे हम आत्मा–परमात्मा की एकता भी कह सकते हैं।

''लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।''

3. जगत संबंधी विचार–कबीर के काव्य में मानव जीवन के सभी पक्षों पर चिंतन किया गया है। उनके आत्म में अनुभूति पक्ष के साथ–साथ चिन्तन पक्ष भी विद्यमान है। कवि ने जीवन के जिन पहलुओं को देखा उस पर विचार किया और अपने विचारों को कविता में स्पष्ट किया। वे ब्रह्म, आत्मा, माया आदि पर विचार करते हुए जगत पर भी विचार करते हैं। बल्कि उन्होंने जगत के बारे बहुत कुछ लिखा है। यूं तो कबीर की कविता पर सदैव उपनिषदों का प्रभाव देखा जा सकता है, परन्तु कबीर का दृष्टिकोण पूर्णतः मौलिक है। उन्होंने अपने काव्य में जिस जगत के स्वरूप का वर्णन किया है वह उनकी मौलिक उद्‌भावना है। कबीर से पूर्व इस संसार के बारे में कई ऋषि–मुनि चिन्तन कर चुके हैं। कबीर ने भी इस पर गम्भीरता से विचार किया और संसार को एक बाजार की संज्ञा दी। कवि का विचार है कि यह संसार एक ऐसा बाजार है जहां सभी लोग व्यापार करने आए हैं। इसे कवि कर्म–क्षेत्र भी कहता है। यहां रहते हुए मनुष्य कर्म से मुक्त नहीं हो सकता, परन्तु कुछ व्यापार में अपना मूल भी गंवा देते हैं। यदि मूल नष्ट हो गया तो लाभ कहां से प्राप्त होगा। संसार से जन्म तथा मरण का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा। कबीर कहते भी हैं–

''यह संसार हाट करि जान, सबको वणि जण आया।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई मूरखि मूल गंवाया।''
थाके नैन बैन भी थाके थाके सुन्दर काया।
जामण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया।''

एक अन्य स्थल पर कबीर ने संसार को अंधा कहा है जिसे कुछ दिखाई नहीं देता। वह उसे चेतावनी दे रहा है, परन्तु कोई समझना नहीं चाहता।

सभी प्राणियों को पेट की चिन्ता लगी हुई है। वे भौतिक साधनों का संग्रह करने में लगे हुए हैं। वे जानते कि संसार अस्थिर है और उनके शरीर भी नश्वर हैं। जैसे ओस की बूंद क्षण भर में नष्ट हो जाती है, वैसे ही संसार को भी नष्ट होने में देर नहीं लगती। इस पर कबीर कहते भी हैं–

''यह जग अंधा मैं केहि समझावौं।
इक–दुई होय उन्हें समुझावों सबही भुलानी पेट के धंधा
पानी के घोड़ा पवन असवरवा ठरिकि परै जस ओस के

गहरी नदिया अगम बहै घरवा खेवनहारा पडिया फन्दा बूंदा
घर की वस्तु निकट नहीं आवत दियना वारि के ढूंढूत अन्धा।
लागी आग सकल बन जरिगा बिन गुरु गयान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनौ भाई साधो एक दिन जाय लंगोटी झार बंदा।।''

अन्यत्र कबीर स्पष्ट करते हैं कि यह संसार मिथ्या है तथा इसकी स्थिति क्षणिक है। यह मानव के लिए दुःखदायी भी है। राम के बिना यह संसार कोहरे के समान है क्योंकि सिर पर यमराज का पहरा लगा हुआ है अतः संसार का नाश पूर्णतया निश्चित है। इसे उत्पन्न करने में तथा नष्ट करने में कुछ भी समय नहीं लगता। कोई मानव विश्वास नहीं करता, वह अपने शरीर को अमर मानता है तथा सद्मार्ग को त्यागकर कुमार्ग पर चलते लगता है। वह स्वयं मरता है और औरों को भी रुलाता है। कबीर कहते भी हैं–

''ना जाणे अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया
मारग छांड़ि कुमारग जोवै, आपण मरै और कू रोवै।
कछु एक किया कछु, एक करणां, मुगध न चेत निहचौ
मरणा ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिन सत लगै न वारा।''

कबीर ने जगत के बारे में जो कुछ कहा है, उस पर वेदांत के प्रभाव को स्पष्ट कहा जा सकता है। उनकी आत्मानुभूति और आत्मचिंतन उनके जगत संबंधी विचारों में भी देखे जा सकते हैं। कबीर कहते भी हैं–

''पंच तत्त्व अविगत थे उत्पना थकै लिया निवासा।
बिछुरे सत फिर सहित समाना रेख एही नहीं आसा।''

अंत में डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में– ''कबीर की सृष्टि जिज्ञासा अत्यन्त तीव्र है। कबीर वास्तव में स्वप्नवादी हैं किन्तु उनका स्वप्नवाद, गौंडवादाचार्य और बौद्धों के स्वप्नवाद के अनुरूप है। प्रत्यक्ष रूप से कहीं उन पर सांख्यों का प्रभाव दिखाई पड़ता है, किंतु सांख्यों का द्वैतवाद उन्हें मान्य नहीं है। उनका ब्रह्म और जगत का संबंध भी यही प्रकट करता है कि यह अद्वैतवादी हैं।''

4. माया विषयक विचार–कबीर ने अद्वैतवादियों के समान माया को मिथ्या माना है। उसकी माया धर्म और सम्भव से सांख्यवादियों की प्रकृति से मेल खाती है। कबीर के अनुसार माया ने समस्त संसार को अपने वश में कर लिया है। इसलिए वे माया को व्यभिचारिणी तक कह डालते हैं।

कबीर माया के स्वरूप को अच्छी तरह पहचानते हैं। वे उसकी शक्ति को भी पहचानते हैं। उनका विचार है कि माया में बड़ी शक्ति है, वह छोड़ी नहीं जाती। यदि मनुष्य माया को छोड़ने का प्रयास करे तो भी छोड़ी नहीं जा सकती क्योंकि माया फिर से मनुष्य को अपने में लीन कर लेती है। माया ही तो ब्रह्म ज्ञान में बाधक है। इसलिए कबीर माया को ठगनी कहते हैं। वह संसार में सभी को ठगती रहती है। वह संसार के प्राणियों को अपने मधुर जाल में फंसा लेती है। उससे बच पाना बड़ा कठिन है। कबीर अपनी वाणी में कहते भी हैं–

''माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन फांसि लिये कर डोलै, बोले मधुरी बानी।।

टिप्पणी

केसव के कमला होई बैठी, सिव के भव भवानी।

पंडा के मूरत होई बैठी, तीरथ हू में पानी।

भक्तन के भक्तिन होई बैठी, तीरथ हू में पानी।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।।''

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के माया के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–''यह त्रिगुणात्मक प्रकृति माया है। पर जो माया चैतन्य स्वरूप ब्रह्म हो ईश्वर रूप में प्रकट करती है वह सत्व–गुण प्रधान है कृ अर्थात् उसमें रजोगुण और तमोगुण का प्रायः अभाव है। कुछ वेदान्ती आचार्य प्रकृति को दो प्रकार की मानते हैं, विशुद्ध सत्व प्रधान और अविशुद्ध सत्व प्रधान। पहली ईश्वर की उपाधि है और दूसरी जीव की। इसलिए कहा जा सकता है कि माया ही संसार को चला रही है क्योंकि मायोपधिक चैतन्य ही ईश्वर है। इसी भाव को लक्ष्य करके कबीर ने कहा था कि रघुनाथ की माया ही है जो शिकार खेलने निकली है। कबीर के पदों से जान पड़ता है कि उन्होंने 'माया' को 'अविद्या' से अलग करके नहीं देखा। वेदान्त ग्रंथों में माया और अविद्या की एकात्मकता के पोषक वाक्य बहुत–से मिल सकते हैं। सो माया ही कबीर के मत से जीवों को भरमा रही है।''

माया से बचने के लिए कबीर ने उपाय बताया है। वे कहते हैं कि यदि भक्त माया के मिथ्यात्व को अच्छी प्रकार समझ ले और इसे मिथ्या मान ले तो वह माया से दूर रहने का उपाय कर सकता है, फिर यह भक्त की दासी बन जाती है और दासी के समान उसके चारों ओर घूमती रहती है। वे अपनी वाणी में कहते भी हैं–

''कबीर माया मोहनी, मांगी मिलै न हाथि।

मनह उतारी झूठ करि, तब लगी डोलै साथि।।''

इस सिद्धान्त को अपनाकर संत लोग माया को अपनी दासी बना लेते हैं। ऐसी स्थिति में माया ईश्वर के स्मरण में बाधा नहीं बनती और हंसात्मा सभी आकर्षणों से मुक्त होकर प्रभु का स्मरण करता है–

''माया दासी संत की, ऊंची देइ असीस।

विलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस।।''

5. शरीर विषयक विचार–शरीर के बारे में कबीर के विचार पूर्णतः मौलिक हैं। उनका विचार है कि जो कुछ समस्त ब्रह्माण्ड में है वही सब मानव शरीर में भी है क्योंकि शरीर ब्रह्माण्ड का लघु संस्करण है–

''ब्रहूमण्डे सो ज्यण्डे जानि।''

परंतु शरीर क्षण–भंगुर है। उसे नष्ट होते देर नहीं लगती । जब संसार नाशवान है तो शरीर कैसे नाशवान नहीं होगा। वह मौलिक उपमानों का उपयोग करते हुए मानव–शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन करते हैं। वे कहते भी हैं–

''पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।

देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।।''

शरीर के लिए कबीर ने अंजलि के जल की बड़ी सटीक उपमा दी है। अंजलि में रोका जल प्रतिपल रिसता चला जाता है। यदि अंजलि अचानक खुल जाए तो उस जल का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अतः यह शरीर अधिक समय तक नहीं टिकता।

''तन धन जौवन अंजुली कौ पानी, जात न लागै बार।''

× × × × × ×

''जल अंजुरी जीवन जैसा ताका है क्या भरोसा।''

कबीर का यह भी कहना है कि शरीर का पालन करने के लिए निम्न प्रकार के पाप कर्म करना उचित नहीं है। हम शरीर के लिए पाप के बोझों को ढोते हैं। अच्छे–बुरे अनेक कर्म करते हैं, परंतु मृत्यु हो जाने पर पंचतत्वमय इस शरीर की सत्ता ही समाप्त हो जाती है तब इस शरीर में कोई भी आसक्ति नहीं रह जाती। परंतु संसार में शरीर का नाश निश्चित है। समय आने पर यह स्वतः नष्ट हो जाता है। कबीर घोषणा करते हुए कहते हैं–

''जो ऊग्या सौं आथवें, धूल्या सौं कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ।।''

शरीर को मृत्यु से बचाने वाला कोई नहीं है। जो आज दूसरों की श्मशान यात्रा पर जाकर शोक व्याकुल हो रहे हैं, वे भी निश्चित रूप से इसी प्रकार श्मशान में जाएंगे।

''रोवणहारे भी मुए, मुए जलावणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार।।''

शरीर को धारण करने वाली जीवात्मा बार–बार मातृ गर्भ में रहकर असीम वेदना को सहन करती है। इससे बचने का एक ही उपाय है और वह है–मुक्ति। मुक्ति सत् कार्य करने तथा दृढ़ ईश्वर भक्ति से प्राप्त होती है। मुक्ति प्राप्त करने से भक्त और भगवान में, अंश तथा अंशी में तथा आत्मा एवं परमात्मा में भेद नहीं रह जाता। दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार कवि ने शरीर के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर के दार्शनिक विचार वेदांत से अत्याधिक प्रभावित हैं। उनके विचारों तथा सिद्धांत पूर्णतः भारतीय है, विदेशी नहीं। फिर भी उन्होंने अनेक स्थलों पर अपने अनुभव के आधार पर दार्शनिक विचार–विमर्श किए हैं। इस संदर्भ में डॉ. हरिहर द्विवेदी त्रिवेदी तथा डॉ. मण्डल त्रिवेदी के मतानुसार–''सत्य पोषी कबीर ने तर्क एवं बुद्धि की कसौटी पर परखने के पष्चात् ही आत्मानुभूति के स्तर पर अपने विचारों को स्थापित किया था। वे स्पष्टवादी और निर्भीक आलोचक थे। भयमुक्त होकर उन्होंने जो उन्हें उचित लगा, उसे वाणी द्वारा प्रस्तुत किया। कबीर वाणी की स्पष्टवादिता तथ निर्भीकता के कारण ही उन्हें क्रांतिकारी कवि कहना उचित होगा।''

कबीर की प्रासंगिकता

प्रासंगिकता का अर्थ है आधुनिक युग के संदर्भ में पूर्ववर्ती रचनाकार के नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का विवेचन करना। इस प्रासंगिकता शब्द का प्रयोग समसामयिक शब्द में किया जा सकता है। आज हमारे मानवीय मूल्य तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण काफी बदल गए हैं और यह निरंतर बदलते जा रहे हैं। आज के साहित्यकार की

टिप्पणी

जीवन–दृष्टि प्रत्येक साहित्यकार का मूल्यांकन वर्तमान के संदर्भ में करती है। जो साहित्यक रचना अपने आप को समाज के वर्तमान मूल्यों से नहीं जोड़ती वह शीघ्र ही नकार दी जाती है। परंतु जो रचना वर्तमान मूल्यों के संदर्भ में लिखी जाती है, वह लंबे काल तक पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर पाती है।

कबीर अपने युग के द्रष्टा तथा विचारक थे। धर्म, साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति आदि के परिष्कार में उनका योगदान रहा है, बल्कि हम यह कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में कबीर ने भारतीय जन–मानस को बहुत प्रभावित किया। वे एक ऐसे साहित्यकार थे जिसने जन–साधारण को अपनी कविता मे सर्वाधिक महत्व प्रदान किया। मध्य युग में मुसलमानों के आक्रमण के साथ ही हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म की कट्टरता का शिकार बना। सत्ताधारी वर्ग का आश्रय प्राप्त करके इस्लाम धर्म न केवल अपनी जड़ों को मजबूत कर रहा था बल्कि हिन्दुओं को मुसलमान बना रहा था।

दूसरी ओर संसार का निम्न वर्ग उच्च वर्ग द्वारा शोषित तथा पीड़ित होने के कारण नारकीय जीवन व्यतीत कर रहा था। कबीर युग में जिस किसी ने पददलित जन–साधारण का प्रतिनिधि बनकर उन्हें समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ने का प्रयास किया उसे सत्ताधारी समाज के कोप का भाजन बनना पड़ा। परंतु कबीर को आरंभ से ही मुगल शासक इब्राहिम लोदी के अत्याचारों का सामना करना पड़ा। दूसरी ओर, उस युग में निर्गुण और सगुण का द्वन्द्व चल रहा था। कबीर ने निर्गुण भक्ति आंदोलन चलाया और शोषित, पीड़ित तथा उपेक्षित निम्न जातियों का साथ दिया। दूसरी और गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास कवियों ने सगुण भक्ति का समर्थन किया। यदि गहराई से देखा जाए तो कबीर की प्रांसगिकता आज भी जस–की–तस है और आने वाले काल मे यह और भी अधिक बढ़ जाएगी। कबीर ने अपने साहित्य में तत्कालीन निम्न जाति की पीड़ा और व्यथा को अंकित किया। इसके साथ–साथ कबीर ने समाज, धर्म, राजनीति आदि क्षेत्रों में फैली अराजकता का यथार्थ चित्रण किया। कबीर ने तत्कालीन सामाजिक विकृतियों का विरोध करते हुए पीड़ित तथा उपेक्षित निम्न जाति के लोगों को समाज में उच्च स्थान दिलाने का प्रयास किया। इसलिए कबीर ने ब्राह्मण तथा काजी को उनके कर्तव्य के प्रति सचेत करते हुए कहा–

सो हिन्दु सो मुसलमान जा का धर्म रहे ईमान।
तो ब्राह्मण जो कहे ब्रह्मगियान काजी सो जाने रहिमान।।

× × × × × ×

भूला भरमि परै जो कोई।
हिन्दू तुरक झूठ फुल दोई।।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक युग कबीर युग से सर्वथा भिन्न है। कबीर युग में राजाओं महाराजाओं, सामन्तों तथा शासकों का राज्य था परंतु आज हमारे देश में प्रजातंत्र है। आज समाज के सभी लोगों को मतदान करने तथा अपनी इच्छानुसार शासक चुनने का भी अधिकार है। वर्तमान समाज का वातावरण भी कबीर युगीन वातावरण से भिन्न है, फिर भी कबीर ने अपनी वाणी में जिन विसंगतियों तथा समस्याओं का उद्घाटन किया, वे आज भी हमारे समक्ष चुनौती प्रस्तुत कर रहे हैं। कबीर के द्वारा उठाए गए प्रश्न आज भी हमें यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि हमारे

टिप्पणी

समाज में ये विसंगतियों कैसे दूर होंगी। कबीर की प्रासंगिकता के संदर्भ में हम निम्नांकित बिंदुओं पर चिंतन कर सकते हैं–

1. **वर्ण–व्यवस्था की विसंगतियों का उट्घाटन**–कबीर युग में समाज पूर्णतः वर्ण व्यवस्था पर टिका हुआ था। गोस्वामी तुलसीदास जैसे महान कवि ने भले ही सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया, परंतु वर्णाश्रम ब्रह्म का समर्थन भी किया। भक्तिकाल में वर्ण भेद, कर्मगत न होकर जन्म गत था। फलस्वरूप तत्कालीन समाज पूर्ण व्यवस्था पर टिका हुआ था जिससे अनेक प्रकार की विसंगतियां सामाजिक जीवन को कमजोर कर रही थीं। कबीर ने अपने युग में ही वर्ण व्यवस्था के भयावह परिणाम देख लिए थे। इसलिए उन्होंने इस व्यवस्था का डटकर विरोध किया। कबीर युग में समूचे हिन्दू समाज पर ब्राह्मण समाज का वर्चस्व स्थापित था। समाज के चारों वर्गों मे उसे सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। लेकिन ब्राह्मण वर्ग मद पद के नशे में चूर होकर अन्य वर्णों के साथ विशेषकर शूद्रों के साथ अमानवीय व्यवहार करने लगा। दुर्भाग्य से यह स्थिति आज भी विद्यमान है। अनेक स्थानों पर आज भी दलितों तथा शूद्रों को मंदिरों में प्रवेश करने से रोका जाता है। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा ब्राह्मणों को यह संदेश दिया कि वह अपने इस मिथ्या गर्व को त्याग दें। कबीर ने यह भी कहा कि मूर्ति पूजा, यज्ञ, हवन, तीर्थ, व्रत, गंगा स्थान आदि सब व्यर्थ हैं। कबीर ने एक ओर तो अपने उच्च वर्ण पर मिथ्या गर्व करने वाले लोगों को खरी–खोटी सुनाई और दूसरी ओर स्वयं को नीच जाति से संबंधित बताते हुए तत्कालीन दलितों तथा शूद्रों में स्वाभिमान जगाया। वे ब्राह्मणों को फटकारते हुए कहते भी हैं–

   जो तू बाहमन ब्रह्ममनी जाया,
   और राह ते क्यूं नहिं आया।

   इसी प्रकार उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा फैलाई गई छुआ–छूत की भावना को खुले शब्दों में ललकारते हुए कहा है–

   काहे को कीजै पाण्डे छोति विचारा। छोतिहि ते अपना संसारा,
   हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध। तुम कैसे बामण पांडेय हम कैसे शुद्र।
   छोति छोति करता तुम्ही जाए। तो गर्भवात काहे को आए।

   वर्ण व्यवस्था की यह विसंगति आज भी हमारे समाज की एक चुनौती बनी हुई है। हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना होगा कि वर्ण व्यवस्था के नाम पर जब तक निम्न वर्ग के लोगों पर अत्याचार होता रहेगा, तब तक हमारे देश में लोकतंत्रीय व्यवस्था सफल नहीं हो सकेगी। उदाहरण के रूप में आज भी गांवों में उच्च जातियों के लिए अलग कुएं बने हुए हैं और निम्न जातियों के लिए अलग से कुएं बने हैं। यहां तक कि निम्न जातियों के टूटे–फूटे मकान भी उच्च जातियों से अलग–थलग हैं। उच्च जाति का कोई भी व्यक्ति निम्न जाति के व्यक्ति के साथ हुक्का पानी का आदान–प्रदान नहीं करता शादी विवाह की बात तो दूर है। अतः कबीर के द्वारा वर्ण–व्यवस्था से जुड़ी जिन विसंगतियों को उठाया गया है, उनकी प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है।

2. **मुस्लिम धर्म के पाखण्डों–आंडबरों का विरोध**–कबीर ने न केवल हिन्दुओं के धार्मिक पाखण्डों और बाह्य आडंबरों पर प्रहार किया, बल्कि मुसलमानों के

मिथ्या आचार–विचार और बाह्य आडंबरों का भी पर्दाफाश किया है। कबीर ने अपनी वाणी में इस्लाम धर्म के अनुयायियों को तुर्क नाम से अभिहित किया है। वे इस मत के ठेकेदारों को काजी, मुल्ला, शेख दरवेश आदि नामों से पुकारते हैं। इन्होंने ऐसे लोगों को शेख कहा है जो दिखावे के लिए हज जाते थे, परंतु जो नमाज पढ़कर झूठी बंदगी करते हैं। और इसी प्रकार मस्जिद पर अजां देने वाले तथा रोजा रखने वाले को मुल्ला कहा है और कुरान पढ़कर जनता को बहकाने वालों को मौलवी कहा है। कबीर के अनुसार इनको धर्म का ज्ञान नहीं है बल्कि ये लोग मिथ्याचारी, मांसाहारी तथा व्यभिचारी हैं और भोली–भाली जनता को धोखा देते हैं। एक स्थल पर कबीर कहते भी हैं–

पीरां मुरीदा काजिया सब भुलां दरवेस।
कहा थे तुम्ह किनि कीये अकति है सब नेस।
कुराना कतेबा अस पढ़ि–पढ़ि ककिरि या नहीं जाई।
दुक इम करारी जै करै हाजिरां सूर खुदाई।।

× × × × × ×

काकड़ पाथर जोड़ के मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

आधुनिक युग में भी मुस्लिम धर्म के ठेकेदारों द्वारा निम्न वर्ग के मुसलमानों पर यत्र–तत्र अत्याचार देखे जा सकते हैं। काजी, मुल्ला, शेख आदि कुरान पढ़कर जनता को बहकाते हैं और धर्म के नाम पर भोले–भाले मुसलमानों को गुमराह करते हैं। सच्चा मुसलमान किसी पर अत्याचार नहीं करता और न ही हिंसा में विश्वास रखता है परंतु वर्तमान स्थिति कबीर युग से भी अधिक भयावह हो चुकी है। इस्लाम के नाम पर गैर–मुस्लिम लोगों को काफिर कहा जाता है और उग्रवाद को बढ़ावा दिया जाता है। कबीर में इतना दृढ़ विश्वास था कि वे तत्कालीन मुसलमान शासकों को खरी–खोटी सुनाने का साहस रखते थे। परंतु आज तो यह स्थिति और भी भयावह हो गई है। इसलिए कबीर के द्वारा मुस्लिम धर्म के पाखण्डों तथा आडंबरों को उद्घाटित किया गया है। यह निश्चय ही आज भी प्रासंगिक है।

3. **धार्मिक विसंगतियों का उद्घाटन**–कबीर ने देखा कि उस समय समाज में धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड, पाखण्ड तथा अंधविश्वास आदि फल–फूल रहे थे। मुट्ठी भर धर्म के ठेकेदार करोड़ों लोगों को धर्म के नाम पर लूट रहे थे और उनका शोषण कर रहे थे। तथाकथित पुजारी, पंडित तथा पुरोहित अपने आडंबरों के व्यवहार द्वारा धर्म के रक्षक बन हुए थे। कबीर ने अपनी वाणी में ऐसे ढोंगियों तथा पाखंडियों का पर्दाफाश किया। तीर्थ स्थलों पर बैठे पंडे, पुरोहितों के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं–

वे क्यूं कासी तजै मुरारी। तेरी सेवा चोर भए बनवारी
जोगी–जोगी तपी संन्यासी। मठबेवल वसि परसैं कासी।।
तीन बेर जे नित प्रति नहावै। काया भीतर खवरि न पावै।।

× × × × × ×

टिप्पणी

पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार
ताते तो चाकी भली, पीस खाये संसार।।

आज भी धर्म के नाम पर जो पाखण्ड का खेल खेला जा रहा है, उसे देखकर कबीर जैसे समाज–सुधारक की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। आज तो धर्म का पूर्णतः व्यवसायीकरण हो चुका है। देश भर में असंख्य धर्माचार्य पनप चुके हैं। ये धर्माचार्य दूरदर्शन के माध्यम से अपने उपदेशों का प्रचार–प्रसार करते हैं। बड़े–बड़े नगरों में धार्मिक पोस्टर छाप कर दीवारों पर चिपकाए जाते हैं और लाउडस्पीकर द्वारा उनके आगमन की सूचना लोगों को दी जाती है। कहने का भाव है कि धर्म के नाम पर पाखण्ड, आड़ंबर, धोखाधड़ी इतना विराट रूप धारण कर चुकी है कि उसे समाप्त करने के लिए बहुत–से कबीरों की आवश्यकता महसूस हो रही है। आश्चर्य की बात यह है कि धर्माचार्यों ने प्रमुख नगरों के पास अपने आश्रम स्थापित कर लिए हैं। यही नहीं, ये लोग चुनाव में भी प्रयत्क्ष रूप से भाग लेने लगे हैं। हाल ही में कुछ धर्माचार्यों के काले–करनामें सामने आए हैं। अतः आज के धार्मिक पाखण्डों तथ मिथ्याचारों को समाप्त करने के लिए कबीर वाणी प्रासंगिक कही जा सकती है।

कबीर द्वारा किया गया मूर्ति पूजा विरोध आज भी प्रासंगिक हैं। अभी कुछ वर्ष पहले गणेश जी की मूर्तियों को दूध पिलाने का कर्म आरंभ हुआ। भारत के श्रद्धालुओं ने लाखों टन दूध गणेश जी को दूध पिलाने के बहाने से नालियों में बहा दिया और साथ ही अन्य भगवानों को भी दूध पिलाने का प्रयास किया। यदि यही दूध कुपोषण के शिकार बच्चों को पिलाया जाता तो समाज मे ंकितना मंगल कार्य होता। इसी प्रकार देश में ऐसे मंदिर हैं जिनमें निम्न जाति का प्रवेश वर्जित है परंतु मूर्ति पूजा तो दिन–प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। महाराष्ट्र में गणेश पूजा तथा बंगाल में काली पूजा के अवसर पर लोग करोड़ों रूपयों की मूर्तियां बनवाते हैं, सजाते हैं और पूजा करने के बाद उसे जल में बहा देते हैं। कबीर जी का मूर्तिपूजा विरोध आज भी अपनी प्रासंगिकता लिए हुए है। दूसरी ओर, इस्लाम धर्म के मौलवी और काजी मस्जिदों की मीनारों पर लाउडस्पीकर लगाकर दिन में चार पांच बार बांग देते हैं ताकि श्रद्धालुओं को घर बैठे अजान सुनाई दे। इसी प्रकार रोजा, नमाज की समस्याए निरंतर बढ़ती चली जा रही हैं।

4. **जातिगत भेद–भाव की विसंगतियों पर प्रहार**–तत्कालीन भारतीय समाज जातिगत भेदभाव का शिकार बना हुआ था। एक ओर हिन्दू समाज अनेक जातियों में बंटा हुआ था तो दूसरी ओर मुसलमानों में ऊंच–नीच की भावना विद्यमान थी। कबीर ने इन जातियों को मानवीय एकता का पाठ पढ़ाया। कबीर ने जाति–पाति, ऊंच–नीच तथा छुआछूत आदि के बारे में अपने विचार खुलकर व्यक्त किए। उन्होंने न हिन्दुओं को माफ किया न मुसलमानों को, बल्कि दोनों को खरी–खोटी सुनाई। वस्तुतः दोनों सामाजिक कुरीतियां जतिवाद, छूआछूत, ऊंच–नीच आदि भावनाएं वर्णाश्रम धर्म की ही उपज हैं। कबीर के युग मे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से पूर्णतः पिछड़ चुका था। निम्न वर्ग दो वक्त की रोटी जुटाने मे स्वयं को असमर्थ मान रहा था दूसरी ओर सत्ता वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग जीवन की सभी सुविधाएं भोग रहे थे।

कबीरदास ने इन सामाजिक विसंगतियों का उद्‌घाटन किया और समाज–सुधार पर बल दिया। इस सन्दर्भ में डॉ. कृष्ण देव शर्मा ने लिखा है–''कबीर समाज से बहिष्कृत व्यक्ति की पीड़ा को जानते थे। कितनी ही बार समाज के द्वारा ठुकराये जाने के कारण वह इस पीड़ा की गहराई स्वयं अनुभव कर चुके थे। अतः उन्होंने साफ कहा कि मानव जाति ही संसार में मनुष्यों के लिए एममात्र जाति है। केवल ईश्वर ही हमें इस जाति से बहिष्कृत कर सकता है। वह मनुष्यों को मानते थे, इससे बढ़कर कुछ नहीं। यही कारण था कि उनका झुकाव द्वैत की ओर अधिक था। किंतु क्या कबीर की केवल परिस्थितियां ही उनके क्रांतिकारी बनने के लिए उत्तरदायी हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं थी। कबीर ने जब मनुष्य को एक ही माना तो सभी की पीड़ा उनके लिए अपनी पीड़ा बन गई और वह उसका निदान करने में लग गए।''

आधुनिक युग में भी जातिगत भेदभाव सर्वत्र व्याप्त है। अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने की परंपरा स्थायी बन चुकी है। सरकारें हरिजनों के लिए मुफ्त प्लॉट बांट रही है। जिन क्षेत्रों में किसी एक जाति के अधिक मतदाता होते हैं, उस क्षेत्र में उसी जाति का उम्मीदवार खड़ा किया जाता है। ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय आदि सभी जातियों की सीमा–रेखा बनी है। जो भी व्याक्ति इस सीमा को लांघने का प्रयास करता है, उसे जात–पात की प्रताड़ना को सहन करना पड़ता है। यहां तक कि एक जाति के अंदर असंख्य गोत्र हैं। गोत्रों के कारण भी समाज में अव्यवस्था बनी हुई है। सब कुछ अस्त–व्यस्त हो चुका है। सत्ता वर्ग भी अप्रत्यक्ष रूप से जातिवाद को बढ़ावा दे रहा है। उसका लक्ष्य है–येन–केन प्रकारेण सत्ता को हथियाना और अपने वोट बैंक को सुरक्षित रखना। यहां तक कि जातिवाद के आधार पर सरकारी नौकरियां तथा परमिट कोटे मिलते हैं। ऐसी स्थिति में कबीर की वाणी की प्रासंगिकता को कैसे नकारा जा सकता है। आज कबीर जैसे सच्चे समाज–सुधारक की आवश्यकता है जो लोगों को खरी–खोटी सुना सके और उन्हें सीधे रास्ते पर ला सके।

5. **सांप्रदायिक एकता की स्थापना**–कबीर ने अपनी वाणी के द्वारा हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल दिया और दोनों संप्रदायों को एक दूसरे के समीप लाने का प्रयास किया। कबीर ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए एकेश्वरवाद की स्थापना की और यह उस वाद की मांग भी थी। हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को फटकारते हुए उन्होंने कहा–

   जे तूं बामन बामनि का जाया, आन बाटहै क्यों नहिं आया।

   जे ते तूं तुरक तुरकनी जाया, तो भीतरि खतना क्यों न कराया।।

   आचार्य हजारी प्रसाद ने शब्दों में–''जो लोग हिन्दू–मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित हैं, वे भी कबीर को अपना मार्गदर्शक मानते हैं। यह उचित भी है। राम–रहीम और केशव–करीम की जो एकता स्वयं–सिद्ध है उसे भी संप्रदाय बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते। कबीर से अधिक जोरदार शब्दों में एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया। पर जो लोग उत्साह आधिक्यवश कबीर को केवल हिन्दू–मुस्लिम एकता का पैगम्बर मान लेते हैं, वे

उनके मूल स्वरूप को भूलकर उसके एक उद्देश्य मात्र की बात करने लगते हैं। ऐसे लोग यह देखकर क्षुब्ध होंगे कि कबीर ने दोनों धर्मों की ऊंची संस्कृति या दोनों धर्मों के उच्चतर भावों में सामंजस्य स्थापित करने की कहीं भी कोशिश नहीं की और सिर्फ यही नहीं, उन सभी धर्मगत विशेषताओं की खिल्ली ही उड़ाई है जिसे मजहबी नेता बहुत श्रेष्ठ धर्माचार कहकर व्याख्या करते हैं।''

आज 21वीं सताब्दी का आरंभ हो चुका है। हमारे देश के सामने अनेक समस्याएं हैं। हमारी राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ी हुई है। दूसरी ओर पश्चिमी देशों के बढ़ते हुए प्रभाव ने हमारी संस्कृति को खतरे में डाल दिया। विदेशी शक्तियां हमारी राष्ट्रीय एकता को भंग करने का भरपूर प्रयास कर रही हैं। विशेषकर उग्रवाद हमारे लिए सबसे बड़ा खतरा है। मंदिर–मस्जिद–विवाद ने देश की शांति के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है। हमारा देश धर्म निरपेक्ष है और सभी धर्मों के अनुयायियों को यहां मिलकर रहना है। यदि सांप्रदायिक ताकतें जोर पकड़ेंगी तो हमारा देश अधिक दिन तक स्वतंत्र नहीं रह सकेगा। कबीर की यह चेतावनी आज भी हमें प्रेरणा देती है कि हम चाहे हिन्दू हों अथवा मुसलमान, हमें अपनी कुरीतियों को त्यागकर मानवतावादी धर्म को अपनाना चाहिए–

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पाइनतर सोवै यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहें घरहि में करैं सगाई।
हिन्दुन की हिंदुवाई देखों तूरकन की तुरकाई।
कहे कबीर सुनो भाई साधो कौन राह है जाई।।

कबीर ने तत्कालीन हिन्दू–मुसलमानों को यह चेतावनी इसलिए दी क्योंकि उन्होंने दोनों संप्रदायों को बहुत नजदीक से देखा था। उन्होंने काजियों तथा पंडितों द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्डों का विरोध किया साथ ही यह घोषणा की कि चाहे हिन्दू हो या मुसलमान दोनों सही मार्ग को नहीं जानते। राम–खुदा एक ही शक्ति के दो नाम हैं। उसी शक्ति की भक्ति करना ही समाज के लिए कल्याणकारी है। बाह्य कर्मकाण्डों तथा आडंबरों की आवश्यकता नहीं है।

3.2.4 निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान

निर्गुण धारा के प्राथमिक कवियों का आविर्भाव तत्कालीन निर्गुण धारा के प्रारंभिक कवियों के रूप में हुआ। ये लोग किसी पंथ अथवा संप्रदाय को नहीं चलाना चाहते थे। लेकिन कालांतर में प्रारंभिक गुरुओं के शिष्यों ने विभिन्न पंथों और संप्रदायों की स्थापना कर दी। परंतु इतना निश्चित है कि इन सब कवियों ने निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति पर ही बल दिया है।

निर्गुण काव्यधारा के विकास में सिद्धों, जैन मुनियों, नाथ साहित्य, वैष्णव भक्ति आंदोलन, महाराष्ट्र का संत संप्रदाय तथा इसलाम के प्रचार ने काफी बड़ा योगदान दिया है। निर्गुणवादी कवियों ने प्रेम के ढाई अक्षरों के सामने संसार के समस्त ज्ञान को

टिप्पणी

तुच्छ बताया है। कुछ ने इसे निर्गुण काव्य धारा कहा। कुछ ने ज्ञानश्रयी कहा। इन नामों से कोई फर्क नहीं पड़ता। सत्य तो यह है कि हिंदी साहित्य में इसका महत्व निविर्वाद रूप से आज भी स्वीकार किया जाता है।

कबीर से पहले असंख्य निर्गुण कवि हुए हैं। इनमें जयदेव, नामदेव, सदना, सैन तथा धन्ना आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। कबीर ने इस सबका आदरपूर्वक उल्लेख किया है। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने 'गीत गोविंद' के कवि जयदेव को संत जयदेव से भिन्न माना है। संत जयदेव के केवल दो ही पद मिलते हैं। संत नामदेव महाराष्ट्र के संत थे और इनको छीपा जाति का बताया गया है। बाद में ये पंजाब के गुरदासपुर जिले में बस गए। नामदेव ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पद्धति पर बल दिया। ये एक सच्चे समाज सुधारक अद्वैतवादी भक्त कवि थे।

कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदय विचारी।
घट घट अंतरि सरन निरन्तरि केवल एक मुरारी।।

कबीर के पूर्व संत कवियों में सदना का नाम भी बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इनके कुछ पद 'आदिग्रंथ' में संकलित हैं। डॉ. रामकुमार शर्मा ने इनका समय विक्रम की चौदहवीं शती का मध्य भाग माना है। संत कवि सेन जाति के नाई थे और रामानंद के शिष्य थे। इनके भी कुछ पद 'आदिग्रंथ' में प्राप्त होते हैं। कबीर के समकालीन कवियों में संत पीपा, रैदास तथा धन्ना आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। रैदास जाति के चमार थे। वे लिखते हैं–

जाति भी ओछी करम भी ओछा ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊंचे कियो है कह रैदास चमारा।।

मीराबाई ने इन्हीं से गुरु शिक्षा प्राप्त की थी। कबीर के शिष्यों में धर्मदास का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। यह जाति के वैश्य थे तथा इन्होंने कबीर के समान पर्यटन किया। कबीर की मृत्यु के पश्चात इनकी शाखा दो भागों में विभक्त हो गई– काशी शाखा, बाधवगढ़ शाखा। परंतु इन सभी निर्गुणवादी संत कवियों में कबीर ही सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

कबीर का निर्गुणवाद– कबीर का निर्गुणवाद भारतीय चिंतन परंपरा से संबंधित है, लेकिन फिर भी इस शाखा का प्रवर्तक कबीर को माना जाता है। कबीर का निर्गुण संबंधी चिंतन विशुद्ध निर्गुणवाद नहीं है क्योंकि उस पर जहां एक ओर वैष्णव भक्ति का प्रभाव है वहां दूसरी ओर वह इसलाम से भी प्रभावित है। कबीर के निर्गुण संबंधी विचार काफी मौलिक प्रतीत होते हैं। पहले बताया जा चुका है कि उनके निर्गुण के स्वरूप पर विभिन्न संप्रदायों का प्रभाव है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना होगा कि कबीर के विचार अनेक स्थलों पर मौलिक प्रतीत होते हैं। स्वयं कबीर उस निर्गुण के बारे में कहते हैं–

(i) पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहबे की शोभा नहीं, देख्या ही परमान।।
(ii) अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।
त्रिदेव शाखा भये, पात भया संसार।।

टिप्पणी

कबीर के निर्गुण राम वे हैं जो अविगत हैं। वेद पुराण, स्मृति और व्याकरण, शेष, गरुड़ और कमाल भी उसे नहीं जानते। कबीर का कथन है कि उन्हीं की शरण में जाने पर ही कल्याण होगा।

निर्गुण राम जपहु, रे भाई। अविगति की गति लखि न जाई।।
चारि वेद जाके सुमृत पुराना। नौ व्याकरणां मरम न जाना।।
सेसनाग जाके गरूड़ समाना। चरन–कंवला कंवल नहि जाना।।
कहै कबीर जाके भेदे नाहीं। निज जन बैठे हरि की छांही।।

उनका विचार है कि निर्गुण ब्रह्म जिसके हृदय में आ जाते हैं, वह अनायास ही मति, बुद्धि पा जाता है। इसीलिए वे साधक को बार–बार उसी अविनाशी का भजन करने की सलाह देते हैं।

अद्वैत के अनेक नाम– कबीर ने अपनी साखियों में अद्वैत की विवेचना की है। अद्वैत का अर्थ है– आत्मा और परमात्मा एक है, दो नहीं। जो आत्मा है, वही परमात्मा है। परमात्मा का अर्थ आत्मा है। अतः आत्मा में अद्वैत का संबंध है। अद्वैत के बारे में कबीर जी कहते हैं कि– अद्वैत तत्व अद्‌भुत है। कहने में नहीं आ सकता और हो सकता है कि कहे हुए पर सुनने वाले को विश्वास न हो, क्योंकि सुनने वाले की अनुभूति भिन्न हो सकती है। यह अद्वैत तत्व ही निर्गुण है। कबीर ने इसे अनेक नाम दिए हैं। परब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, खालिक, है।

कबीर का निर्गुण गुणविहीन है। उसका कोई रूप नहीं, रंग नहीं उसमें दिखने की कोई चीज नहीं। उसका कोई नाम नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह निर्गुण तथा निराकार है। इस संबंध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन भी है– ''परंतु यह राम या हरि कौन है? परब्रह्म, अपरब्रह्म, ईश्वर और कुछ? इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हरि, गोविंद, राम, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों को कबीर कदाचित् ही सगुण अवतार के अर्थ में व्यवहार करते हैं। जब वे अपने उपास्य को इन नामों से पुकारते हैं तो सगुण अवतारों से उनका मतलब नहीं होता।''

वस्तुतः उनका निर्गुण वह राम है जो निरंजन है, उसका रूप नहीं, रेखा नहीं, वह समुद्र भी नहीं, पर्वत, धरती, आकाश, सूर्य, चांद, पानी, पवन आदि भी नहीं है। संसार के दृश्यमान पदार्थों से विलक्षण सबसे न्यारा और वेदों से अतीत, भेदों से अतीत है।

गोब्यंदे तूं निरंजन राया।
तेरे रूप नहीं रेख नाही, मुद्रा नहीं माया।
समद नाहीं सिषर नाहीं, दरती नाहीं गगनां।
रवि सरि दोउ एके नाहीं, बहता नहीं पवनां।।
रूग न जुगन न स्यांम अथरबन, बंदन नाहीं व्याकरनां।
तेरी गति तूंहि जानै, कबीरा तो मरनां।

निर्गुण ज्ञान का महत्व– कबीर को निर्गुण का ज्ञान कैसे हुआ यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस बारे में कबीर जी कहते हैं मेरे स्वयं विचार करते–करते अपने मन–ही–मन सत्य का प्रकाश हो उठा और मुझे उसकी उपलब्धि भी हो गई। फिर वे कहते हैं कि मेरे धीरे–धीरे चिंतन करते ही उस निर्मल जल की प्राप्ति हो गई जिसका वर्णन में अपने शब्दों में करने जा रहा हूं।

''करत विचार मन ही मन उपजि ना कही गया न आया।''

कबीर ने यह भी स्पष्ट किया है कि मेरे गुरु ने मुझे उस तत्व (निर्गुण) की ओर संकेत कर दिया था। किंतु मैंने उसे अपने अनुभव के अनुसार ही ग्रहण किया है। अन्यत्र वे कहते है कि– मैं अपने अनुभव के आधार पर ही स्मरण करते–करते राम को कुछ हद तक जान पाया हूं। इस प्रकार कबीर साहब को यह राम नामक परम तत्व अकथनीय बनकर गुणातीत का भी रूप धारण कर लेता है। अन्यत्र वे उसे अलख, निरंजन, निर्भय, निराकार, शून्य स्थूल से भिन्न तथा दृश्य–अदृश्य से भी विलक्षण कहते हैं–

अलख निरंजन लखे न कोई। निरभय निराकार है सोई।।

अन्यत्र वे उसे निर्गुण को अवगति कह देते हैं जिसके नाम ग्राम आदि का कोई ठिकाना नहीं है। स्वयं कबीर स्वीकार करते हैं कि उस निर्गुण को क्या नाम दिया जा सकता है, पर वे उसे तत्– परमतत्, अनूप तत, आप निज तत परमपद्, सहज, सुनि ज्ञान, अनंत गगन, सीव आदि कई नाम दे डालते हैं। कबीर ने निर्गुण के नामों की लंबी सूची दी है।

अनिर्वचनीय रूप– सत्य तो यह है कि कबीर न तो निर्गुणवादी है न सगुणवादी। उनके अनुसार वह परमतत्व निर्गुण तथा सगुण दोनों से परे की वस्तु है। यही नहीं वह अनिर्वचनीय है। उसे लोग अजर, अमर भी कह देते हैं। किंतु वास्तव में वह है जिनके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर का निर्गुण बिना रूप या वर्ण का होकर भी सर्वत्र विद्यमान है। जब उसका आदि व अंत कुछ भी नहीं है। उसे पिंड या ब्रह्मांड के रूप में कहना भी अनुचित होगा। यदि पिंड या ब्रह्मांड को छोड़कर सबसे परे के संबंध में वर्णन किया जाए तो उसी दिशा में हरि के स्वरूप का कुछ परिचय दे सकते हैं।

इस प्रकार कबीर ने उस निर्गुण के लिए कुछ नामों का प्रयोग केवल सुविधा की दृष्टि से कर दिया है। ऐसे नाम कुछ नये नहीं हैं। प्रायः वही हैं जिनका प्रयोग उनके समय में हिंदू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, वेदपाठी या नाथपंथी करते आ रहे थे। जो भली भांति प्रचलित थे। कबीर ने निर्गुण के लिए इन नामों का प्रयोग करते समय उनके मूल अर्थ की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। वे कहते भी हैं– मैंने इस जगत में उस निर्गुण को अपने दो–दो नेत्रों से देखने की चेष्टा की है और वहां मैंने हरि के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को नहीं पाया और ये नेत्र उसी के अनुराग में लाल हो गए और मुझे उसके सिवा कुछ नजर भी नहीं आता। अंत में निम्नोक्त पद्य से कबीर के निर्गुण संबंधी विचार प्रकट होते हैं–

(i) ''लोका जानि न भूलौ भाई
खालिक, खलक, खलक में खालिक सब घर रह्यो समाई।।''

(ii) ''दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम न आना।''

निष्कर्ष– संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान सर्वोपरि है। भले ही सिद्धों और नाथों ने निर्गुण साधना के विकास में योगदान दिया हो लेकिन

टिप्पणी

कबीर ने ही इस काव्यधारा को पूर्णतया विकसित किया। दूसरा उनके निर्गुण संबंधी सिद्धांत पूर्णतया मौलिक हैं। उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है–

चेतत चेतत निसियओ नीरू। सो जलु निरमलु कहत कबीरू।।

उनका परम तत्व अलक्ष्य और निरंजन है। वह निर्भय और निराकार है। वह शून्य तथा स्थूल से भिन्न, दृश्य और अदृश्य से परे है। वे बार–बार उसी निर्गुण राम का जाप करने का उपदेश देते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. कबीर वाणी का मूलभूत प्रमाणिक संकलन है–
   (क) साखी (ख) बीजक
   (ग) सबद (घ) रमैणी
2. रहस्यवाद को 'असीम का ससीम से संबंध' कहकर किसने परिभाषित किया?
   (क) महादेवी वर्मा (ख) डॉ. रामकुमार वर्मा
   (ग) परशुराम चतुर्वेदी (घ) डॉ. गोविंद त्रिगुणायत

3.3 सूरदास

विद्यापति के बाद हिंदी कृष्णकाव्य के प्रथम कवि सूरदास हुए जिनकी प्रतिभा को पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय के प्रचार में लगाया। सूरदास ने गोपाल कृष्ण के गोकुल, वृंदावन ओर मथुरा के जीवन से संबंधित संपूर्ण आख्यान को सूरसागर में एक गीति–प्रबंध का रूप दिया। कथा की सामान्य रूप–रेखा तो उन्होंने भागवत से ही ली, परंतु उसके प्रसंगों और विवरणों को उन्होंने बहुत अधिक विस्तार दिया, अनेक नवीन घटनाओं और उपकथाओं की अवतारणा की तथा संपूर्ण कथा को भक्ति–भावना के साथ इस प्रकार संघटित किया कि उसमें उद्देश्य की एकता के साथ–साथ उपकथाओं और प्रसंगों की बहुलता तथा शैली की मुक्तता होते हुए भी संयोजन और संघटन में एकसूत्रता आ गई।

इसके अतिरिक्त विविध उपकथाएं और घटनाप्रसंग, जिन्हें लीला कहा गया है और जो संपूर्ण कृष्ण लीला के अंग हैं, स्वयं विधिवत प्रारंभ, कथा के आदि, मध्य, अवसान की योजना तथा निश्चित उद्देश्य के साथ रचे गए हैं, स्वतंत्र खंड कथा या खंड काव्य के रूप में पढ़े जा सकते हैं और प्रत्येक पद जो पहले छोटी घटना या वर्णन–प्रसंग, फिर खंड काव्य और अंत में संपूर्ण कृष्ण कथा की एक कड़ी मात्र है, स्वतंत्र रूप में अलग ही पढ़े या गाए जाते हैं।

कथा के संदर्भ की तो पाठक, गायक या श्रोता पृष्ठभूमि के रूप में स्वयं कल्पना कर लेते हैं। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है कि 'सूरसागर' मुक्तक पदों का संग्रह है। परंतु वस्तुतः वह एक साथ ही गीति–प्रबंध, कृष्ण की विविध लीलाओं तथा मुक्तक पदों का संग्रह है। कृष्ण काव्य की एक सामान्य प्रकृति यह भी है कि वह अधिकतर मुक्तक रूप में रचा गया है, क्योंकि कृष्ण काव्य में वर्णित कृष्ण की कथा अत्यंत सीमित

टिप्पणी

है। कृष्ण के जन्म, शैशव, गोपी के साथ क्रीड़ा, गोचारण, राधा तथा गोपियों के साथ रस केलि, छद्म वेशधारी असुरों का वध, गोवर्धन धारण और इंद्रदमन, मथुरा प्रवास, कंस वध, उद्धव संदेश, द्वारिका गमन तथा प्रभास क्षेत्र में गोप–गोपियों और राधा के साथ पुनर्मिलन। सूरदास द्वारा दिया गया कथा का यह विस्तार अन्य कवियों में नहीं मिलता है। (हिंदी साहित्य कोश)

सूरदास सीधे प्रभु को चुनौती देते हैं कि आज दो में से एक जायेगा। या तो आप रहेंगे या मैं रहूंगा। मैं अपने बल पर लडूंगा। सूर जब यह कहते हैं, तब उन्हें अपने प्रभु पर अटूट विश्वास होता है और वे जानते हैं कि उनके आराध्य उनकी वास्तविक आकांक्षा और आन्तरिक सहजता को समझते हैं। सूरदास अपनी पतितता पर पश्चाताप नहीं करते, गर्व करते हैं और कहते हैं कि आपने तमाम लोगों का उद्धार किया होगा, यदि सूर जैसे पतित का आप उद्धार करें, तब मैं आपको बृजराज मानूंगा। उनके विनय में भी एक ठसक है।

सूरदास ने गोपियों के विरह में भी भक्ति–भावना का अद्‌भुत समावेश किया है। उनके यहां प्रेम और भक्ति में कोई भेद नहीं है। गोपियां मुरली की ध्वनि सुनकर विभोर हो जाती हैं। रास में प्रेम भक्ति आ जाती है। गोपियों के ह्रदय में तरंगें उठने लगती हैं। उनके भीतर स्वार्थ का कर्दम जल जाता है। वे कहती हैं कि हे गोकुलनाथ! आप फिर से ब्रज में आइये और यहां माखन खाइये। अब कोई आपको मना नहीं करेगा। सूर की भक्ति–भावना में विनोद का पुट भी है। यही कारण है कि गोपियां उन पर व्यंग्य भी करती हैं। बाबू गुलाब राय ने इस प्रसंग पर आचार्य शुक्ल के मत से संवाद करते हुए लिखा है कि ''आचार्य शुक्ल जी के मत से इस प्रकार की खरी–खोटी कहलाने की बात का सखा–भाव से कोई सम्बन्ध नहीं है, वरन् यह बात विषय के अनुकूल है और इस व्यंग्य में रति का संचारी हर्ष व्यंजित है। यह ठीक है, किन्तु इन परिस्थितियों में भी तुलसी मर्यादा में बंधे रहते और अपने इष्टदेव की ऐसी हंसी न उड़ाने देते।

कुल मिलाकर सूर और तुलसी की प्रकृति में भेद स्वीकार करना पड़ेगा। तुलसी में मर्यादा का प्राधान्य था और सूर में प्रेम की समता और स्वतंत्रता। हमारे लिये दोनों ही वंद्य हैं। देवताओं में कोई छोटे–बड़े नहीं होते हैं।'' यहां स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि न तुलसी देवता थे और न सूर। दोनों भक्त थे। दोनों भागवत थे। दोनों लोकग्राही थे और दोनों का एक सामाजिक आधार था। तुलसी में दैन्यभाव प्रबल है तो सूर में सख्य–भाव। तुलसी की मर्यादा में भी स्वतंत्रता का समावेश यत्र–तत्र दिखाई देता है। सूर में जहां मर्यादा का अभाव दिखाई देता है, वहां वे सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ने का उपक्रम करते हैं। ये दोनों गृहस्थ जीवन की महत्ता को स्वीकार करने वाले भक्त कवि थे। सूर ने विषय वासना के सम्बन्ध में वैसे ही पश्चाताप किया है, जैसे कि तुलसी ने। कंचन, कामिनी और विषय–वासना का सभी सन्त और भक्त कवियों ने त्याग किया। सूरदास जी वैष्णव भक्तों की भांति अपने पुरुषार्थ पर गर्व नहीं करते और कहते हैं, 'करी गोपाल की सब होइ/जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोइ।' जो ईश्वर चाहेंगे, वही होगा, जो यह समझता है कि अपने पुरुषार्थ से हम अपने मनोरथ को पूर्ण कर लेंगे, वह झूठा है, किन्तु सूरदास इस बात पर भरोसा करते हैं कि वे अपने आराध्य को विवश कर देंगे, अपने उद्धार करने के लिये।

वे कृष्ण की शरण में दृढ़ता के साथ जाते हैं और कहते हैं, 'ज्यौं बालक अपराध कोटि करै, मातु न मानै तेइ/ते वेलि कैसे दहियत हैं, जे अपने रस भेइ/श्री संकर बहुरतन त्यागि कै विषहिं कंठ धर लेइ/माता अक्षत छीर बिनु सुत मरै, अजा–कंठ–कुच सेइ/यद्यपि सूरज महापतित है, पतितपावन तुम तेइ।' वे अपने को बालक मानते हैं, जो माता के समक्ष अपराध करता है, किन्तु माता उसे क्षमा कर देती है। वे कहते हैं कि यद्यपि मैं महापतित हूं, किन्तु आप तो पतितपावन हैं। सूर की रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सूर में भक्ति के सभी पक्ष हैं, किन्तु दास्य की अपेक्षा सख्य भाव प्रबल है। यही कारण है कि अन्त में वे अपने आराध्य से केवल भक्ति की मांग करते हैं।

3.3.1 सूर की भक्ति भावना

सूर की भक्ति–साधना और भावना दोनों का सम्बन्ध तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से गहरा जुड़ा है, जिसे समझे बिना उनकी भक्ति भावना की अर्थवत्ता और गंभीरता को समझ पाना कठिन है। सूर की भक्ति–भावना में जो लोग विलासमय चित्र देखते हैं, वे उनके वास्तविक मर्म को समझ नहीं पाते। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– ''सूरदास ने मनुष्य की विफलता का कारण भजन का अभाव बतलाया है। अगर भजन हो तो सारी विफलता महती सफलता के रूप में परिवर्तित हो जाय। सूरदास ने वस्तुतः अपने काल की सारी विलासिता का सुन्दर उपयोग किया है और कोई भी सहृदय इस बात को स्वीकार नहीं करेगा कि सचमुच उन्होंने भजन के पारस पत्थर से स्पर्श कराके विलासिता रूपी कुधातु को भी सोना बना दिया है। उस युग के मनुष्य की विफलता की प्रथम सीढ़ी है, 'आलिंगन, चुम्बन, परिरंभन, नख–छत चारु परस्पर हांसी' और सूर से अधिक और किस कवि ने इनका वर्णन किया है।''

कभी–कभी किसी कवि की कही गयी बातों का ठीक वही अर्थ नहीं होता, जो प्रथम दृष्ट्या समझ में आता है। यह बात सूर पर भी लागू होती है। भागवत में भक्ति को सर्वोपरि माना गया है, परन्तु ज्ञान और कर्म को त्यागा नहीं गया है। प्रेम रूपाभक्ति को महत्व देते हुए वैधी–भक्ति को उसकी प्राप्ति का साधन माना गया है। जो लोग यह मानते हैं कि सूरदास ने भागवतकार की भांति भक्ति को तो महत्व दिया है, किन्तु ज्ञान और कर्म की प्रतिष्ठा नहीं की, वे सूर के वास्तविक मंतव्य को ठीक से समझ ही नहीं पाते। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि ''भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म व्यर्थ हैं, इस तथ्य को द्योतित करने के लिये सूरदास जी ने एक बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त उपस्थित किया है।

उनका कथन है कि जिस प्रकार पतंग दीपक से प्रेम करता है और उसकी दीपशिखा से न डरता हुआ उस पर गिर पड़ता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अपने ज्ञानरूपी दीपक से सांसारिक दुख रूपी कूप को प्रकट देखता हुआ भी उसमें गिर जाता है। जड़–जन्तु काल रूपी व्याल के रजःतमोमय विषानल में क्यों जलता है! वह सकल मतों के अविकल वाद–विवाद के कारण वेश धारण करता है और इस प्रकार सकल निशिदिन भ्रमण करता रहता है जिससे कुछ भी कार्य नहीं सरता, अगम–सिन्धु का पार करने के यत्नों की नौका सजाकर उसे कर्मों के भार से भरता है, परन्तु सूर का व्रत तो यही है कि मनुष्य कृष्ण–भक्ति द्वारा इस भवसागर को पार कर सकता है।''

टिप्पणी

सूर के विनय के पद 'विनयपत्रिका' की तरह नहीं हैं। 'विनयपत्रिका' में बौद्धिकता का समावेश है और सूर के विनय के पदों में तन्मयता और मार्मिकता का समावेश है। भगवान के भजन से नीच व्यक्ति भी उच्च पद को प्राप्त कर लेता है। इसलिए सूर की भक्ति–साधना में ऊंच–नीच का भेद नहीं है।

सूर का समकालीन समाज विषयासक्त था। सच्ची भक्ति के प्रचार के लिये विषय से विरक्ति अपेक्षित थी, इसीलिये सूरदास ने साधारण भक्ति–विवेचन में जगह–जगह वैराग्य का महत्व प्रतिपादित किया है, किन्तु समग्र रूप से वे प्रवृत्ति मार्ग से कभी अलग नहीं हुए। यह सही है कि स्त्री और पुत्र से अपना सम्बन्ध छोड़ने की बात कभी–कभी वे करते हैं, किन्तु सच्चे मन से गृहस्थ जीवन में भी रहकर भक्त अपने आराध्य को प्राप्त कर सकता है। सूर की भक्ति का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने योग मार्ग की निन्दा की है और उसकी निरर्थकता को प्रतिपादित किया है। सूरदास जी ने सन्त मत के तत्वों को भी अपनाया है। उन्होंने माया के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है। उनके भक्ति–विवेचन से ज्ञात होता है कि वल्लभ के मिलने से पहले उनका मन स्थिर नहीं था और इसीलिये वे घिघियाते थे। यही कारण है कि उनके भक्ति–विवेचन में उत्तरोत्तर निश्चित रूप से अन्तर प्रतीत होता है। निर्गुण पंथ के प्रति प्रारम्भ में उनकी सहिष्णुता उदासीनता में परिणत होती हुयी भ्रमरगीत–प्रसंग में उनके विरोध में रूप में फूट निकली है। सूरदास ने भागवत की तरह नवधा भक्ति का विवेचन नहीं किया है, बल्कि प्रेमस्वरूपा भक्ति को ही साधन माना है। उन्होंने श्रवण, स्मरण और कीर्तन की महिमा को स्थापित किया है और भगवान की लीला के वर्णन पर बल दिया है, 'जो यह लीला सुने सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै/जो पद स्तुति सुनै सुनावै, सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै।' यहां सूरदास ज्ञान और भक्ति में भेद नहीं करते। आत्मनिवेदन तथा मधुर भक्ति उनकी भक्ति–भावना के अन्य सोपान हैं।

सूर की भक्ति–भावना के सन्दर्भ में माया, ब्रह्म, जीव, ज्ञान, कर्म आदि का भी मीमांसकों ने विवेचन किया है। सूरदास कहते हैं कि तृष्णा माया है, यह कभी तृप्त नहीं होती, वेद रूपी वृक्ष के पत्तों को खा जाती है, अष्टादश पुराण रूपी जलाशय का जल पी जाती है, फिर भी उसकी प्यास शान्त नहीं होती। यह षड्दर्शन रूपी रसों को अपने सम्मुख रख लेती है। इसके अतिरिक्त वह अहितकारी अभक्ष्य पदार्थों को भी खा जाती है, जिनका वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने सूरसागर के एक पद में कहा है कि ''माधव! यह मेरी एक गाय है, बड़ी ही दुष्ट। मैं बहुत हटकता हूं, पर सर्वदा कुमार्ग पर ही चलती है। बड़ा अच्छा हो, यदि आज से आप ही इसे अपने आगे करके चराने ले जाएं। यह दिन रात वेद के वन में ईंख उखाड़ती हुयी घूमती है। हे गोकुलनाथ! आपकी महती कृपा होगी, यदि आप अपनी गायों में इसे भी सम्मिलित कर लें। आपके आश्रय को पाकर, आपके स्वीकृति–सूचक वचनों को सुनकर मैं सुखपूर्वक नींद ले सकूंगा। हे भगवान! यदि मैं इस ममत्व–रुचि से निवृत्ति पा सका तो निश्चिन्त हो जाऊंगा और जन्म धारण नहीं करूंगा।'' यह गाय प्रतीकवत है। यह ममता में बांधती है, इससे मुक्त हुए बिना हरि–दर्शन नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट होता है कि सूरदास को माया के सन्दर्भ में ठीक–ठीक ज्ञान था। वे ब्रह्म और जगत में द्वित्व का अनुभव नहीं करते थे।

उनका मानना था कि जैसे दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है, वैसे ही सृष्टि में ब्रह्म प्रतिबिम्बित होता है। सूरदास ने कृष्णभक्ति में रागानुराग भक्ति की प्रधानता का समावेश किया है, जिसमें लोक तथा वेद दोनों समाहित हो जाते हैं। कुछ विद्वानों ने सूर की भक्ति निरूपण में पुष्टि मार्ग का भी उल्लेख किया है। पुष्टिमार्गीय सेवा में क्रियात्मक सेवा के पश्चात् भावनात्मक सेवा की संभावना मानी गयी है। सूरसागर के पद संख्या 4148 के हवाले से डॉ. मुंशीराम शर्मा कहते हैं कि "सूर कृष्ण के प्रति अनन्य रूप से समर्पित थे। इसी समर्पण भावना के साथ पुष्टिमार्गीय सेवा का आरम्भ होता है और भक्त में भगवान के स्वरूप को अनुभव करने की शक्ति आती है। यह सेवा भी भावना प्रधान है। पूजा–उपासना की भांति कर्मकांड की क्लिष्टता इसमें नहीं होती। श्रीकृष्ण की लीला के साथ अपने जीवन–क्रम को लगा देना और उन्हीं के भजन में मन को अनुरक्त रखना, पुष्टिमार्गीय सेवाविधि की विशेषता है। यह सेवा विधि दो प्रकार की है, नित्य सेवा विधि और वर्षोत्सव सेवा विधि। नित्य में वृजांगनाओं जैसी वात्सल्य भक्ति आती है।''

सूरदास ने वेद को प्रमाण नहीं माना है। मानव मन की इच्छाओं के वर्णन के संदर्भ में भी सूरदास की भक्ति–भावना का अलग रंग लक्षित होता है। सूरसागर के पद संख्या 4653 में गोपियां कहती हैं कि 'हे उद्धव! तुम्हारे वेद–वचन तो प्रामाणिक हैं, पर हमारा मन उन्हें प्रामाणिक मानने में आनाकानी करता है। तुम्हीं बताओ, वेद के अविनाशी, अलख, अगोचर प्रभु का ध्यान कैसे किया जाय! कृष्ण का कमल के समान खिला हुआ मुखमंडल, उसमें खंजन पंक्षी की तरह खेलते हुए दोनों नेत्र, इस मुद्रा के सम्मुख तुम्हारी योग की मुद्रा क्या आकर्षण रखती है! तुम जिस ईश्वर का ध्यान करना बतलाते हो, वह हमारा कृपालु केशव तो जान नहीं पड़ता, जो अपनी अधर–सुधा का पान कराकर अब विरक्त बना हुआ हमारे लिये ज्ञान का संदेश भेज रहा है, वह कृष्ण हमारे नेत्रों के सम्मुख था, तुम्हारा कृष्ण नेत्रों के पीछे हृदय में समाया हुआ है। यदि इस हृदयस्थ कृष्ण में कुछ भी सहृदयता, सहानुभूति और संवेदना का अंश होता तो हम पीड़ितों की पीड़ा का अनुभव करके हृदय से बाहर आकर बोलने लगता, पर जिसका कोई रूप नहीं, रेखा नहीं, उसका मूठ के समान स्मरण करके कोई कैसे भुलावे में पड़े!'

इससे साफ स्पष्ट होता है कि सूर की भक्ति–भावना पूरी तरह सगुण लीला से जुड़ी हुयी है। उसका आधार विश्वास था। बिना विश्वास के भक्ति नहीं हो सकती। वैष्णव भक्ति भाव से उत्पन्न विचारों के विवेचन से भी यह स्पष्ट होता है कि सूर की भक्ति में लौकिकता का समावेश किसी न किसी रूप में अवश्य था। प्रेम किसी भी प्रकार का हो, उसमें एक विचित्र आकर्षण होता है। इस आकर्षण के बिना प्रेम नहीं हो सकता। इसलिये दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सूर भगवान के मंगलमय रूप के प्रति आसक्त थे। उन्होंने व्यसनों को छोड़ने के लिये बार–बार कहा है तथा संत महिमा को प्रतिपादित किया है। सूर की भक्ति–भावना में योग, यज्ञ की अपेक्षा सेवा, सत्संग और भजन का महत्व अधिक है। यज्ञादि कर्मों की अपेक्षा तन्मयता और समर्पण को भी सूर ने अधिक महत्व प्रदान किया है।

सूरदास की भक्ति–भावना मानव धर्म से सम्बन्धित है। उनका भाव–लोक सहज, सरल, सुगम और सुलभ भक्तिमार्ग से सम्बद्ध है। इस भावबोध के अनुसार इष्टदेव की भाव–मूर्ति के विविध रूप तथा उसके साथ भक्त के अनेक प्रकार के सम्बन्ध हो सकते

टिप्पणी

हैं। इन सम्बन्धों को अपने विनय के पदों में विभिन्न तरीके से सूरदास ने प्रतिष्ठित किया है। सूर की भक्ति–भावना के संदर्भ में प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है : ''भक्ति–धर्म की भावमूलक व्यापकता सूरदास ने अनेक आख्यानों और दृष्टान्तों के सहारे व्यंजित की है। उनके मत में भक्ति की केवल एक शर्त है–भगवान का सतत् ध्यान। किस भाव से उनका ध्यान किया जाये, यह साधक के स्वभाव और उसके आत्मिक विकास पर निर्भर है। किसी भी भाव से किया गया हरि का भजन जितना ही दृढ़, तन्मयतापूर्ण एवं समस्त चेतना को केन्द्रीभूत करने वाला होगा, भक्त भी उतने ही उच्च एवं श्रेष्ठ पद का अधिकारी होगा। रासलीला के अन्त में परीक्षित ने शंका की कि गोपियों ने कृष्ण के ब्रह्मत्व की अवहेलना करके उनको अपने पति के रूप में देखा।'' इसका उत्तर सूरदास के पदों में जगह–जगह मिल जाता है।

कवि की क्रमिक विकासशील तन्मयता और वर्णन–विस्तार के विचार से सूरसागर में प्रदर्शित भक्ति–भाव को शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य के क्रम से रखा जा सकता है। सूरदास की दास्य भाव की भक्ति में सेवक की अधमता के तो अतिरंजित चित्र हैं, परन्तु उसको चमत्कृत करने वाले स्वामी के वैभव, पराक्रम और गौरव के चित्र बहुत कम हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने भक्त की अधमता का सम्बन्ध भगवान की राजसी महत्ता के साथ न जोड़कर उनकी दैवीय कृपा के साथ ही जोड़ा है। प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है कि ''साधारणतया सूरदास दास्य भाव के प्रकाशन में भगवान की भक्त वत्सलता और पतित पावनता के सहारे ही उद्धार पाने की आशा करते हैं।.... कई प्रकरणों में चित्रित भक्त भगवान के समक्ष अपने पातकों की भारी गठरी सर पर लादे आता है और चुनौती देता है कि युग–युगान्तर की पहली पंक्ति में उसका स्थान है। इस चुनौती के बल पर वह पतित पावन भगवान की कृपा की अभिलाषा ही नहीं, उसे पाने का विश्वास भी प्रकट करता है। इन दीन प्रार्थनाओं में यद्यपि भक्त का सम्पूर्ण आत्म–समर्पण स्पष्ट ही लक्षित होता है, फिर भी उसे सांसारिक विषय–वासनाओं का भय बराबर बना रहता है और वह निरन्तर भगवान के निकट जाने के लिये प्रयत्नशील जान पड़ता है। उसका प्रयास सफल होता नहीं दिखायी देता, उसकी भक्ति पूर्णरूप से परिणाम–निरपेक्ष तथा स्वतःपूर्ण नहीं जान पड़ती।''

उपरोक्त कथन में निहित अन्तर्विरोध को छोड़ दें तो यह तथ्य उभरकर आता है कि सूर ने अपनी पतित पावनता को दैन्य का विषय नहीं बनाया है। सूरसागर के पद संख्या 616 में वे कहते हैं कि ''मैं अपनी विनती प्रभु को कैसे सुनाऊं! मैं कभी अपनी विनती सुनाने के लिये समय ही नहीं पाता। सबेरे सुनाना चाहता हूं तो संकोच होता है कि प्रभु की नींद में खलल पड़ेगा। दिन निकलने के बाद सुनाना चाहता हूं तो वहां तमाम मुनिगणों की भीड़ होती है, दोपहर में सुनाना चाहता हूं तो सेनापतियों की भीड़ देखता हूं, संध्या समय सुनाना चाहता हूं तो नारदादि मुनि आ जाते हैं। इसलिये हे प्रभु! आपके पास मैं अपनी विनती भेज रहा हूं।''

सूर की भक्ति–भावना का सबसे प्रमुख भाव सख्य–भाव है। ब्रजलीला वर्णन में कृष्ण के समशील बालकों के साथ खेलने योग्य होते ही सूर को सख्य भाव के प्रदर्शन का अवसर मिल जाता है। हलधर, सुबल, सुदामा और श्रीदामा का उल्लेख सख्य भाव के संदर्भ में ही सूर ने किया है। प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है ''सखाओं के प्रेम में जो अभिन्नता और आत्मीयता है, वही इस भाव के आत्मसमर्पण की स्थिति है। कृष्ण प्रेम

टिप्पणी

के अतिरिक्त सखाओं में किसी अन्य भाव का संकेत भी नहीं मिलता। वे कृष्ण की लकुटी, कमरी और मुरली में इतने आसक्त हैं कि संयोग की अवस्था में ही उनसे बिछुड़ने की आशंका कभी–कभी उन्हें व्यथित कर देती है।

मुरली की ध्वनि निरन्तर उनके कानों में गूंजती रहती है, फिर भी उसे सुनने की उत्कंठा व्यसन की दशा तक पहुंच गयी है। वे कभी उससे तृप्त नहीं होते। सख्य भाव को भक्ति–धर्म की भावात्मक पूर्णता तक पहुंचाने के लिये सूरदास ने न केवल श्रीकृष्ण के गोप–रूप और गोपलीला के प्रति संयोग दशा में सखाओं की उत्कट आसक्ति प्रदर्शित की है, वरन् वियोग की दशा में सखा गण भी विरह से अभिभूत दिखाये गये हैं।'' गोचारण के वर्णन में भी सखाभाव है। वन में छाक खाते समय भी सखाभाव है। कृष्ण सखाओं को अपनी मधुर लीलाओं में भी अपने साथ रखते हैं। माखन लीला साथ–साथ करते हैं तथा दान लीला में भी साथ रखते हैं। कृष्ण के सखा उनके गुप्त रहस्यों को भी जानते हैं। सख्य–भाव की यह मार्मिकता अन्यत्र दुर्लभ है।

सूर की भक्ति–भावना का एक रूप वात्सल्य–भाव में भी निहित है। वात्सल्य–भाव भक्ति का शुद्ध भाव भी है, जिसे इष्टदेव के नाम, रूप, गुण, व्यापार तथा किसी बाह्य परिस्थिति की अपेक्षा नहीं है, वह इन्द्रियातीत है। वैराग्यपूर्ण भक्ति में इष्टदेव के अतिरिक्त सांसारिक विषयों के प्रति जिस उदासीनता की आवश्यकता बतायी जाती है, वह वात्सल्य भाव में सहज सुलभ है। प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है कि ''कवि ने वात्सल्य भाव का प्रकाशन प्रधानतया यशोदा और नंद के द्वारा किया है। देवकी, वसुदेव, रोहिणी तथा वयस्क व्रजनारियों का स्नेह भी वात्सल्य भाव का है, किन्तु उनमें यशोदा जैसी तल्लीनता नहीं है। वे यशोदा की भांति कृष्ण के माहात्म्य से सर्वदा उदासीन नहीं रहतीं। यशोदा का वत्सल स्नेह इतना अधिक तन्मयतापूर्ण है कि कृष्ण के अतिलौकिक कार्यों को प्रत्यक्ष देखते हुए भी उसका भाव अक्षुण्ण रहता है। यही नहीं, जिस प्रकार यशोदा कृष्ण के द्वारा पूतना, काग, तृणावर्त, अघ, वक, वृषभ आदि के संहार को देखते हुए भी कृष्ण को सदैव एक बालक के रूप में ही देखती हैं, उसी प्रकार कृष्ण की राधा और गोपियों से सम्बन्धित क्रीड़ाओं पर या तो वे विश्वास ही नहीं करतीं या उनकी उपेक्षा करती हैं।'' यहां यदि राम और कौशल्या के सम्बन्धों को सामने रखा जाय तो सूर के वात्सल्य भक्ति–भाव का महत्व स्वतः समझ में आ जाता है। कौशल्या राम को परब्रह्म मानती हैं।

सूरदास की भक्ति–भावना का एक स्वरूप माधुर्य–भाव में भी निहित है। कुछ विद्वानों का मत है कि उनके भाव–भेदों में इसका सर्वाधिक महत्व है। इस भाव के आधार पर आराध्य के साथ जिस निकटता और आत्मीयता का सम्बन्ध बनता है, वह अन्य भावों के आधार पर सम्भव नहीं है। दास्य में लघुता और महत्ता का भाव होता है। सख्य में अन्तर्जगत को पूर्णतः अभिभूत कर सकने की क्षमता नहीं होती। प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा का कहना है कि ''सूरदास ने गोपियों को भले ही श्रुति की ऋचायें कहा हो, किन्तु जिस रूप में उन्होंने उनका चित्रण किया है, उस रूप में वे मनुष्य के काम भाव की मूर्तिमान प्रतिमा ही हैं और गोपियों के कृष्ण मूर्तिमान सौन्दर्य और रस की प्रतिमा हैं, जो नेत्र, श्रवण आदि इन्द्रियों और चंचल मन को सहज ही स्ववश कर लेती है। काम भाव से उद्वेलित गोपियां सर्वथा भावमयी हैं, उनका बुद्धि–व्यापार पूर्णरूपेण मोह से आवृत्त है।'' सूरदास ने माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में काम को

उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में माधुर्य भाव का विकास और विस्तार सूर की भक्ति–भावना का विरल अध्याय है।

3.3.2 भ्रमरगीत परंपरा एवं सूर

भ्रमरगीत का उद्देश्य श्रृंगार के वियोगपक्ष और वात्सल्य का प्रदर्शन है। अपने कथन के पक्ष में सिंहल ने गोपियों की विरहावस्था का उल्लेख किया है। गोपियां इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकतीं कि उनके विरह–दुःख को देखकर कोई उपदेश भी दे सकता है। इसलिए जब उद्धव बार–बार योग का राग अलापने लगते हैं तो वे उन्हें खरी–खोटी सुनाये बिना नहीं रह सकतीं। इससे भी स्पष्ट होता है कि भ्रमरगीत में गोपियों के विरह–दुःख को ही रूपायित किया गया है। कुछ विद्वानों का कथन है कि भ्रमरगीत उपालम्भ–काव्य की कोटि में आता है। यद्यपि भारतीय–साहित्य में उपालम्भ–काव्य का साहित्यशास्त्रीय विवेचन प्राप्त नहीं होता।

कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालम्भ देना एक अवस्था है और फिर उसमें निहित दार्शनिक भूमि का निदर्शन दूसरी अवस्था है। ध्यान देने की बात यह है कि गोपियों ने कृष्ण के प्रति उपालम्भ तो दिये हैं, किन्तु उसमें घृणा, दुर्भावना, प्रतिशोध, अमैत्री आदि के भाव नहीं हैं। डॉ. ओमप्रकाश सिंहल कहते हैं कि ''उपालम्भ–काव्य में केवल आरोप ही नहीं हुआ करते, अपितु उसमें आत्मनिवेदन का भी भाव विद्यमान रहता है। यह आत्मनिवेदन अपनी दुर्दशा अथवा दयनीय अवस्था का विवरण देकर अन्यायी को पिघलाने और उसके मन में दया–भावना का संचार करने के लिए नहीं हुआ करता, अपितु यह तो इसलिए हुआ करता है कि अन्याय करने वाले के मन पर चोट पड़े–यह वह समझे कि उसके अन्याय का क्या परिणाम हुआ और वह अपने कृत्य पर लज्जित हो उठे। गोपियों ने भी उद्धव को कृष्ण का प्रतिनिधि मानकर जो उपालम्भ दिये हैं, उनमें उनकी विवशता का अत्यन्त मार्मिक निरूपण हुआ है।''

कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि सूरदास ने प्रकृति चित्रण को मानवीय रूप प्रदान करने के लिए भ्रमरगीत का आयोजन किया है। राधा और गोप–गोपियां वृंदावन के कुंजों, करीलों, कदम्बों, तमालों, पशु–पक्षियों के सहचर बनकर सामने आते हैं। भ्रमरगीत में केवल तीन रूपों आलम्बन, उद्दीपन तथा अलंकरण के रूप में प्रकृति का उपयोग किया गया है। वस्तुतः भ्रमर गीत के उद्देश्य को समझने के लिए सूरसागर के उस स्थल को गौर से देखना आवश्यक है, जहां उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर जाते हैं।

इसकी दार्शनिक पीठिका के बारे में भी विद्वानों ने विचार किया। फिर भी डॉ. ओमप्रकाश सिंहल ने सगुण ब्रह्म के प्रति अटूट निष्ठा की अपेक्षा इस प्रसंग का सम्बन्ध प्रकृति से जोड़ना ज्यादा श्रेयस्कर समझा है। वे कहते हैं कि ''प्रियतम कृष्ण के अभाव में गोपियों के लिए प्रकृति के सारे उपकरण दुखदायी हो जाते हैं। कुंजें उन्हें अपनी वैरिन प्रतीत होती हैं तथा लतायें ज्वालाओं का पुंज लगती हैं। यमुना का बहना, पक्षियों का बोलना, भौरों का गुंजार करना तथा कमल का खिलना उन्हें एकदम व्यर्थ प्रतीत होता है। कृष्ण के अभाव में गोपियां इतना दुःखी हैं कि वे प्रकृति के सम्पूर्ण उपकरणों से सहायता की अपेक्षा रखती हैं, उन्हें मधुवन का हरा–भरा होना नहीं सुहाता। वे तो यह मानती हैं कि कृष्ण के अभाव में मधुबन को भी अपनी हरियाली छोड़ देनी चाहिये।''

टिप्पणी

वस्तुतः भ्रमरगीत की संरचना में अनेक ऐसे स्थल प्राप्त होते हैं, जहां सूर का वाग्वैदग्ध्य प्रकट होता है। सूरदास ने भ्रमरगीत के पदों की रचना करते हुए प्रतीकों को भी उपादान के रूप में ग्रहण किया है। अलंकारों का प्रयोग करते हुए उन्होंने लोकमानस की अभिवृत्तियों को ओझल नहीं होने दिया है। इसलिए भ्रमरगीत को केवल भाव एकता तथा रागात्मक अन्विति के अर्थ में ही नहीं ग्रहण करना चाहिये। इसमें वैयक्तिकता भी उतनी मुखर नहीं है, जितनी कि आमतौर पर आलोचकों द्वारा निदर्शित की जाती है। भ्रमरगीत गोपियों की सामूहिक अभिव्यक्ति है, इसलिए उसमें सामाजिकता का आद्यंत समावेश है।

सूर कृत भ्रमरगीत पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसे गीत काव्य की परम्परा में रखकर उसकी अन्तर्वस्तु का विवेचन किया है। उनके अनुसार ''जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है, उसी प्रकार प्रेम भाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। अतः भगवद्भक्ति की साधना के लिए इसी तत्व को वल्लभाचार्य ने सामने रखा और उनके अनुयायी कृष्ण–भक्त कवि इसी को लेकर चले। गोस्वामी तुलसीदास जी की दृष्टि व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त लोकपक्ष पर भी थी। इसी से वे मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र को लेकर चले और उसमें लोकरक्षा के अनुकूल जीवन और वृत्तियों का भी उन्होंने उत्कर्ष दिखाया और अनुरंजन किया।'' इससे यह ध्वनि निकलती है कि भ्रमरगीत की साधना व्यक्तिगत है, किन्तु इसी प्रसंग में आचार्य शुक्ल ने विस्तार में जाकर इसके लोकपक्ष का भी संकेत किया है। उद्धव के ज्ञानयोग की गोपियां कद्र नहीं करतीं। उद्धव की साधना व्यक्तिगत है और गोपियों की साधना समूहगत है। सूरदास ने लिखा है :

फिर ब्रज बसहु गोकुलनाथ।
बहुरि तुमहिं नहिं जगाय पठावौं गोधनन के साथ।
बरज्यौं न माखन खात कबहूं देहुं देन लुटाय।
कबहुं न दैहौं उलाहनों जसुमति के आगे जाय।
दौरि दाम न देहुंगी लकुटि न जसुमति पानि।
चोरि न देहुं उघारि किये अवगुन न कहिहौं आनि।
करिहौं न तुमसे मांग हठ हठिहौं न मांगत दान।
कहिहौं न मृदु मुरली बजावन, करन कुसौं गान।

गोपियां भोली–भाली प्रतिज्ञायें करती हैं। उद्धव को यह संदेश देती हैं कि कृष्ण आयें और गोकुल में निवास करें। जिस–जिस बात की उन्हें हमसे शिकायत रही है, वे बातें अब नहीं होंगी। यहां प्रेम–भक्ति का अन्यतम रूप प्रकट हुआ है। आचार्य शुक्ल इसे आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा मानते हैं।

गोपियां उद्धव से यह भी कहती हैं कि तुम तो यहां की दशा देख ही रहे हो, कह देना कि जब तक ये सभी आफतें यहां से टल न जाएं, तब तक वे वहीं रहें। यह भी प्रेम की पराकाष्ठा है। आचार्य शुक्ल ने भ्रमरगीत में कुब्जा के नाम के बार–बार उल्लेख पर सवाल भी उठाया है और वचन की वक्रता को भी संकेतित किया है। उन्होंने लिखा है कि ''सूरदास जी वल्लभाचार्य जी के शिष्यों में से थे। वल्लभाचार्य जी एक ओर तो ज्ञानमार्ग की वेदान्त शाखा के प्रवर्तक थे और दूसरी ओर भक्तिमार्ग की एक

अत्यन्त प्रेमोपासक सम्प्रदाय के। वल्लभाचार्य जी का अद्वैतवाद शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। रामानुजाचार्य जी ने अद्वैत को दो पक्षों से युक्त या विशिष्ट दिखाया था। वल्लभ ने यह विशिष्टता हटाकर ब्रह्म को फिर शुद्ध किया।'' आचार्य शुक्ल ने यह भी कहा है कि जगत के नाना रूपों में ब्रह्म की जो प्रत्यक्ष सत्ता दिखायी पड़ रही है, उसका जो सगुण रूप चारों ओर भाषित हो रहा है, उसका बार–बार निषेध और निर्गुण ब्रह्म का अत्यन्त सूक्ष्म निरूपण सुनकर गोपियां उद्धव से कहती हैं कि तुम व्यर्थ तिनके की ओट में इतना चमकता हुआ सुमेरु छिपाने का प्रयत्न कर रहे हो। अपने कथन के समर्थन में उन्होंने सूर का एक पद उद्धृत किया है :

रेखन रूप वरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ, दरस वैसे को तुम कबहूं हो पावत।
मुरली अधर धरत है सो पुनि गोधन बन–बन चारत।
नैन विसाल, भौंह बंकन करि देख्यौ कबहूं निहारत।
तन त्रिभंग करि, नटवर वपु धरि पीताम्बर तेहि सोहत।
सूर स्याम ज्यौं देत हमें सुख त्यों तुमको सोउ मोहत।

यहां 'बतावत' शब्द की व्याख्या करते हुए शुक्ल जी ने इसमें निहित व्यंग्य की ओर इशारा किया है। गोपियां उद्धव से कहती हैं कि तुम ऐसे स्वरूप में मन लगाने के लिए कह रहे हो, जिसका कोई आकार नहीं है, कोई लक्षण नहीं है। ज्ञानमार्गी वेदान्तियों और दार्शनिकों के सिद्धान्तों की लोक में अव्यवहार्यता पर भी गोपियां झुंझला उठती हैं। वे कहती हैं कि इसकी बात कौन सुने, जो कहता कुछ और है और करता कुछ और है। निर्गुण की नीरसता और सगुण की सरसता को स्थापित करना भ्रमरगीत का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है–इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ज्ञानमार्ग का गोपियों ने तिरस्कार किया। उद्धव पर व्यंग्य भी किया, किन्तु यह भी कहा कि ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ हो सकता है, किन्तु हमारे लिए नहीं। वे कहती हैं, 'उधो! तुम अति चतुर सुजान/द्वै लोचन जो विरद किये श्रुति गावत एक समान/भेद चकोर किये तिनहू में विधु प्रीतम, रिपु भान।' अर्थात् आप तो ज्ञानी हैं, लेकिन आप यह जानते हैं कि चकोर के लिए चन्द्रमा प्रिय है और सूर्य दुश्मन। उद्धव और गोपियों की बात चल ही रही थी कि एक कोयल बोल उठी, तब गोपियां कहती हैं, 'उधो! कोकिल कूजत कानन/हम तुमको उपदेश करत हौ भस्म लगावत आनन।' गोपियां कहती हैं कि सुनो कोयल कूक रही है और तुम हमसे राख मलने को कह रहे हो। यह मानव प्रकृति के विपरीत और जीव प्रकृति के विपरीत है। जिसका रूप नहीं है, उसका ध्यान कैसे किया जाए! इससे स्पष्ट है कि सूरदास ने भ्रमरगीत की रचना गोपियों के विरह की अभिव्यक्ति के लिए ही नहीं की, अपितु ज्ञानमार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग को और निर्गुण की अपेक्षा सगुण को श्रेष्ठ और ग्राह्य बनाने के लिए की। इस प्रक्रिया में उन्होंने काव्य की विभिन्न उक्तियों का आश्रय लेते हुए प्रकृति को उद्दीपन के रूप में ग्रहण किया।

भ्रमरगीत परंपरा में सूरदास के भ्रमरगीत का स्थान

भ्रमरगीत की परम्परा भारतीय साहित्य में बहुत प्राचीन है। विरहावस्था की प्रत्येक दशा का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण भ्रमरगीतों में उपलब्ध है। यह परम्परा एक ओर भक्तिभावना से परिपूर्ण है तो दूसरी ओर कलाभिरुचि और शृंगार भावना की अभिव्यक्ति

के अवसर भी इसमें पर्याप्त हैं। भ्रमरगीत वह सरस धारा है, जिसमें सामाजिक तथा धार्मिक भावनाओं और विचारों की प्रतिच्छाया दिखाई देती है। स्नेहलता श्रीवास्तव ने लिखा है कि ''भ्रमरगीत की घटना अथवा कथा का सम्बन्ध भागवत के दूसरे अध्याय से है।

इसकी कथा अत्यन्त संक्षिप्त है, फिर भी भ्रमरगीतकारों ने इस लघु प्रसंग को प्रस्तुत करने में मौलिकता का परिचय दिया है। भ्रमरगीत को विस्तृत, व्यापक एवं कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय सूरदास को है। सूरदास ने दोनों अध्यायों की कथा में सूक्ष्म परिवर्तन कर अत्यधिक सरस और मनोरम बना दिया है। भागवत में ब्रजस्मृति–प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त है। श्रीकृष्ण जब गुरुगृह से मथुरा आते हैं तो उन्हें माता–पिता और गोप–गोपियों की स्मृति सताती है। वे उन्हें सांत्वना देने के लिए अपने प्रिय सखा और मंत्री उद्धव को ब्रज भेज देते हैं।'' सूरदास ने उद्धव को ब्रज भेजने के लिए तीन कारणों की परिकल्पना की। पहला कारण भागवत से मिलता–जुलता है, किन्तु दूसरा और तीसरा कारण उनका मौलिक है। ब्रजस्मृति का प्रसंग जगन्नाथदास रत्नाकर के उद्धव शतक में भी आया है, किन्तु नाटकीय ढंग से। भागवत में भ्रमरगीत प्रसंग के अन्तर्गत केवल कृष्ण के मौखिक संदेश का ही वर्णन है। सूरदास के यहां लिखित संदेश भी है।

सूरदास ने पत्र–योजना की सृष्टि कर इसे विस्तृत और अधिक मार्मिक बना दिया। भागवत में उद्धव–गोपी–संवाद के मध्य भ्रमरप्रवेश के कारण ही इसका नाम भ्रमरगीत पड़ा। सूरदास ने भी इसका उल्लेख किया है, 'एहि अन्तर मधुकर इक आयौ/निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै सुन्दर सबद सुनायौ/कूजन लागि ताहि गोपिका कुब्जा तोहि पठायौ/कीधौं सूर स्याम सुन्दर कौ हमें संदेशो लायौ।' नन्ददास ने भी उद्धव–गोपी–वार्तालाप के मध्य भ्रमर का प्रवेश कराया है। भ्रमरगीत की परम्परा के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस कथा का विकास विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न स्तर पर होता रहा है, किन्तु मूल भावना एक जैसी बनी रही। राधा और कृष्ण के परस्पर प्रेम सम्बन्धों को अभिव्यक्त करने का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम भ्रमरगीत को माना गया है। भ्रमरगीत के दार्शनिक और धार्मिक पक्ष भी हैं, जिसकी तरफ आलोचकों ने ध्यान आकृष्ट किया है।

भागवत के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में भ्रमरगीत की रचना अन्यत्र नहीं मिलती। लोकसाहित्य में विद्यापति ने भ्रमरगीत की परम्परा को आगे बढ़ाया। वे हिन्दी के पहले कवि हैं, जिन्होंने इस प्रसंग की अवतारणा की। जहां तक सूर के भ्रमरगीत का प्रश्न है, वह अष्टछाप के अन्य कवियों से अलग है। नन्ददास के भ्रमरगीत में गोपियां अधिक व्यवहारकुशल दिखाई देती हैं। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि ''सूर का विस्तृत भ्रमरगीत बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत विभिन्न घटनाओं और पात्रों का विकास बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। स्थूल रूप से इसका विभाजन दो भागों में किया जा सकता है। प्रथम भाग में कृष्ण के वियोग में व्रजवासियों की दशा और कृष्ण के प्रति यशोदा, नन्द आदि के द्वारा भेजे गये संदेशों से लेकर उद्धव के ब्रज–आगमन तक के पद रखे जा सकते हैं और दूसरे में उद्धव–गोपी संवाद से प्रभावित होकर ब्रज से लौटने तक के।''

समूचा भ्रमरगीत भक्ति–भावना से आप्लावित है। उसमें एकनिष्ठता भी है, उपालम्भ भी है और गहरी रागात्मकता भी है। गोपियां कृष्ण पर अपना एकाधिकार रखती हैं और इसीलिए कहती हैं कि 'सखी री का के मीत अहीर'। विरह वेदना से पीड़ित गोपियां कृष्ण को संदेश भेजती हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार से अपनी दशा प्रकट करती हैं। उद्धव को ब्रज भेजने के कारण भ्रमरगीत के साथ सगुण भक्ति की महत्ता स्थापित होती है। सूरदास ने उद्धव के योग का कटु संदेश सुनने के बाद गोपियों द्वारा 'पाती' लिखने की प्रक्रिया के द्वारा भ्रमरगीत की परम्परा को नये धरातल पर स्थापित किया है। भ्रमर का अवतरण होने के पश्चात् मूल भ्रमरगीत का प्रारम्भ होता है। गोपी–उद्धव के इस संवाद में गोपियां उद्धव को बोलने का बहुत ही कम अवसर देती हैं। योग की बात सुनकर वे ताबड़तोड़ और लगातार प्रश्न करती चली जाती हैं, जिनका उत्तर उद्धव के पास नहीं था।

भ्रमरगीत के पदों में दर्शन, साहित्य, ज्ञान, योग, संस्कृति, समाज आदि से जुड़े हुए प्रश्न भी समाविष्ट हैं। सूर का उद्देश्य यद्यपि किसी वाद–विवाद में पड़ना नहीं था, तथापि उन्होंने ज्ञानयोग और भक्तियोग के संघर्ष में भ्रमरगीत के माध्यम से भक्तियोग का पक्ष लिया। गोपियां भक्तिमार्ग को योगमार्ग से श्रेयस्कर समझती हैं। योग की अनुभूति प्रेम की सघनता को प्रदर्शित करती है। गोपियों ने उद्धव से प्रेम की बात की, कृष्ण लीला की बात की और ज्ञान के महत्व को भी स्वीकार किया, किन्तु यह कहा यह हमारे काम की चीज नहीं है। प्रेम के घनत्व में अन्तर्निहित प्रसाद गुण को रसात्मक अनुभूति के द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। गोपियों के द्वारा प्रेम मार्ग को अपनाये रहने के बावजूद उद्धव योग–योग रटे चले जा रहे थे। तब गोपियों ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में भी नवीनता के दर्शन होते हैं।

हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत की परम्परा का व्यवस्थित रूप अष्टछाप के कवियों में अवश्य दिखाई देता है, किन्तु उसका विकास चरम अवस्था में सूरकाव्य में ही हुआ। डॉ. सरला शुक्ल ने लिखा है : ''ब्रजभाषा में रचना करने वाले कवियों में सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथदास रत्नाकर तथा रामशंकर शुक्ल रसाल का नाम प्रमुख है। अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त ने भी खड़ी बोली में भ्रमरगीतों की रचना की है। भ्रमरगीत की परम्परा का यह संक्षिप्त विवेचन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण होने के साथ ही काव्य की एक परम्परा विशेष की कथा व्यंजित करता है। भ्रमरगीत काव्य का मधुर और सरस अंग बन गया है। कृष्णभक्त कवियों ने इसके द्वारा मनोभावों का जो चित्र प्रस्तुत किया, उसमें उनके हृदय का राग और बुद्धि की वक्रता दोनों का संकेत मिलता है। भ्रमरगीत काव्य परम्परा को प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य कहा जा सकता है।'' भ्रमरगीत की परम्परा को इतने तक ही सीमित रखना उचित नहीं है। बदली हुयी परिस्थितियों में भ्रमरगीत की मूल भावभूमि बनी रहने के बावजूद, उसके संचारी भाव और अनुभाव बदल गये। रत्नाकर के भ्रमरगीत में दार्शनिक विचारधारा का अभाव है। भ्रमरगीत विरहकाव्य होते हुए भी दार्शनिक विचाराधारा से पूर्ण है। इसलिए सूर के भ्रमरगीत का अतिरिक्त महत्व है। नन्ददास भी शुद्धाद्वैतवादी थे, किन्तु उनके भ्रमरगीत में भी दर्शन की वह सघनता नहीं है, जो सूर में है। परमानन्ददास में आध्यात्मिक सुख और मोक्ष अवस्था पर विचार किया गया है,

टिप्पणी

पर सूर मोक्ष के पचड़े में नहीं पड़ते, उनकी गोपियां प्रेम योग को साधने में सफल रही हैं, जबकि नन्ददास के भ्रमरगीत की शुरुआत ज्ञानोपदेश से होती है।

डॉ. सरला शुक्ल ने लिखा है कि ''योग और ज्ञान की अपेक्षा गोपियों के प्रेम को महत्ता प्रदान करना मनोवैज्ञानिक सत्य है। मानसिक भावनाओं की अनुभूति में मनोवृत्तियों और बोधवृत्तियों दोनों का सामंजस्य रहता है। बोधवृत्तियों में मानसिक भावनाओं की अनुभूतिपरक व्यंजना आवश्यक नहीं है। इसलिए वह एकदेशीय कही जाती है। योग जैसे शुष्क साधन में सभी चित्तवृत्तियों का नितान्त निरोध हो जाता है। यही कारण है कि मानसिक भावनाओं की अनुभूति से सम्भावित मनोवृत्तियां बोध–वृत्तियों की अपेक्षा अधिक गुरुतर और गंभीर होती हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर प्रेम और भक्ति की विजय, ज्ञानयोग पर दिखाई गयी है।'' दिखाने की यह प्रक्रिया सभी कवियों की अपनी है, किन्तु सूरदास की अभिव्यक्ति कौशल सबसे अलग है :

ऊधौ, सूधै नेकु निहारौ।
हम अबलन को सिखवन आये, सुन्यौ सयान तिहारो।
निरगुन कहौ कहा कहियतु है तुम्ह निरगुन अति भारी।
सेवत सुलभ स्याम सुन्दर को मुक्ति लही हम चारी।
हम सालोप, सरूप सयुज्यो, रहत समीप सदाई।
सो तज कहत और की औरें, तुम्ह अलि बड़े अदाई।
हम मूरख, तुम्ह बड़े चतुर हौ, बहुत कहा अब कहिये।
वे ही काज फिरत भटकत कित, अब मारग निज गहिये।
तुम्ह अज्ञान कितहिं उपदेशत, ग्यान–रूप जब हमहीं।
निसिदिन ध्यान सूर प्रभु कौं अलि देखत हम जित–तितहीं।

यहां सूरदास ने निर्गुण और सगुण के द्वंद्व को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। ईश्वर सगुण है और उसके गुणों की परछाई ही उसकी छाया के दर्पण में पड़ती है। ईश्वरीय गुणों से प्रकृति के गुण अविद्या–माया के सम्पर्क के कारण भिन्न दिखाई देते हैं। स्वच्छ जल के समान शुद्ध ईश्वरीय गुणों को, जो प्रकृति माया के माध्यम के परिणामस्वरूप व्यक्त हो रहे हैं, अविद्या माया के बीच में स्थान दिया है और इन्हीं सुने हुए गुणों को संसारीजन अपनाते हैं। सूरदास ने सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य भक्ति की अवस्थाओं का भ्रमरगीत के माध्यम से सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

सूरदास अपने समय की परिस्थितियों से पूरी तरह परिचित थे। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि ''सूर के समय में ज्ञान, योग और भक्ति का त्रिकोण संघर्ष चल रहा था। वेदान्ती लोग अन्तःकरण की शुद्धि के लिए जप–तप आदि को प्रमुखता देते थे और नाथपंथी योग को। इधर संतमत, जिसने उक्त दोनों ही सम्प्रदायों से कुछ न कुछ लिया था, निराकार निर्गुण की उपासना का प्रचार कर रहा था, साथ ही साकार की उपासना एवं भक्ति का आन्दोलन जोर पकड़ चुका था। इस प्रकार भ्रमरगीत में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों का संगम है।'' सगुण मार्ग का पक्ष लेने वाले अन्य कवियों की अपेक्षा सूर के भ्रमरगीत की मुख्य विशेषता क्या है! इसके उत्तर में कहना होगा कि सूरदास भक्ति को प्रधानता देते हैं। जो लोग यह समझते हैं कि सूर के

टिप्पणी

भ्रमरगीत का यह गौण पक्ष है और उसका प्रमुख पक्ष प्रेम की पीर को अभिव्यक्त करना है, वे लोग सूर के भ्रमरगीत को तत्कालीन सामाजिक स्थितियों से काटकर देखने का प्रयत्न करते हैं।

3.3.3 कृष्ण काव्यधारा में सूर का स्थान

साहित्य में अनेक स्थानों पर कृष्ण अराधना के संकेत प्राप्त होते हैं। महाभारत के कृष्ण का स्वरूप केवल नीति विशारद ही नहीं है अपितु वह धर्मात्मा भी है। कृष्ण को अर्जुन और युधिष्ठिर पूज्य बुद्धि से देखते हैं। ऋषि वेद व्यास कृष्ण को अपने से अधिक धर्म धुरंधर स्वीकार करते हैं। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में मथुरा के आस–पास के क्षेत्रों में कृष्ण भक्ति के विवरण को मेगस्थनीज के यात्रा–वृत्तांत में देखा जा सकता है। कुछ समय उपरांत जैनों व बौद्धों की आपसी प्रतियोगिताओं में भागवत धर्म के उपासकों ने विष्णु के अवतार राम व कृष्ण की उपासना व भक्ति का प्रचार किया। फिर भी मौर्य युग तक आते–आते बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के कारण कृष्ण भक्ति का प्रचार–प्रसार अधिक मात्रा में नहीं हो सका। दक्षिण भारत में सातवीं–आठवीं शताब्दी तक कृष्ण भक्ति का प्रचार फिर से जोर पकड़ने लगा। प्रसिद्ध आलवार भक्तों ने कृष्ण की भक्ति को घर–घर तक पहुंचाने का कार्य किया। कृष्ण भक्ति को अत्यंत लोकप्रियता व आकर्षक रूप प्रदान करने वाले 'भागवत पुराण' की रचना भी दक्षिण भारत में ही हुई।

कृष्ण भक्ति का स्वरूप संस्कृत काव्यों में प्राचीन काल से ही संपूर्ण रूप से विकसित हो गया था। प्रथम शताब्दी में अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरित में गोपाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। हाल सातवाहनों ने लोक प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संग्रह किया। इन गाथाओं में कृष्ण की लीलाओं के साथ राधा, गोपी और यशोदा आदि का वर्णन किया गया है। इन गाथाओं में भक्ति भावना प्राप्त नहीं होती। कृष्ण भक्ति का अनेक कवियों व विचारकों ने प्रचार किया। भट्टनारायण, आनंदवर्धन, हेमचंद्र आदि कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। जयदेव द्वारा रचित गीत–गोविन्द राधा–माधव के श्रृंगार का वर्णन करते हुए भी एक धार्मिक काव्य के रूप में प्रचलित है।

कृष्ण काव्य में सरसता और प्राणों का संचार करने का पूर्ण श्रेय महाकवि सूरदास को प्राप्त होता है। सूरदास जी के द्वारा कृष्ण काव्य को लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसी लोकप्रियता से प्रभावित होकर तुलसी ने अपनी रचना 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की सरस व मनोहर लीलाओं का चित्रण किया है। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत आने वाले अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण भक्ति के प्रचार में अपना अमूल्य योगदान किया। इन कवियों में सूरदास का स्थान सर्वप्रथम है। अष्टछाप के अन्य कवि हैं– कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। सूरदास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण की लीलाओं पर अनेक पदों की रचना की जिनकी संख्या करीब सवा लाख बताई जाती है। परंतु सूरसागर के करीब पांच हजार पद प्राप्त होते हैं।

सूरदास की सूरसारावली में अनेक ऐसे पदों की रचना की गई है जिनका वर्णन सूरसागर में प्राप्त नहीं होता। सूरदास जी की भक्ति भावना का मेरुदंड पुष्टिमार्ग का सिद्धांत 'भगवदनुग्रह' है। इसी सिद्धांत को आधार मानकर उन्होंने वात्सल्य, साख्य और माधुर्य भाव की अनेक पद्धतियों की रचना की। पुष्टिमार्ग पर भगवान के अनुग्रह

पर अधिक बल दिया जाता है। सूर–साहित्य में नारद–भक्ति सूत्र की ग्यारह आसक्तियों का वर्णन है। सूर की कृष्ण भक्ति के अनुसार कृष्ण ही केवल मात्र पुरुष हैं, अन्य सभी जीवात्माएं स्त्रियां हैं जो सदा कृष्ण की लीलाओं तथा उनके विहार में ही लिप्त रहती हैं। सूर राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं के चित्रण में इतने अधिक तन्मय थे कि उन्होंने शुद्ध भावना से उन्हें आध्यात्मिक रूप प्रदान किया और 'नीवी खोलत धीरे यदुराई' तक बिना किसी संकोच के कह डाला।

कहा जा सकता है कि सूरदास जी ने कृष्ण काव्य की परंपरा को विस्तृत व विकसित करने में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया। सूर के कृष्ण सुंदरता, प्रेम, सद्भावना, मित्रता व एकता आदि के प्रतीक के रूप में हम सबके समक्ष प्रस्तुत हैं। सूरदास जी ने अपने अराध्य देव का बड़े ही निश्छल रूप में वर्णन किया है जो अत्यंत उच्च कोटि का है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सूरदास की भक्ति भावना का प्रमुख भाव क्या है?

(क) वात्सल्य भाव (ख) दास्य भाव

(ग) सख्य भाव (घ) इनमें से कोई नहीं

4. रसों का राजा किसे कहा जाता है?

(क) शांत (ख) करुण

(ग) हास्य (घ) शृंगार

3.4 तुलसीदास

भक्तिकाल के सगुण काव्य में राम भक्ति धारा के कवि तुलसीदास जी का साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान है। महाकवि तुलसीदास की प्रतिभा से न केवल हिंदू समाज और भारत अपितु संपूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है। तुलसीदास जी के जन्म के संदर्भ में अनेक विवाद हैं परंतु जनश्रुति के आधार पर सं. 1554 को इनका जन्म समय माना गया है। रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार सोरो तुलसीदास जी का जन्म स्थान है। सोरो में तुलसीदास जी के जन्म स्थान के अवशेष, भाई नंददास के उत्तराधिकारी नरसिंह जी का मंदिर और वहां उनके जन्म स्थान के संबंध में त्रिपाठी जी और गुप्त जी को उनके जन्म स्थान के संबंध में संतुष्ट करती है। तुलसी जी के माता–पिता के संबंध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है परंतु प्राप्त सामग्रियों के अनुसार उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था। रहीम जी के दोहे के आधार पर पता चलता है कि इनकी माता हुलसी थीं। यथा–

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सों सुत होय।।

तुलसीदास जी का विवाह रत्नावली के साथ हुआ। रत्नावली अपने मायके में रह रही थी तभी एक रात तुलसीदास जी वहां पहुंच गए। रत्नावली अपने पति को वहां देख

टिप्पणी

आश्चर्यचकित हो गई। लोक लज्जा के भय से जब रत्नावली ने अपने पति को वहां से जाने के लिए कहा तब तुलसी ने रत्नावली को भी अपने साथ आने के लिए कहा। रत्नावली पति की इस जिद्द के समक्ष खीझ गई और उन्होंने अपने पति को कहा–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति।
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव–भीत?

पत्नी की यह बातें सुन तुलसीदास जी ने उसी समय गृह त्याग कर दिया और वह भगवान राम की भक्ति में लीन हो गए। संवत् 1631 में उन्होंने रामचरितमानस की रचना आरंभ की। यह रचना दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में संपन्न हुई। रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन की कथा को अपने में समाहित किए हुए है। यह काव्य के सभी आभूषणों से अलंकृत ग्रंथ है। रामचरितमानस एक शिक्षाप्रद रचना है। यह जीवन में नैतिकता व सही आचरण के महत्व की शिक्षा प्रदान करता है। तुलसीदास जी ने अन्य रचनाएं भी की। यथा– रामललानहछू, बरवै रामायण, पार्वती–मंगल, जानकी–मंगल, दोहावली, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका आदि।

3.4.1 तुलसीदास की भक्ति भावना एवं दार्शनिक चेतना

तुलसी की भक्ति भावना का विश्लेषण करने से पहले हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि तुलसी पहले भक्त थे और बाद में कुछ और थे। यही कारण है कि उनके सभी ग्रंथ भक्ति रस से युक्त हैं। रामचरितमानस, कवितावली या विनयपत्रिका सभी में भक्ति रूपी भागीरथी प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। महर्षि नारद ने भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है–

''सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूपाश्च।?''

अर्थात भक्ति प्रेमरूपा और अमृतरूपा होती है। इस संदर्भ में वे यह भी कहते हैं कि भक्ति को प्राप्त करके मानव सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाते हैं–

''यल्लमध्वा प्रमाण सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।''

उधर भक्त प्रह्लाद ने भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

''या प्रीतिरिविवेकानां विषयेष्वन पायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्या परार्पतु।''

अर्थात अविवेकी पुरुष को जैसी तीव्र आसक्ति विषय–वासनाओं के प्रति होती है, यदि उसी प्रकार की आसक्ति प्रभु–स्मरण में हो, तो वह भक्ति कहलाती है। इसी प्रकार महर्षि व्यास ने लिखा है–

''पूजादिस्वानुराग इति पाराशर्य।''

अर्थात पूजा आदि में प्रगाढ़ अनुराग ही भक्ति है। इसी प्रकार–

''शाण्डिल्यभक्ति सूत्र'' में कहा गया है–

''सा परानुरक्तिरीश्वरे।''

ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति को भक्ति कहा गया है।

तुलसीदास भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि हैं। रामधारा के कवियों में उनका स्थान प्रमुख है। रामचरितमानस न केवल तुलसीदास की कीर्ति का

आधार–स्तम्भ है, बल्कि हिन्दू समाज का धार्मिक ग्रंथ भी है। तुलसी के आराध्य भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम हैं। वे नर रूप में नारायण हैं। उन्होंने अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए पृथ्वी पर अवतार लिया। वे निर्गुण होते भी सगुण हैं। तुलसी के राम सृष्टि के कर्ता, भर्ता तथा संहारकर्ता हैं। वे यदि दीनबंधु, भक्त–वत्सल तथा दयानिधान हैं तो शील, शक्ति और सौंदर्य के समन्वित रूप भी हैं। इसलिए तुलसीदास ने निर्गुण भक्ति की अपेक्षा सगुण भक्ति को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। तुलसी अपने आलंबन श्रीराम के असामान्य उत्कर्ष को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हो उठते हैं। कवि के इस आकर्षण में प्रेम है। यही प्रेम परिपक्व होकर भक्ति का रूप धारण कर लेता है। तुलसीदास मूलतः रामभक्त थे और राम भक्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य था। वे श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम मानते हैं और उस मर्यादा के दास थे। राम की कृपा से ही उन्होंने अपने जीवन को नया आयाम दिया। एक स्थल पर वे कहते हैं–

''राम ही के नाते जो होई सोई नीके लागै।
ऐसोई स्वभाव कछु तुलसी के मन को।''

सगुण भक्ति पर बल

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में भक्ति रूपी भागीरथी ही अनेक धाराएं प्रवाहित हुईं। यद्यपि कबीर आदि संत कवियों, सूरदास आदि कृष्ण कवियों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से भक्ति का प्रतिपादन किया, लेकिन इन सबमें गहन, गम्भीर भक्तिधारा गोस्वामी तुलसीदास की ही थी। उन्होंने सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण, विगत–विनोद राम को अपना आराध्य चुना, क्योंकि भक्ति के प्रेमवश वे दशरथ की पत्नी कौशल्या के गर्भ से अवतरित हुए। उनके आराध्य भगवान राम सौंदर्य, शील और शक्ति के समन्वित रूप हैं। कवि ने स्वयं को चातक सदृश उनके चरणों में समर्पित किया। वे कहते हैं–

''एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम–घनस्याम हित चातक तुलसीदास।।''

जिस प्रकार चातक अपने आराध्य घनश्याम से जीवन–दान प्राप्त करता है, उसी प्रकार भगवान राम भी दीन–दुःखी और भयभीत जन को कष्टों से मुक्त करते हैं। राम का कोटि–कोटि शतकाम विमर्दित रूप जन–मन को आकर्षित करने वाला है। उनका अनन्त शरीर आनन्दित करता है और उनकी अमित अरि–मर्दन करने वाली शक्ति भक्त के हृदय को विश्वास से भर देती है। इसलिए कवि ने आराध्य के रूप में राम को चुना। 'रामचरितमानस', 'विनय पत्रिका', 'कवितावली', 'दोहावली', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल'' आदि बारह प्रामाणिक रचनाओं में कवि ने राम की इन तीनों विभूतियों का सविस्तार वर्णन किया है। उनके राम मर्यादा–पुरुषोत्तम हैं, जो अपने सेवक हनुमान के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, अनुज लक्ष्मण के मरण–शय्या पर पड़े रहते समय भी वे शरणागत विभीषण की ही चिन्ता करते हैं। अपने गुणगान के समय वे संकोच करते हैं और भक्त के गुणगान के समय प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार के आराध्य राम के प्रति कवि की अनन्य भक्ति है।

दास्य भाव की प्रधानता

गोस्वामी तुलसीदास ने दास्य भाव की भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। भवसागर से पार उतरने के लिए यही भक्ति समर्थ है क्योंकि अन्य प्रकार की भक्ति में अहम् के उदय

टिप्पणी

होने की शंका रहती है। जहां अहम् आया नहीं कि भक्त अपनी भक्ति से विमुख हो जाता है। अतः दास्य को ही कवि स्पृहणीय मानता है। कि वह कहता भी है–

''सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि''

दास्य भक्ति में आराध्य की महत्ता, उदारता, दयालुता, शरणागत वत्सलता, दीनबंधुता और भक्त की दीनता, हीनता, असमर्थता, पापहीनता आदि का वर्णन रहता है। इससे हृदय की कलुषता धुल जाती है, मन का ताप मिट जाता है और आत्मा पावन हो जाती है। इसलिए कवि दास्य भाव की भक्ति को ही स्वीकार करता है। 'विनय पत्रिका' में कवि अपने आराध्य राम से कहता भी है कि प्रभु, आप मेरे अवगुणों के कोष की गणना न करो।

''तउ न मेरे अघ अवगुन गनि हैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनि हैं।''

कवि अपने पापों और दोषों को स्वीकार करते हुए तनिक भी संकोच नहीं करता। भगवान की कृपा में उसे पूर्ण विश्वास है, क्योंकि भगवान् ने ही गर्भवास की पीड़ा से मुक्त करके देवदुर्लभ मानव शरीर प्रदान किया है। यह सब होने पर भी कवि ने सपने में भी मन, वचन अथवा कर्म से परहित नहीं किया और न ही आंतरिक भाव से भगवान की भक्ति की है। बल्कि वह तो भक्त का वेश धारण करके अपना पेट भरता रहा और माया के प्रपंचों से कभी मुक्त नही हुआ। एक स्थल पर कवि 'विनय पत्रिका' में अपनी दीनता–हीनता को स्वीकार करता है और भगवान् से प्रर्थना करता हुआ कहता है–

''हे प्रभु मेरोई सब दोसु।
सील–सिन्धु, कृपालु, नाथ, अनाथ–आरत–पोसु।
वेष, बचन, बिराग, मानब अघ अवगुननु को कोसु।

विविध उपायों का अवलम्बन

कविवर तुलसीदास अपनी भक्ति द्वारा भगवान राम का अनुग्रह प्राप्त करना चाहते हैं इसके लिए वे विविध उपायों का अवलम्बन ग्रहण करते हैं। वे प्रभु के समक्ष अपनी दीनता–हीनता का वर्णन करते हुए उनकी गुण–गरिमा का गुणगान करते हैं और उनको प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। कवि स्वीकार करता है कि श्रीराम बिना सेवा के दीन पर द्रवित होते हैं। वे उदार, दान शिरोमणि, रीति–नीति का निर्वाह करने वाले, दीनों पर दया करने वाले हैं। 'विनय पत्रिका' में कवि भगवान् से प्रार्थना करता है कि वे किसी भी संबंध को स्थापित करके अपने चरणों में उसे स्थान दें–

''तोहि–मोहि नाते अनेक आनिए जो भावै।
ज्यों–ज्यों तुलसी कृपालु चरन–सरन पावै।''

जब कवि संबंधों की स्थापना और आत्मीयता के बावजूद भी श्रीराम का अनुग्रह प्राप्त नहीं कर पाता तो उसके हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है और वह क्षोभ भरे शब्दों में अपने–आपको दण्ड के लिए भी प्रस्तुत कर देता है–

कीजे मौकों जन जातनामई
राम! तुम से सुहृद साबबहि, मैं सठ पीठि दई।

यह सब होने पर भी भक्त पर कृपा नहीं करते। हार कर भक्त आत्मीयता के उस सोपान पर पहुंच जाता है, जहां उसमें धृष्टता आ जाती है। यही नहीं, वह तो नाम

महिमा की नौका को भी डुबोने को तैयार हो जाता है। लेकिन कवि यह भी जानता है कि भगवान् अपने भक्त के धैर्य की परीक्षा ले रहे हैं। अब भक्त को यह चिन्ता हो जाती है कि यदि उसका उद्धार न हुआ तो उसके आराध्य को ही अपयश मिलेगा। यह सोचकर कवि अपनी चिंता करना बंद कर देता है–

नहिन न कर परत मोकहं उर, जद्यपि हौं अपिहारो।
यह बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु नाम हुं पाप नवारो।

कुछ स्थलों पर कवि अपने आराध्य को उपालम्भ देना भी आरंभ कर देता है। वह कहता है कि भगवान् के सुधारने पर ही उसका कल्याण होगा। यदि भगवान् ऐसा नहीं करेंगे तो लोग भगवान् के बारे में क्या सोचेंगे। उसकी व्यथा को सुनकर श्रद्धालु भक्त को दुःख होगा। कवि नहीं सोचता कि उसके स्वामी की पराजय हो और उसकी विजय हो। इसलिए 'विनय पत्रिका' में वह कहता भी है–

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरेगी मेरी,
कहौं बलि, वेद की न, लोक कहा कहैगो?
प्रभु को उदार भाऊ, जन को पाप प्रभाउ
दूहूं भांति दीनबंधु! छीन दुख दहैगो?

कवि पुनः लोक स्वभाव की चर्चा करता है जो कि तुलसी की आतंरिक स्थिति को नही जानता। वह तो उसकी वेशभूषा और राम नाम का उच्चारण करते देखकर उसे राम का सेवक समझता है। यह सब होने पर यदि राम उस पर कृपा नहीं करते तो लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे। वैदिक विधि–विधान को कोई नहीं समझता। सभी बाह्य व्यवहार को ही देखते हैं। इसी सन्दर्भ में कवि के मन में एक और शंका उत्पन्न होती है। हो सकता है कि लोक भय के कारण ही राम उसे न अपना रहे हों। तुलसी जैसे छल–कपट करने वाले अधम व्यक्ति को यदि राम अपना लेंगे तो निश्चित ही लोग उनकी ओर उंगली उठाने लगेंगे। इसलिए कवि एक और अवलम्बन का सहारा लेता है। वह भगवान् को अपना बाप मान लेता है। कवि का विश्वास है कि पुत्र भले ही अपने पिता के लिए अच्छा हो या बुरा, पिता के लिए वह पुत्र ही होता है। इसीलिए वह पुनः प्रभु से निवेदन करता है–

प्रगट कहत जो सकुचिए अपराध भरयो हौं।
तौ मन में अपनाइए तुलसीहिं कृपा करि,
कलि बिलोकिह हरयों हौं।

इस प्रकार तुलसी की यह उक्ति काम कर जाती है और भगवान राम की कृपा उन्हें प्राप्त हो जाती है। कवि ने आजीवन अनेक कष्टों का सामना करते हुए भी भगवान् के चरणों को नहीं छोड़ा। अन्ततः भगवान् करूणा से द्रवित हो उठते हैं और भक्त को अपना लेते हैं। कवि का आत्मविश्वास ही उसे भक्ति की उस भूमिका पर पहुंचा देता है जहां भक्त भगवान का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है। यही तुलसी की भक्ति का व्यावहारिक रूप है जिसमें वे पूर्णतः सफल होते हैं।

अब कवि को विभिन्न अवलम्बनों की आवश्यकता नहीं है। कवि को तो श्रीराम ने अपना लिया है और वह आनन्द सागर में निमग्न हो गया।

तुलसी की भक्ति–शरणागति (प्रपत्ति)

तुलसी की इच्छा तो भगवान के चरणों में निःस्वार्थ प्रेम करना हैं। इस प्रेम की प्राप्ति के लिए वे भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं। भगवान् की शरण में जाना प्रपत्ति अथवा शरणागति कहलाती है। तुलसी की भक्ति प्रपत्ति ही है जिसके छह रूप कहे गए हैं–

(1) आनुकूलस्य संकल्प–भगवान के प्रति अनुकूल रहने की निश्चयात्मक अभिव्यक्ति प्रपत्ति या शरणागति का पहला रूप है। इस प्रक्रिया में भक्त स्वयं को सांसारिक विषय–वासनाओं तथा आकर्षणों से हटाकर भगवान् के चरणों में लगा देता है। तुलसीदास भी अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त करते हुए कहते है–

अब लौं नसानी, अब न नसै हौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसै हौं।

(2) प्राप्तिकूलस्य वर्णनम्–इसके अर्न्तगत भक्ति के बाधक तत्त्वों की चर्चा की गई है। भगवान् के प्रतिकूल प्रेरणा देने वाले भावों, विचारों, व्यक्तियों तथा प्राणियों को पूर्णतया त्यागने पर बल दिया गया है। यही प्रपत्ति का दूसरा रूप है। कविवर तुलसीदास भी यही कहते हैं कि जिस व्यक्ति को प्रिय श्रीराम नहीं हैं, भले ही वह परम स्नेही हो, लेकिन उसे करोड़ों शत्रुओं के समान त्याग देना चाहिए।

(3) रक्षिश्यतीति विश्वास–सच्चे भक्त को यह पूरा विश्वास होता है कि भगवान ही भक्तों के सच्चे रक्षक हैं। वे हमेशा ही भक्तों की रक्षा करते हैं। इसीलिए कविवर तुलसीदास को भी पूरा विश्वास है कि राम उसकी रक्षा करेंगे। इसीलिए 'कवितावली' में कवि कहता है कि जिसकी राम रक्षा करते हैं, उसे कोई नहीं मार सकता–

कौन की त्रास करै तुलसी, जो पै–राखि है राम तो मारिहै को रे।

(4) गोप्तृत्वरणम्–भक्त को पूरा विश्वास है कि भगवान् ही उसके रक्षक हैं। यही सोचकर वह भगवान् का वरण कर लेता है। तुलसीदास भी भगवान् को ही अपना रक्षक मानकर उनका वरण करते हैं, क्योकि भगवान् को छोडकर वे किसी और से क्या कह सकते हैं। और कोई भक्त का हितैषी भी तो नहीं है। वहीं दीनों के बंधु हैं, सेवक के मित्र हैं और दीन–दुःखी और अनाथ पर कृपा करने वाले हैं।

(5) आत्मनिक्षेप–आत्मनिक्षेप की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब भक्त मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं को भगवान् के चरणों में सौंप देता है। वह भगवान् को ही अपना सर्वस्व मानता है।

(6) कार्पण्यम्–जब भक्त भगवान् के सामने अपनी दीनता–हीनता का वर्णन करता है, उसी को कार्पण्यम् कहते हैं। 'विनय पत्रिका' में कार्पण्यम् के असंख्य उदाहरण देखे जा सकते हैं, जिनमें कवि ने भगवान् की उदारता और अपनी दहनता का वर्णन किया है। सत्य तो यह है कि तुलसी की भक्ति ही प्रपत्ति है जिसमें दास्य–भाव को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

आत्म–निवेदन और विनय

कविवर तुलसीदास की काव्य रचनाओं में दास्य भाव की भक्ति में आत्मनिवेदन तथा विनय को समुचित स्थान दिया गया है।

टिप्पणी

विनय की सात भूमिकाएं

विनय की सातों भूमिकाएं उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। वे हैं दीनता मान–मर्षता, भयदर्शना, आश्वासना, मनोराज्य और विचारणा।

1. **दीनता**–दीनता को कार्पण्य भी कहते हैं। इसके अंतर्गत भक्त भगवान् के समक्ष बार–बार अपनी दीनता–हीनता का प्रदर्शन करता है। 'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' के अनेक पदों में कवि अपने अनेक दोषों का वर्णन करता है और दीनता को प्रकट करता है। ऐसा करके कवि अपने अन्तःकरण की निर्मलता का परिचय देता है।

2. **मान–मर्षता** – मान–मर्षता का अर्थ है–आत्माभिमान को त्यागकर विनम्रतापूर्वक भगवान् के समक्ष नत हो जाना। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी विभिन्न रचनाओं में अपनी निरभिमानिता को प्रकट किया है। भगवान् हमेशा भक्त के अभिमान को भंग कर देते हैं। जब नारद–मुनि को अपने इन्द्रजयी होने का गर्व हुआ, तो भगवान् ने विश्वमोहिनी का अवतार धारण किया और अभिमान को नष्ट किया। 'रामचरितमानस' से निम्नलिखित पंक्तियां देखिए–

   ''संमूतिसूल मूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।
   जिमि सिसु तन ब्रन होई गोसाईं। मातु चिराव कठिन को नाईं।
   तिमि रघुपति निज दास कर हरहि मान हित लागि।
   तुलसी ऐसे प्रभुहि कस न भजसि भ्रम त्यागि।।''

3. **भय–दर्शना** – प्रायः भक्त अपने मन के समक्ष मायाजनित संसारिक कष्टों का भव प्रस्तुत करता है और उसे भयभीत करके भगवद् भक्ति की ओर प्रेरित करता है। तुलसीदास ने भी अनेक स्थलों पर भय दिखाने का प्रयास किया है। वे तो स्पष्ट कहते हैं कि प्राणी जब तक राम–नाम का स्मरण नहीं करेगा, तब तक त्रिताप में जलता रहेगा–

   'राम राम राम जीव जौ लौं तू न जपिहै।
   तौ लैं तू कहूं जाय, तिहूं ताप तपिहै।।''

4. **भर्त्सना** – मानव का मन बड़ा चंचल होता है। भय दिखाने पर भी वह सांसारिक विषय–वासनाओं से मुक्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में भक्त को मन की भर्त्सना करनी पड़ती है। तुलसीदास भी अपने मन को ताड़ते हुए कहते हैं–

   ''सुन मन मूढ़ सिखावन मेरो।
   हरिपद–विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ यह समुझि सबेरो।।''

5. **आश्वासन** – भक्त का मन भर्त्सना के कारण दुःखी हो जाता है। यही नहीं, वह सांसारिक विभीषिकाओं से भी ग्रस्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में भक्त अपने मन को प्रभु की दयालुता, कृपालुता और शरणागत–वत्सलता के प्रति आश्वस्त करने लगता है–

   ''जौ पै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै?
   होई न बांको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै।।''

6. **मनोराज्य** – जब भक्त भगवान् की कृपा के प्रति आश्वस्त हो जाता है, तो वह अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगता है। इस अवसर

टिप्पणी

पर भक्त अपनी इच्छाओं के राज्य में विचरण करने लगता है। इसी को हम मनोराज्य कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास भी 'विनय पत्रिका' में कहते हैं–

''कबहुंक यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ–कृपालु–कृपा तें संत–सुभाव गहौंगो।।''

7. विचारणा – विचारणा विनय की अंतिम भूमिका है। इसकी परिणति आत्मा–परमात्माजीव जगत् की वास्तविक सत्य को पहचानने में होती है। 'विनय पत्रिका' में इस प्रकार के असंख्य पद देखे जा सकते हैं जिनमें विचारणा का आभास प्राप्त होता है–

''केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिंए।।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटइ न, मरइ भीति–दुख, पाइअ यहि तनु हेरे।।''

श्रीमद्भागवत पुराण में नवधा–भक्ति की चर्चा की गई है। इसमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, आत्म–निवेदन आदि की चर्चा की गई है। विद्वानों ने नवधा–भक्ति को भक्ति–रस की तह तक पहुंचाने वाले नौ सोपान कहा है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपनी रचनाओं में नवधा–भक्ति का प्रतिपादन करने का प्रयास किया है। 'कवितावली' में कवि ने एक ही पंक्ति में श्रवण, कीर्तन और स्मरण का वर्णन कर दिया है–

'श्रुति राम कथा, मुख राम को नाम, हिएं पुनि रामहि कौ थलु है।''

'विनय–पत्रिका' में वे पाद–सेवन की दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं–

''प्रनतपाल प्रत तोर, मोर पत जिअउं कमल पद देखे।।''

इसी प्रकार से 'विनय पत्रिका' में ही कवि अर्चना की प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं–

''ऐसी आरती राम रघुवर की करहि मन।
हरन दुखद्वन्द्व गोविंद आनंद घन।''

इसी प्रकार से 'रामचरितमानस' में कवि ने राम के मुख से शबरी के प्रति किंचित् संशोधन के साथ नवधा–भक्ति को स्वीकार किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी की भक्ति–भावना राम भक्ति पर आधारित है। कवि संपूर्ण विश्व को राममय देखना चाहता है। उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में सत्संग, गुरुसेवा, निश्चय रूप से राम का गुणगान आदि भावों का समुचित रूप से वर्णन किया है।

तुलसी की दार्शनिक चेतना

जीव विभिन्न प्रकार के दुखों से सदा ही पीड़ित रहा है। यह दुख दैहिक और भौतिक दोनों ही के हैं। मानसिक और शारीरिक दैहिक कष्टों के दो रूप हैं, इसका कारण अज्ञान और अभक्ति है। अज्ञान से तात्पर्य मनुष्य के देह भाव से है। जीवन अपने भगवान के ओर उसकी माया के स्वरूप को भूलकर देह को ही सब कुछ मान बैठता है इसलिए परितप्त होता है। भव–बंधन से मुक्ति के दो उपाय हैं– ज्ञान और भक्ति।

टिप्पणी

कर्म, वैराग्य योग आदि अन्य जितने भी साधन बतलाए गए हैं, वे सब इन दो साधनों के साधन हैं। भक्ति का पद सर्वश्रेष्ठ है। इन साधनों के द्वारा जीव जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति प्राप्त करता है– 'साधन सिद्धि रामपग नेहू'।

तुलसी के दर्शन में राम सर्वथा मूल–तत्व या परमतत्व हैं। राम सच्चिदानंद स्वरूप हैं। उपनिषदकारों और वेदांतियों ने जिसे ब्रह्म कहा है, शैवों ने जिसे परमशिव माना है, वैष्णवों की दृष्टि में जो परमविष्णु है, उसी परमार्थतत्व को तुलसी 'राम' कहते हैं। तुलसी ने राम के लिए ब्रह्म, विष्णु और शिव शब्दों का प्रयोग भी किया है। उन्हीं से आविर्भूत और उनसे भिन्नाभिन्न तत्व है– जीव और जगत। राम सृष्टि के कर्ता, पालक और संहारक हैं। राम की उद्‌भवकारिणी शक्ति के प्रतीक ब्रह्मा हैं, पालनकारिणी शक्ति के विष्णु ओर संहारकारिणी शक्ति के शिव हैं।

राम का सगुण रूप उनके निर्माण रूप का ऐश्वर्य है। सज्जनों के परित्राण, अधर्मियों के विनाश, धर्म के संस्थापन ओर भक्तों के आनंद के लिए राम अवतार रूप में प्रकट होते हैं–

जब–जब होई धरम कै हानि। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपनिधि सज्जन पीरा।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।।
जग बिस्तारहिं बिसद जस रामजन्म कर हेतु।।

माया – तुलसी ने राम की अभिन्न शक्ति का नाम माया बतालया है। अपनी इसी माया के द्वारा राम सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य संपन्न करते हैं। ब्रह्मा आदि की शक्ति राम की ही शक्ति अर्थात माया है। माया को ही सीता कहते हैं। राम के साथ उनकी माया भी अवतार लेती है। माया के दो भेद स्पष्ट हैं– विद्या और अविद्या। विद्या माया विश्व–रचना ओर जीव के मोक्ष का हेतु है। अविद्या माया जीव के मोह तथा भवबंधन का कारण है। लक्षणा के द्वारा माया निर्मित विश्व को भी 'माया' कहा जाता है। संपूर्ण विश्व माया का वशवर्ती है–

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीवन निकाया।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अविद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव पर भवकूपा।।
एक रचै जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताकें।।

तात्विक दृष्टि से माया एक है। उसके कार्यों को समझाने के लिए उसके दो भेद किए गए हैं। यह भेद–निरूपण वैष्णव वेदांताचार्यों के मतानुसार है।

सृष्टि – तुलसी जगत को राम के अधीन और राम को ही शक्ति मानते हैं। जिस माया से जगत की रचना हुई है तुलसी के अनुसार वह प्रकृति ही है। प्रकृति के तीन गुण हैं– सत्व, रज, तम। जीवों के कल्याण के लिए राम की प्रेरणा से ही इन गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने पर सृष्टि प्रक्रिया का आरंभ होता है। सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा राम की कारयित्री शक्ति के प्रतीक हैं। अनगिनत पिंड–ब्रह्मांड राम की शक्ति द्वारा रचित हैं, उनमें स्थित हैं, उनसे व्याप्त हैं और उन्हीं के रूप हैं। विश्व उनका विराट रूप है।

जगत – राम ही जगत के निमित्त हैं। राम ही सत्य हैं अतः जगत को भी सत्य होना चाहिए। परंतु, तुलसी ने उसे मिथ्या कहा है। तुलसी के अनुसार जगत तत्वतः राम–रूप है, माया अर्थात जीव की भ्रांति के कारण वह राम से भिन्न रूप में प्रतीत होता है। जगत परिवर्तनशील है। अतः वह एक मिथ्या है। इसीलिए तुलसी ने कहा है– 'सब रूप सदा सब होइ न सो,' अथवा 'रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा'। जब जीव को अपने, माया के और राम के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब वह संपूर्ण जगत को राममय देखने लगता है। राम से इतर कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता।

जीव – तुलसी कहते हैं जीव ईश्वर राम का अंश है। माया के कारण आत्मस्वरूप को भूलकर संसार–चक्र में पड़ जाता है–

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो माया बस भएउ गोसाईं। बँध्यो कीर मर्कट की नाई।।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटति कठिनई।।
तब ते जीव भएउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होई सुखारी।।

तुलसी के राम और जीव में शक्ति में मात्रा का भेद है। राम सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, मायापति, स्वंतत्र है। जीव माया की विभिन्न सीमाओं में बंधा है। हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार और अभिमान जीव के धर्म हैं। जीव मोह के वशीभूत होकर कर्म–जाल में फंसा रहता है और अनेक प्रकार के क्लेश सहता है। तुलसी के अनुसार राम की कृपा से ही उसका उद्धार संभव है।

मोक्ष–साधन – तुलसी ने जीव की मुक्ति के अनेक साधन बतलाए हैं। तुलसी ने धर्म, वैराग्य, योग्य, ज्ञान और भक्ति को गौरव दिया है। इनमें से प्रथम तीन अंतिम दो साधनों के साधन हैं। धर्म के अचारण से चित्त शुद्ध होता है। इसी से वैराग्य उत्पन्न होता है और योग के द्वारा ज्ञान की उपलब्धि होती है। आत्मज्ञान हो जाने पर जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

तुलसी कहते हैं कि भक्ति का पथ सुगम और अमोघ है। धर्माचरण से विषय–विरक्त चित्त में भगवद्धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। राम के प्रति परमप्रेम से ही भक्ति का उदय होता है और भक्ति स्वयं मुक्ति है।

सामाजिक दृष्टिकोण – मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रतिकूल एवं विशृंखलित समाज में व्यक्तिगत साधना भी दुष्कर है। इस स्थिति में तुलसी के अनुसार व्यक्ति के मोक्ष के लिए भी अनुकूल समाज–व्यवस्था अपेक्षित है। इस आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए तुलसी ने समाज–धर्म पर विशेष बल दिया है।

तुलसी भक्त हैं और उनका धर्मदर्शन भक्तिदर्शन है। वे भक्तिमान दार्शनिक कवि हैं। उन्होंने काव्यधर्म के साथ मोक्षधर्म का निर्वाह किया है। आध्यात्मिक अनुभूति को रसात्मक वाङ्मय के माध्यम से प्रस्तुत किया है। तुलसी ने जीवन के मूलभूत प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करके सत्य को साक्षात्कार किया है। उसकी सुंदर रूप में अभिव्यंजना की है ओर उसे मंगलमयी संजीवनी से अनुप्राणित किया है।

3.4.2 तुलसीदास के काव्य में समन्वय भावना

तुलसीकालीन समाज में अनेक मत–मतांतर कृमि कीटों के समान संघर्ष कर रहे थे, जिसके फलस्वरूप मानव–जीवन में विशृंखलता उत्पन्न हो गई थी। चारों ओर

अव्यवस्था का साम्राज्य छाया हुआ था। धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभी दृष्टियों से राज्य में शिथिलता उत्पन्न हो चुकी थी। तुलसी युग मुगलों के साम्राज्य का युग था। हिंदू जनता सुल्तानी शासन से त्रस्त थी। मुगलों की तथाकथित उदार नीति मात्र दिखावा थी। उनका मुख्य लक्ष्य था साम्राज्य–लिप्सा और हिंदुओं का धर्मांतरण करना। कुछ मुगल शासक तो हिंदुओं पर तरह–तरह के अत्याचार भी कर रहे थे। धार्मिक क्षेत्र में तांत्रिक, ब्रजयानी, सिद्ध तथा गोरखपंथी साधु अपनी अद्‌भुत करामातों के द्वारा जनता को मोहित कर रहे थे। भक्ति का सच्चा सुख पूर्णतः विलुप्त हो गया था। निर्गुण तथा सगुण ज्ञान और भक्ति में विरोध चल रहा था। दूसरी ओर शैव–शाक्त तथा वैष्णव भी परस्पर द्वंद्वलीन थे। दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि विभिन्न वादों में भी संघर्ष चल रहा था। सामाजिक जीवन में वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना हो रही थी। स्वार्थ की भावना के कारण पारिवारिक जीवन टूट रहा था। तुलसीदास ने इस विषम स्थिति को बड़े समीप से देखा। उन्होंने इस विषमता को मिटाकर संतुलित समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी वाणी 'सुरसरि सम सब कर हित' करने वाली थी। रामचरित के माध्यम से उन्होंने जनता के हृदय का स्पर्श किया और समाज में प्रेम की सरस धार प्रवाहित की।

जिस प्रकार अकबर अपने समय के महान शासक थे, उसी प्रकार तुलसीदास भी अपने समय के महान लोकनायक थे। तत्कालीन विचारधारा में समन्वय स्थापित करने के फलस्वरूप वे लोकनायक कहलाए। उन्होंने अपने महान काव्य 'रामचरितमानस' में विभिन्न विचारधारा का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया। उनकी समन्वय भावना का विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है।

1. शैवों तथा वैष्णवों का समन्वय– वैदिक काल में अनेक देवता थे परन्तु आगे चलकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की प्रतिष्ठा स्थापित हो गई और अन्य देवताओं का वर्चस्व प्रायः समाप्त हो गया। ब्रह्मा सृष्टि के उत्पादक तथा महेश (शिव) संहारक माने गए हैं। धीरे–धीरे लोगों ने ब्रह्मा को भुला दिया और विष्णु तथा शिव दोनों देवता ही महत्वपूर्ण माने जाने लगे। वैदिक विचारधारा में विश्वास करने वाले लोगों ने विष्णु को अधिक महत्व दिया और उसे सर्वोपरि देवता माना अतः विष्णु की उपासना करने वाले वैष्णव कहलाए। दूसरी ओर आगमवादियों ने शिव को सर्वेश्वर माना और उनकी प्रतिष्ठा स्थापित की। कालांतर में ये लोग शैव कहलाए। तुलसी के युग में वैष्णव और शैव अपने–अपने इष्टदेव की महत्ता का प्रतिपादन करने में लगे हुए थे। धीरे–धीरे इन दोनों संप्रदायों में वैमनस्य की भावना बढ़ने लगी। दक्षिण भारत में तो शिव कांची और विष्णु कांची मंदिरों का भी निर्माण हुआ लेकिन इस विरोध के कारण भारतीय संस्कृति का विघटन होने लगा। तुलसीदास ने इस विघटन को सहन नही किया और उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं के द्वारा इन दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। विष्णु के अवतार राम शिव की आराधना करने लगे और शिव राम कथा के वक्ता बनकर उभरे। रामचरितमानस में शिव कहते भी हैं–

''सोई मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहिं सदा मुनिधीरा।''

दूसरी ओर राम मानस में शिव की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं–

''सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुं मोहिं न भावा।''

× × × × × × × ×

टिप्पणी

'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुं बास।।

शिव यदि सीता का रूप धारण करने से अपनी प्राणप्रिया सती का त्याग कर देते हैं तो राम लंका–विजय के लिए शिवलिंग की स्थापना करते हैं और उनकी अर्चना करते हैं। इसी प्रकार सीता राम को पति के रूप में पाने के लिए पार्वती पूजा करती है। तुलसीदास ने राम तथा शिव में समन्वय स्थापित करने के लिए रामचरितमानस में दोनों की स्तुति की है। इसका कारण यह था कि वे हरि और हर को एक ही मानते थे। दोनों के चरणों में समान रूप से श्रद्धा व्यक्त करते हैं–

राम की स्तुति–

''तुम्ह समरूप ब्रह्म अविनासी। सदा एक रस सहज उदासी।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघ शक्ति रूनामय।''

शिव की स्तुति–

''नमामीशमीशान निर्वाण रूपं। विभुं, व्यापकं, ब्रह्मवेदः स्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाश माकाशवासं भजेऽहं।।''

इससे स्पष्ट है कि कवि ने शिव और विष्णु में एकता स्थापित करने में सफल प्रयास किया। इसका सद्परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर उत्तरी भारत में शैवों और वैष्णवों का विरोध हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

2. वैष्णवों तथा शाक्तों में समन्वय– तुलसी युग में ही वैष्णवों और शाक्तों में वैमनस्य चला आ रहा था। इसलिए कबीर को मजबूर होकर कहना पड़ा–''वैष्णव की छपरी भली, ना साशत का बड़ गाऊं।'' शाक्त शक्ति अर्थात् गिरिजा की पूजा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास ने पहले तो सीता और शक्ति पूज्य भावना का वर्णन किया। यही नहीं, सीता विवाह से पूर्व गिरिजा की अर्चना करती है। सीता इस प्रकार से शक्ति की स्तुति करती हैं–

''नहिं तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाउ वेदु नहिं जाना।
भव भव विभव पराभव कारिनि, विस्व विमोहनि स्ववस विहारिनि।''

तुलसीदास ने दोनों देवियों में समान गुणों की विभूतियां दिखाई दोनों में अभिनव की स्थापना की जिसके फलस्वरूप वैष्णवों और शाक्तों में भी समन्वय की स्थापना हुई। इस प्रकार तुलसी के प्रयास में शैव–शाक्त और वैष्णव समान रूप से एक दूसरे के आराध्य के प्रति श्रद्धा भाव रखना सीख गए।

3. सगुण–निर्गुण का समन्वय– तुलसी से पूर्व ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण रूपों को लेकर भारतीय समाज में एक लंबा संघर्ष चला आ रहा था। कबीर आदि संत कवियों ने निर्गुण निराकार ब्रह्म प्रचार–प्रसार किया परन्तु धीरे–धीरे निर्गुण के नाम पर पाखंड का प्रसार होने लगा जिसे देखकर तुलसीदास का मन क्रुद्ध हो उठा और उन्हें मजबूर हेाकर दोहावली में कहना पड़ा–

''हम लखि हमहिं हमार ला, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, राम नाम जपि नीच।।''

कवि ने केवल निर्गुण या सगुण का समन्वय ही नहीं किया, अपितु दोनों में एकता भी स्थापित की। कवि का कथन था कि राम ही निर्गुण और सगुण, वही निराकार हैं और वही साकार हैं। निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेम वश सगुण रूप में प्रकट होते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि निर्गुण–सगुण को लेकर चलने वाला द्वंद्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया। रामचरितमानस से एक उदाहरण देखिए–

''अगुनहि सगुनहिं नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे, जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।''

4. दार्शनिक समन्वय– दर्शन के क्षेत्र में भी अनेक वाद–विवाद जन्म ले चुके थे। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा स्थापित की ओर 'ब्रह्म सत्यंजगन्मिथरा' की घोषणा की। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत द्वारा अद्वैतवाद ने मध्यम मार्ग को अपनाया तथा द्वैताद्वैतवाद को प्रस्तुत किया। गोस्वामी तुलसीदास ने बड़ी कुशलता के साथ इन सभी दार्शनिकवादों का समन्वय स्थापित किया। उन्होनें कहीं तो गौ पदाचार्य का समर्थन किया कहीं शंकर के अद्वैतवाद का। उनका ब्रह्म तथा जीव संबंधी वर्णन भी विशिष्ट द्वैतवादियों का समर्थन करता है–

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।
सो माया बस भयऊं गुसाई। बंध्यों कीर मरकट की नाई।।

इसके अतिरिक्त जीव पराधीन है तथा ईश्वर स्वतंत्र है।

माया बस्य जीव अभिमानी। ईश बस्य माया गुन खानी।।
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।

यहां कवि ने स्पष्ट किया है कि अगुण, अरूप, अलख तथा अज होते हुए भी भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर ईश्वर सगुण बन जाते हैं। ये सभी मान्यताएं विशिष्टाद्वैतवादियों के ही समान हैं। तुलसीदास ने माया के भ्रम से दिखाई देने वाले जगत को मिथ्या कहा है परन्तु राममय जगत की सत्यता को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में परमार्थ दृष्टि से संसार भले ही असत्य हो परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से वह सत्य है। इसलिए कवि ने 'सीता राममय' संसार को प्रणाम किया है। तुलसीदास संसार संबंधी विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे इसलिए उन्होंने समन्वय के आधार पर अपने विचार व्यक्त किए–

''कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरहि तिनि श्रम सो आपन पहिचानै।।''

तुलसीदास का भक्ति सिद्धांत द्वैतवाद का ही समर्थन करता है। वे स्पष्ट कहते हैं–

'सगुनोपासक मोच्छन लेही, तिन्ह कहै राम भगति निज देहीं।''

इस प्रकार वह अपने इष्ट से अपना भिन्न अस्तित्व रखने का समर्थन करते हैं। राामचरितमानस का प्रत्येक भक्त न तो ब्रह्म ज्ञान पाना चाहता है, न ही मुक्ति की कामना करता है। वह तो राम भक्ति की याचना करता है। इन प्रसिद्ध दार्शनिक मतों के अतिरिक्त तुलसीदास ने तत्कालीन पुष्टिमार्ग के साथ रामवत संप्रदाय का भी समन्वय किया। यद्यपि कवि ने रामवत संप्रदाय द्वारा स्वीकृत राम के विभिन्न रूपों की चर्चा की है और उनकी आराधना पर बल भी दिया और साथ ही पुष्टिमार्ग के अनुसार

भगवान के अनुग्रह को सर्वोपरि माना है। कवि का स्पष्ट कहना है कि भगवान कृपा के बिना पूजा अर्चना व्यर्थ है। भगवान की कृपा के बिना भक्ति नहीं हो सकती। इसलिए कवि बार–बार भगवान के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी ने विभिन्न दार्शनिक मतों का सामना करके अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है। उन्होने परस्पर विराधी मत वादों को भक्ति के साथ जोड़ने का वादा किया है।

5. भक्ति ज्ञान और कर्म का समन्वय– गोस्वामी तुलसीदास से पहले संत मत का प्रचार हुआ। संत मत ज्ञान मार्ग पर आधारित था। कबीर, नानक, दादू आदि संत कवियों ने न केवल भक्ति की उपेक्षा की, बल्कि कर्मकांड की भी निंदा की। दूसरी ओर भक्ति का समर्थन करने वाला ज्ञान मार्ग पर चल नहीं पाता। 'रामचरितमानस' में वे कहते भी हैं–

''कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन विवेक।
घेइ धुनाक्षक्षर, न्याय ते, पुनि प्रव्यूह अनेक।''

कवि ने 'कवि का पंथ कृपान की धारा' कहकर ज्ञान मार्ग की दुर्गमता की ओर संकेत किया है। उन्होंने ज्ञान को पुरुष और माया को नारी कहा। साथ ही यह भी स्वीकार किया कि ज्ञान मार्ग से विचलित होकर भक्त भटक सकता है। परन्तु वे भक्ति को अन्न, जल के समान सरल मानते हैं–

''निगम–अगम साहेब सुगम राम सोचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग मांह।।''

गोस्वामी ने यह भी स्वीकार किया कि भक्ति चिंतामणि स्वरूप है और ज्ञान स्वयं प्रकाशवती नारी है। अतः इस पर माया का प्रभाव नहीं पड़ता। कवि इसे साधन–सुलभ होने के कारण ग्राह्य बताता है। फिर भी तुलसीदास की भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य से समन्वित है। तुलसी ने जिस ज्ञान की चर्चा की है, वह भी भक्ति और कर्म के साथ जुड़ा है। भक्ति, ज्ञान और एकता का प्रतिपादन करते हुए कवि लिखता भी है–

''भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव–संभव खेदा।।''

भक्ति और ज्ञान के साथ कर्म का समन्वय स्थापित करने के लिए कवि ने अप्रत्यक्ष मार्ग को अपनाया है। संत–वर्णन के प्रसंग में वे प्रयाग का रूपक बनाते हैं और बड़ी कुशलता से भक्ति, ज्ञान और कर्म का समन्वय करते हैं। रामचरितमानस में वे कहते भी हैं–

''राम भगति नहै सुरसरि धारा। सरसई ब्रह्म विचार प्रचारा।
विधि निशेध भय कलिमल–हरनी। करम कथा रहिन्दिनि बरनी।।''

6. सामाजिक क्षेत्र में समन्वय– तुलसी एक सच्चे लोकनायक थे। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां कहीं भी अनुकूल नहीं थी। कवि ने इस विशृंखलित और जर्जरित समाज को समीप से देखा। उन्होंने यह भी देखा कि जाति–पांति का भेदभाव चरम सीमा तक पहुंच चुका है। उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों से घृणा करते थे ओर उनके साथ बड़ा ही अमानवीय व्यवहार करते थे। तुलसी ने इस सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए भगवान राम को निषाद का मित्र बताया और राम को शबरी के जूठे बेर खिलाए। क्षत्रिय जाति में राम एवं भरत श्रेष्ठ माने जाते थे और

ब्राह्मणों में वशिष्ठ मुनि उच्च माने जाते थे। इन सबका मिलन कराकर कवि ने सामाजिक समन्वय स्थापित किया–

''भेटल भरत तइि अति प्रीति। लेाग सिहाहिहि प्रेम कै रीती।
तेहि भरि अंक राम लग भ्राता। तिल पुलक परिपूरित गाता।''

टिप्पणी

7. राजनीतिक क्षेत्र में समन्वय– तुलसीदास के युग में देश में राजनीतिक परिस्थितियां बड़ी भयावह बन गई थीं। मुगल शासक हिंदुओं पर तरह–तरह के अत्याचार कर रहे थे। यही नहीं, राजा और प्रजा में बहुत बड़ा भेद था। राजा प्रजा के कल्याण के लिए कभी नहीं सोचता था। उसे प्रजा की दृष्टि में एक श्रेष्ठ और महान व्यक्ति समझा जाता था। यहां तक कि राजा को ईश्वर का दर्जा प्राप्त था। चाहे मुगल शासक हों या हिंदू शासक सभी भोग–विलास में लीन थे। किसी को भी प्रजा की चिंता नहीं थी। 'कवितावली' में तो कवि ने स्वीकार किया है कि व्यापारी, मजदूर, किसान आदि सभी आजीविका के लिए प्रयत्नशील थे। गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार के शासकों की घोर निंदा की और साथ ही यह भी घोषणा की कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुख भोगती है वह राजा नरक का अधिकारी होता है। रामचरितमानस में कवि लिखता भी है–

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।''

यही नहीं, तुलसी ने राजा को मुख के समान माना है और प्रजा को हाथ और नेत्रों के समान। जिस प्रकार मुख से खाए हुए अन्न से शरीर के सभी अंग पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार शरीर के सभी अवयवों को अपना–अपना काम करना चाहिए तभी शरीर पुष्ट और सक्रिय रहेगा। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि राजा का अस्तित्व प्रजा पर निर्भर करता है। यदि राजा प्रजा का कल्याण करेगा तभी वह राज्य को ठीक से चला पाएगा। अन्यथा समाज में अव्यवस्था ही उत्पन्न हो जाएगी।

8. साहित्यिक समन्वय– गोस्वामी तुलसीदास केवल कवि ही नहीं, अपितु सच्चे भक्त भी थे। कवि की भक्ति के उद्‌गार ही काव्य बन गए, फिर भी उन जैसा प्रतिभाशाली कवि और कोई नहीं है। उन्होंने समस्त पुराण निगम, आगम, काव्य एवं धर्म ग्रंथों का सार तत्व लेकर रामचरितमानस में ऐसा रसायन प्रस्तुत किया जो सभी तापों का शमन करता है। काव्य प्रयोजन की दृष्टि से कवि ने अपनी रचनाओं में सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। उन्होंने न केवल स्वान्तः सुखाय काव्य की रचना की अपितु परान्तः सुखाय की रचना भी की। उनकी काव्य रचना समस्त प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी है। कवि ने समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए सभी विषयों की चर्चा की है। वे यदि रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोति और औचित्य की चर्चा करते हैं तेा उनका समन्वय भी करते हैं। उनके साहित्य में दसों रसों का वर्णन देखा जा सकता है। उनके काव्य में जहां एक ओर भक्ति की पावन गंगा प्रवाहित हो रही है, वहीं दूसरी ओर शृंगार की सुन्दर झांकियां देखी जा सकती हैं। भाव की दृष्टि से उनका काव्य मानव–हृदय के सूक्ष्म भावों का मनोरंजन करता है, परन्तु कला पक्ष की दृष्टि से उनका काव्य उच्च दृष्टि का भी कहा जा सकता है। काव्य के क्षेत्र में तुलसीदास ने शब्द और अर्थ के महत्व की अभिव्यंजना की–

''हृदय सिंधु मति सीप समाना स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जो बरशइ बर बारि बिचारू। होंहि कवित्त मुकुतामनि चारू।

टिप्पणी

जुगुति बोधि पुनि पोहि अहिं, राम चरित बर ताग।
पहिरहि सज्जन विमल उर, सोना अति अनुराग।।''

साहित्यिक समन्वय स्थापित करने के लिए कवि ने तत्कालीन ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। यही नहीं उन्होंने संस्कृत, उर्दू, फारसी, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के शब्दों का सुन्दर मिश्रण किया। उनकी काव्य भाषा एक ओर संस्कृतनिष्ठ है तो दूसरी ओर सरल, सुबोध और व्यावहारिक भी है। यही नहीं, उनकी काव्य भाषा में शैलीगत समन्वय भी देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कवि तत्कालीन प्रचलित पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। दोहा, चौपाई पद्धति में रामचरितमानस, पद पद्धति में विनयपत्रिका, गीतावली तथा कृष्णा गीतावली, बरवै पद्धति में बरवै रामायण, लोकगीत पद्धति में राम लला नहछू तथा कवित्त ओर सवैया पद्धति में कवितावली की रचना की है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास ने तत्कालीन समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त विषमता, विद्वेश, अव्यवस्था आदि को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। वस्तुतः वे एक मर्यादावादी कवि थे। अतः उन्होंने समाज को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए समन्वय भावना को प्रस्तुत किया। वे निश्चय ही एक महान समन्यवादी कवि कहे जा सकते हैं।

3.4.3 राम काव्यधारा में तुलसी का स्थान

रामकाव्य के संदर्भ में यह विचारणीय है कि राम का महत्वपूर्ण उल्लेख सर्वप्रथम 'वाल्मीकि रामायण' में मिलता है। राम के सगुण और निर्गुण रूप का महिमामंडन विभिन्न भक्त कवियों ने किया। राम उपासना के इतिहास में रामानंद एक युग प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं।

रामानंदजी ने अपने काव्य में राम–सीता के वर्णन को प्रधानता दी है। उन्होंने विशिष्टाद्वैत का आधार लेकर नये विचारों का प्रतिपादन किया जो समसामयिक तथा लोकोपयोगी थे। उन्होंने भक्ति को आम लोगों के लिए सुलभ बनाया और संस्कृत की अपेक्षा हिंदी भाषा को प्रधानता दी।

राम काव्य का विकास

इसी राम काव्यधारा में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान अद्वितीय है। यद्यपि तुलसी से पूर्व भी कई रामभक्त कवि हुए। अधिकांश कवियों का राम–साहित्य अप्रकाशित और अप्राप्य ही है। अब तक जिन ग्रंथों का सृजन हुआ उनमें विष्णुदास का 'वाल्मीकि रामायण' का हिंदी रूपांतरण तथा ईश्वरदास रचित 'भरत मिलाप' तथा 'अंगद पौज' उल्लेखनीय है। जैन कवियों द्वारा भी राम–कथा संबंधी रचनाएं लिखी गईं। मुनि लावण्य ने 'रावण मंदोदरी संवाद', ब्रह्म जिनदास ने 'रामचरित या राम रास' और 'हनुमान रास' तथा सुंदरदास ने 'हनुमंत चरित' रचनाएं कीं।

तुलसी राम काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। भक्त, कवि, लोकनेता तथा समाजसुधारक सभी दृष्टि से उनका स्थान हिंदी साहित्य में अप्रतिम तथा अक्षुण्ण है। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा रामभक्ति को जीवन और साहित्य दोनों का चिरस्थायी अंग ही बना दिया। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है–

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारी"

टिप्पणी

तुलसी वह भक्त कवि हैं जिन्होंने राम का लोकमंगलकारी, लोकरक्षक तथा लोकरंजक चित्र प्रस्तुत कर उसमें शक्ति, शील और सौंदर्य की प्रतिष्ठा कर लोगों के हृदय में आनंद और आश्वासन को स्थापित किया। राम के चरित्र को आधार बनाकर मानव जीवन की व्यापक तथा संपूर्ण समीक्षा की।

तुलसी ने लोक–चेतना का मार्गदर्शन किया ओर ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो अमर तथा अमिट हैं। राम मानव भी हैं और ब्रह्म के प्रतीक भी जिनका अवतार 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशयच दुष्कृताम्' के लिए होता है।

तुलसी के काव्य का दार्शनिक पक्ष भी अत्यंत पुष्ट है। उन्होंने काव्य में जीवन के चित्रण के साथ–साथ धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों को इस तरह संयोजित कर दिया है कि इन्होंने भी काव्य का रूप ले लिया है।

तुलसी ने काव्य में समन्वयता को दृष्टिगत किया है। तुलसी ने राम के प्रति अपने श्रद्धा सुमन ही अर्पित नहीं किए हैं, अपितु अन्य देवताओं– कृष्ण, शिव, शक्ति, गणेश आदि की भी स्तुति की है। अपने युग में शिव और विष्णु के अनुयायियों में पारस्परिक संघर्ष देख तुलसी ने शैवों और वैष्णवों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए सेतुबंध के अवसर पर राम द्वारा शिव की पूजा करायी और कहलवाया,

"सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।"

और शिव द्वारा राम की प्रशंसा भी करवायी।

तुलसी ने समन्वयता की नवीन सृष्टि की। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पारस्परिक संबंध व संयोग को ही महत्व दिया। उन्होंने द्वैत–अद्वैत, निर्गुण–सगुण, माया ओर प्रकृति, सत्य–असत्य, जीव–जगत आदि के समन्य का विचार प्रस्तुत किया।

तुलसीदास एक महान संत और जीवनदृष्टा कवि थे इन्होंने मध्ययुगीन भारत की संपूर्ण जन चेतना को काव्यमयी वाणी दी। दार्शनिक विचारधाराओं और संप्रदायों के परस्पर विरोध के कारण भारत की पुरातन सामूहिक लोक–चेतना विषम राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के बोझ से दबी जा रही थी। एक तरफ इस्लाम भारतीय संस्कृति के विनाश को तत्पर था तो दूसरी तरफ भारतीय जनता जाति–पांति, छुआछूत के संकीर्ण घेरों में संकुचित होकर पथभ्रष्ट हो रही थी। तुलसीदास जी ने इन दोनों समस्याओं का मूल निदान खोजा। उन्होंने भारतीय जनमानस में नवीन आशा, नवीन कर्म भावना और नवजीवन का आलोक भरकर हिंदू जाति को विनाश के गर्त से बचा लिया।

तुलसीदास भक्तिकाल के ही सर्वोत्कृष्ट कवि नहीं हैं अपितु समग्र हिंदी साहित्य के दैदीप्यमान सूर्य स्वीकार किये जाते हैं। उनके संबंध में हरिऔध जी के यह उद्‌गार पूर्णतः सत्य हैं कि कविता लिखकर तुलसी की महिमा नहीं बढ़ी है अपितु तुलसी जैसे समर्थ कवि की काव्य कला से स्वयं कविता की ही शक्ति में वृद्धि हुई है–

"कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी या तुलसी की कला।"

शुक्ल जी के अनुसार, "कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सकता है या नहीं।" गोस्वामी जी इस क्षेत्र में सिद्धहस्त थे। गोस्वामी तुलसी का काव्य उस

टिप्पणी

सागर के समान है जो पूर्णतः रत्नों से भरा हुआ है, इस रत्नरूपी सागर में कहीं पर भी गोता लगाओ रत्न ही रत्न हाथ में आते हैं।

तुलसीदास जी ने भारतीय जीवन मूल्यों को रामकथा के द्वारा अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। तुलसी के आराध्य 'श्री राम' हैं तथा उन्होंने अपने आराध्य के जीवन के रूप, गुण के वर्णन द्वारा जीवन के आदर्श मूल्यों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। तुलसी के काव्य में भारतीय जीवन मूल्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

लोक रक्षक की भावना

तुलसी ने अपने साहित्य में लोक धर्म और मर्यादा पर विशेष बल दिया। लोक मर्यादा का अभिप्राय है– समाज की आदर्शवादी और पुनीत परंपराओं का निर्वाह। तुलसी के साहित्य में लोक धर्म और मर्यादा दोनों तत्वों का समावेश पूर्ण रूप से होता है। तुलसी के राम ने अपने जीवन में लोक मर्यादा को इतनी प्रधानता दी है कि उनका नाम ही 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' हो गया। तुलसीदास ने राम को शक्ति–शील और सौंदर्य से मंडित करने के साथ ही साथ लोक–रक्षक के रूप में भी चित्रित किया है। जब भक्तों पर विपत्ति आती है तब भक्तों के कष्टों का निवारण करने के लिए भगवान मानव शरीर धारण करते हैं। यथा– उन्होंने राम को एक आदर्श मनुष्य, राजा, पुत्र, पति, भाई एवं रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया–

"जब जब होई धरम की हानि, बढ़ै असुर महा अभिमानी।
तब–तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।"

तुलसी ने भगवान की इस महिमा का जो वर्णन किया है वह भारत एवं सभी भारतीयों का आदर्श मूल्य हो गया है। एक राजा के रूप में भी राम आदर्श राजा के गुणों को प्रतिबिंबित करते हैं; वे अपनी प्रजा की यथासंभव रक्षा करते हैं और न्यायोचित रूप से उसका पालन करते हैं।

व्यापक भक्ति भावना

तुलसीदास ने भक्ति के क्षेत्र में ऐसी अखंड ज्योति जगाई जिससे सारा विश्व चमत्कृत हो उठा। यथा–

"एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।"

तुलसी ने सीता और राम की भक्ति के द्वारा संपूर्ण संसार में भक्ति को प्रसारित किया–

"सिया राम मै सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।"

तुलसी ने सगुण भक्ति को प्रेममय बना दिया। उनकी भक्ति में सेवक–सेव्य भाव प्रमुख है। मानस में उपलब्ध अटूट श्रद्धा व प्रेम अतुलनीय है।

सामाजिक संबंधों में आदर्श की स्थापना

तुलसी ने रामचरितमानस में जिस पारिवारिक संबंध का निरूपण किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी ने आदर्श जीवन–शैली को अपनाने पर बल दिया है जिसमें सभी सांस्कृतिक मूल्य विद्यमान रहें, आस्था और विश्वास में कमी न आए और नागरिक

श्रद्धावान, सहनशील, विचारशील, कर्मशील व चरित्रवान हो। वर्तमान समय की स्थिति पर कवि कहता है– "मनुष्य असत् आचरण करता है, यह चिंता का विषय है। इससे भी बड़ी चिंता की बात यह है कि सदाचार से उसकी आस्था हिल गई है। इस प्रकम्पित आस्था को पुनः स्थिर करने के लिए नैतिकता और चरित्र–निष्ठा में विश्वास से ही आज की विषम समस्याओं से उत्पीड़ित जन–जीवन राहत पा सकता है।"

समग्र का हित रखने वाला दृष्टिकोण आदर्श जीवन में आवश्यक है, क्योंकि एकांगी चिंतन स्वार्थ–पूर्ति तो करता है, परंतु घातक होता है। अतः उन्होंने सामाजिक संबंधों में परहित की भावना को महत्ता दी। राजा प्रजा का हित सोचे, पुत्र पिता का, पति अपने परिवार का– इस प्रकार अपने स्वार्थ को ध्यान में न रख सामाजिक संबंध यदि परहित व पर उपकार पर केंद्रित हो तो संपूर्ण समाज का जीवन सुखमय हो सकता है।

भेदभाव रहित समाज

कवि ने ऐसी जीवन–शैली का परिचय दिया है जिसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो। वर्ण, लिंग, रंग, जाति, धन इत्यादि के आधार पर समाज में विभेद उत्पन्न न हो। यथा–

"वर्ण जाति का भेद न जिसमें,
लिंग, रंग का छेद न जिसमें,
समता–शासन सत्य धर्म की।"

भारतीय जीवन के गौरव को व्यक्त करने वाली आचार्य तुलसी की उक्त पंक्तियां दृष्टव्य हैं– "जो लोग पदार्थ में विश्वास करते हैं वे असहिष्णु हो सकते हैं। जो लोग अस्त्र–शस्त्र में विश्वास करते हैं, वे निरपेक्ष हो सकते हैं। जो लोग अपने लिए दूसरों के अनिष्ट को क्षम्य मानते हैं, वे अनुदार हो सकते हैं। परंतु भारतीय संस्कृति की यह विलक्षणता रही है कि उसने पदार्थ को आवश्यक माना एवं शस्त्र शक्ति का सहारा लिया पर उसमें त्राण नहीं देखा। अपने लिए दूसरों का अनिष्ट हो गया, पर उसे क्षम्य नहीं माना। यहां जीवन का लक्ष्य विलासिता नहीं आत्म–साधना रहा। लोभ–लालसा नहीं, त्याग तितिक्षा रहा। तुलसी का काव्य भक्ति और आदर्श का समनय प्रस्तुत करता है। जिसमें न केवल भक्ति की व्यापकता है अपितु लोकरक्षा और आदर्शों को स्थापित करने का भाव भी है। निश्चय ही रामकाव्यधारा में तुलसी का स्थान अग्रणीय है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. भक्तिकाल के सगुण काव्य में रामभक्ति धारा के प्रमुख कवि हैं–

(क) कबीर (ख) तुलसी

(ग) सूर (घ) विद्यापति

6. इनमें से कौन–सी रचना तुलसीदास की नहीं है?

(क) विनय पत्रिका (ख) पार्वती मंगल

(ग) भ्रमरगीत (घ) कवितावली

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ग)

3.6 सारांश

कबीर की भक्ति किसी संप्रदाय विशेष से प्रभावित दिखाई नहीं देती। उन्होंने अपने आराध्य के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है। कहीं वे उसे राम कहते हैं, कहीं शिव, कहीं हरि, कहीं खुदा तथा कहीं अल्लहा। उनकी भक्ति का स्वरूप तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार दिखाई देता है। कबीर ने देखा कि तत्कालीन हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि रूढ़ियों तथा बाह्य आडंबरों के शिकार बने हुए हैं। मुस्लिम शासक मुल्लाओं के कहने पर हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे और बलपूर्वक उनसे धर्म परिवर्तन करा रहे थे। ऐसी स्थिति में कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति पर बल दिया।

कबीर हिंदी के प्रथम परंतु उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि थे। उनके रहस्यवाद में जो अनुभूति की तीव्रता तथा गहनता है, भावों की मधुरता तथा विरह की व्यापकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। केवल जायसी तथा महादेवी ही उनकी रहस्यानुभूति का स्पर्श करते दिखाई देते हैं। श्यामसुंदर दास ने उचित ही कहा है– ''रहस्यवादियों में कबीर का आसन सबसे ऊंचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है।''

विद्यापति के बाद हिंदी कृष्णकाव्य के प्रथम कवि सूरदास हुए जिनकी प्रतिभा को पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय के प्रचार में लगाया। सूरदास ने गोपाल कृष्ण के गोकुल, वृंदावन ओर मथुरा के जीवन से संबंधित संपूर्ण आख्यान को सूरसागर में एक गीति–प्रबंध का रूप दिया।

सूर की भक्ति–भावना के सन्दर्भ में माया, ब्रह्म, जीव, ज्ञान, कर्म आदि का भी मीमांसकों ने विवेचन किया है। सूरदास कहते हैं कि तृष्णा माया है, यह कभी तृप्त नहीं होती, वेद रूपी वृक्ष के पत्तों को खा जाती है, अष्टादश पुराण रूपी जलाशय का जल पी जाती है, फिर भी उसकी प्यास शान्त नहीं होती। यह षड्दर्शन रूपी रसों को अपने सम्मुख रख लेती है। इसके अतिरिक्त वह अहितकारी अभक्ष्य पदार्थों को भी खा जाती है, जिनका वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

सूरदास जी ने कृष्ण काव्य की परंपरा को विस्तृत व विकसित करने में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया। सूर के कृष्ण सुंदरता, प्रेम, सद्भावना, मित्रता व एकता आदि के प्रतीक के रूप में हम सबके समक्ष प्रस्तुत हैं। सूरदास जी ने अपने अराध्य देव का बड़े ही निश्छल रूप में वर्णन किया है जो अत्यंत उच्च कोटि का है।

टिप्पणी

भक्तिकाल के सगुण काव्य में राम भक्ति धारा के कवि तुलसीदास जी का साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान है। महाकवि तुलसीदास की प्रतिभा से न केवल हिंदू समाज और भारत अपितु संपूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है।

तुलसीदास भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि हैं। रामधारा के कवियों में उनका स्थान प्रमुख है। रामचरितमानस न केवल तुलसीदास की कीर्ति का आधार–स्तम्भ है, बल्कि हिन्दू समाज का धार्मिक ग्रंथ भी है। तुलसी के आराध्य भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम हैं। वे नर रूप में नारायण हैं। उन्होंने अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए पृथ्वी पर अवतार लिया। वे निर्गुण होते भी सगुण हैं। तुलसी के राम सृष्टि के कर्ता, भर्ता तथा संहारकर्ता हैं। वे यदि दीनबंधु, भक्त–वत्सल तथा दयानिधान हैं तो शील, शक्ति और सौंदर्य के समन्वित रूप भी हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने तत्कालीन समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त विषमता, विद्वेश, अव्यवस्था आदि को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। वस्तुतः वे एक मर्यादावादी कवि थे। अतः उन्होंने समाज को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए समन्वय भावना को प्रस्तुत किया। वे निश्चय ही एक महान समन्यवादी कवि कहे जा सकते हैं।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **कागद** : कागज।
- **तंदुरूस्त** : स्वस्थ।
- **विशृंखलित** : बिखरा हुआ।
- **पृथकता** : अलगाव।
- **छद्म** : छल से संबंधित।
- **सिरमौर** : सिर का मुकुट।
- **जिद्द** : हठ।
- **मनोराज्य** : मन का राज्य।
- **मिथ्या** : व्यर्थ।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।
2. कबीर की भक्ति भावना पर नारद भक्ति सूत्र का प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
3. भ्रमरगीत की दार्शनिक पीठिका क्या है?
4. सूर की भक्ति भावना के संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत क्या है?
5. तुलसीदास ने किस प्रकार की भक्ति पर बल दिया?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर की भक्ति भावना स्पष्ट करते हुए उनकी रहस्य साधना पर प्रकाश डालिए।
2. निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान निर्धारण कीजिए।
3. सूर की भक्ति भावना स्पष्ट करते हुए भ्रमरगीत परंपरा में उनका स्थान बताइए।
4. तुलसीदास की दार्शनिक चेतना रेखांकित कीजिए और बताइए कि उनके काव्य में समन्वय भावना किस प्रकार मुखरित हुई है?
5. राम काव्यधारा में तुलसी का स्थान निर्धारित कीजिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, 'कबीर की विचारधारा', साहित्य निकेतन, कानपुर।
2. डॉ. विजेन्द्र स्नातक, 'कबीर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'सूर साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. गोविन्द राय शर्मा, 'सूर की काव्य साधना', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. रामचंद्र शुक्ल, 'गोस्वामी तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
6. रामनरेश त्रिपाठी, 'तुलसीदास और उनका काव्य', राजपाल एंड संस, दिल्ली।
7. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', बिहारी रत्नाकर, लोकवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'भूषण ग्रंथावली', वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
9. परमानंद सुहाने, 'शिवराज भूषण', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

इकाई 4 रीतिकालीन कवि बिहारी, घनानन्द और भूषण : समीक्षात्मक अध्ययन

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 बिहारी
- 4.2.1 बिहारी की काव्यकला
- 4.2.2 बिहारी की बहुज्ञता
- 4.2.3 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी

4.3 घनानन्द
- 4.3.1 घनानन्द की काव्यकला
- 4.3.2 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानन्द का काव्य
- 4.3.3 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन

4.4 भूषण
- 4.4.1 भूषण का साहित्यिक अवदान
- 4.4.2 भूषण की काव्य कला
- 4.4.3 ओजस्वी कवि के रूप में भूषण

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

कविवर बिहारी एक सजग सर्जक कलाकार हैं जो वचन भंगिमा में सिद्धहस्त हैं। बिहारी के रीति काव्य के सर्वोच्च कवि के रूप में परिगणना किये जाने के मूल में उनकी उत्कृष्ट कला का पर्याप्त हाथ है। उनकी सौंदर्य चेतना को अनूठी बताते हुए डॉ. नगेंद्र के उद्‌गार हैं कि– रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी की सौंदर्य चेतना का धरातल घनानन्द और भक्त कवि सूर की तुलना में बहुत उदात्त एवं महान तो नहीं कहा जा सकता किंतु जिस वस्तुनिष्ठ सौंदर्य के सूक्ष्म अंकन एवं उसके वैविध्यपूर्ण निरूपण में बिहारी ने अपनी निपुणता का परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

घनानन्द वस्तुतः सौंदर्यवादी थे। भाव सौंदर्य उनका प्रिय विषय रहा है। उनके पास जो था उसे उन्होंने सच्चाई से प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों में श्रोता या पाठक आत्मविभोर हुए बिना नहीं रहता। सुधियों को बिसराकर न जाने कहां पहुंचता है। घनानन्द भावों के आरोह–अवरोह में पाठक को इस प्रकार बहा ले जाते हैं जैसे कोई नौका सरिता की तरल तरंगों पर फिसलती जा रही है। अतः प्रेम के अनन्य पुजारी को सौंदर्यवादी कहा जा सकता है।

टिप्पणी

घनानन्द मूलतः प्रेम की पीर के कवि हैं, जिसका आत्मबल सुजान नामक नर्तकी रही है; जबकि गौण रूप से राधा आदि गोपियां तथा श्रीकृष्ण भी उनके प्रेमभाव के आलंबन रहे हैं। फलतः उसका सौंदर्य–चित्रण भी उन्हीं पात्रों से संबंधित रहा है।

भूषण हिंदी रीति काल के वीर–काव्य तथा वीर–रस की रचना करने वाले प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने शिवराज भूषण में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका गोत्र कश्यप था। ये रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे तथा यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर (तिकवांपुर) में रहते थे, जहां बीरबल का जन्म हुआ था और जहां विश्वेश्वर के तुल्य देव–बिहारीश्वर महादेव हैं। भूषण शिवाजी के ही समकालीन एवं आश्रित थे। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कविभूषण की उपाधि दी थी। तभी से ये भूषण के नाम से ही प्रसिद्ध हो गए। ये कई राजाओं के यहां रहे। अंत में इनके मन के अनुकूल आश्रयदाता, जो इनके वीरकाव्य के नायक हुए, छत्रपति महाराज शिवाजी मिले। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहां भी इनका बड़ा मान हुआ।

इस इकाई में हम बिहारी, घनानन्द एवं भूषण से परिचित होते हुए इनके काव्य–कौशल, अवदान एवं साहित्य में स्थान आदि का अध्ययन करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बिहारी की काव्य कला एवं बहुज्ञता से अवगत हो पाएंगे;
- घनानन्द के काव्य–कौशल, उनकी प्रेम साधना आदि की विवेचना कर पाएंगे;
- भूषण के साहित्यिक अवदान एवं काव्य–कौशल को समझ पाएंगे।

4.2 बिहारी

बिहारी हिंदी साहित्य के इतिहास में 'रीतिकालीन काव्यधारा' के प्रमुख कवि हैं। इनका संपूर्ण काव्य मुक्तक शैली में लिखा गया है। महाकवि बिहारी का जन्म 1595 ई. के लगभग ग्वालियर के बसुआ गोविन्दपुर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम केशवदास था। इनके आश्रयदाता मिर्जा राजा जयसिंह थे। बिहारी सतसई बिहारी की एक मात्र रचना है। यह एक मुक्तक काव्य है जिसमें 719 दोहे समाहित हैं। इनकी कविता का मुख्य विषय श्रृंगार है। श्रृंगार के दोनों पक्षों–संयोग व वियोग का वर्णन इनके काव्य में बखूबी किया गया है। बिहारी प्रकृति के चित्रण में भी किसी से पीछे नहीं हैं। अपने काव्य में उन्होंने षट् ऋतुओं का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। बिहारी को ज्योतिष, वैद्य, गणित, विज्ञान आदि विविध विषयों का भी ज्ञान था। अपने दोहों में उन्होंने अपने इस ज्ञान का बड़ी ही खूबी के साथ उपयोग किया है।

बिहारी की काव्य भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। अपनी लेखनी में इन्होंने ब्रज के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनका शब्द चयन अत्यंत सुंदर और सार्थक है। बिहारी ने अपने काव्य में केवल दो ही छंदों का प्रयोग किया–1. दोहा और 2. सोरठा। दोहा छंद की इनके काव्य में प्रधानता पाई जाती है। इनके दोहे समास–शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बिहारी

को उनके अकेले एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' ने हिंदी साहित्य में अमरता प्रदान कर दी। श्रृंगार रस के ग्रंथों में बिहारी सतसई के समान प्रसिद्धि किसी अन्य रचना को नहीं मिली।

टिप्पणी

साहित्यिक परिचय

बिहारी सतसई को रीतिकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति कहा जा सकता है। इसका रचना काल सम्वत् 1742 माना जाता है। 713 दोहों की संख्या अपने में समेटे इस ग्रंथ में कवि बिहारी ने तत्कालीन समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। सतसई में प्रेम संबंधी और श्रृंगार संबंधी दोहों की अधिकता है, परंतु कवि ने भक्ति, प्रकृति, नीति वर्णन आदि पर कुछ दोहों की रचना की है। यह सही है कि बिहारी एक आश्रित कवि थे, परंतु उन्होंने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए सतसई को नहीं रचा। यह उनके स्वाभिमानी दृष्टिकोण के प्रतिकूल था। इसका प्रमाण उन्हीं के द्वारा रचे गए दोहे में मिलता है–

तौ अनेक औगुन मरिही चाहै यदि बलाय,

जौ मति सपन्हि बिना जदुपति राखे जाह।

बिहारी सतसई के विषय में कहा जाता है कि जहां तक 'बिहारी सतसई' के काव्य गुणों एवं महत्व का संबंध है, इस विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि यह सभी प्रकार के काव्य गुणों से मंडित है और हिंदी साहित्य में इसके समान स्तर पर खड़ी होने वाली दूसरी सतसई नहीं है।

सतसई परंपरा में जितना यश बिहारी को मिला, उतना किसी अन्य कवि को नहीं मिला। सतसई पर 52 टीकाएं लिखी जा चुकी हैं। इस ग्रंथ का अनुवाद गुजराती, फारसी, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा में भी हो चुका है। भारतीय विद्वानों ने मुक्त कंठ से बिहारी सतसई की प्रशंसा की है। इस संदर्भ में डॉ. हरिवंश लाल शर्मा ने लिखा भी है, "प्रभाव की दृष्टि से बिहारी का स्थान सर्वोच्च है। परवर्ती कवियों पर जितना प्रभाव उनका पड़ा, उतना किसी का नहीं। किसी ग्रंथ ने कवियों और टीकाकारों को इतना आकृष्ट नहीं किया जितना बिहारी सतसई ने।"

रीतिकालीन युग के कवियों की दृष्टि इतनी व्यापक एवं भावनाएं इतनी उद्दाम नहीं रहीं। इस काल के कवि मानवीय, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं से मुंह मोड़कर अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही अपना कर्तव्य समझने लगे। इसी कारण इस काल के कवियों को दरबारी कवि कहा जाने लगा। यह भारतीय संस्कृति के कवियों, ज्ञानियों एवं ऋषियों की परंपरा नहीं रही थी। जिस संस्कृति में कवियों एवं मनीषियों ने ज्ञान की आराधना को स्वीकार कर अपनी अंतरआत्मा की अनुभूतियों को महत्व दिया था, उसी समाज, उसी संस्कार के कवियों ने इस काल में अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना ही अपना चरम उद्देश्य बना लिया और अपने मान–सम्मान को भुलाकर भाटों की भांति उनकी विलासिता को तुष्ट करने के लिए कामुक एवं श्रृंगारिक रचनाओं की सृष्टि करने लगे।

संभवतः यह मुगल–संस्कृति के शासक की देन थी, जिसने संपूर्ण समाज को, यहां तक कि बुद्धिजीवियों को भी विलासिता के दलदल में झोंक दिया था। इस प्रवृत्ति का प्रथम महत्वपूर्ण कवि विद्यापति को माना जाता है, जिनकी श्रृंगारिक रचनाओं ने न

केवल रीतिकालीन विभिन्न राजाओं एवं सामंतों को, अपितु कवियों को भी अपनी विलासिता की धारा में प्रवाहित कर दिया। भक्तिकालीन कवियों पर उनका प्रभाव इसके ठीक विपरीत पड़ा और उन्होंने उन्हें भक्त की दृष्टि से देखा। रीतिकालीन कवियों की दृष्टि यद्यपि संकुचित हो गई थी और उनकी अनुभूतियों की सीमा नायिका के अंग सौंदर्य, कामुकता एवं विलासिता के भावों तक ही सीमित हो गई थी, तथापि इस काल में काव्य कला का विकास अपनी चरम सीमा पर था। इसमें अपने पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा अनुभूति, सूक्ष्मता जैसे कुछ विशेष प्रकार के गुण परिलक्षित होने लगे, जो इसे भक्तिकाल के काव्य से पृथक करके एक भिन्न काव्यधारा के रूप में प्रतिष्ठित कर गए। इन्हीं विशेष गुणों के आधार पर इस काल के काव्य को रीतिकालीन काव्य कहा जाता है।

बिहारी का साहित्यिक वैचित्र्य

दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं की महिमाओं का गुणगान करना, उनकी विलासिता, भौतिकता एवं शृंगार के दोनों पक्षों का ही वर्णन करने में व्यस्त रहता था। बिहारी ने भी अपनी कलम द्वारा अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा को रेखांकित किया है। दरबारी कवियों की संस्कृति में बिहारी के स्थान को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(अ) आश्रयदाता का मनोरंजन

रीतिकालीन कवियों का एकमात्र उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करना होता था इसलिए इस काल के काव्य में कवि की व्यापक उद्दाम दृष्टि या भावनाओं का अभाव मिलता है। उनके काव्य की अनुभूति स्थूल सौंदर्य चित्र एवं भौतिक स्तर के प्रणय केलि निरूपण तक ही सीमित रही है। बिहारी के काव्य में भी व्यापक दृष्टि का अभाव मिलता है। इसमें भी किसी उद्दात्त भावों की गहनता के दर्शन नहीं होते। कवि की संपूर्ण अनुभूति भौतिक सौंदर्य, प्रेम व्यवहार, कामुकता, विलासानुभूति तक ही सीमित है–

दीठ्यौ दे बोलति, हँसति पोढ़–विलास अपोढ़।
स्यौं त्यौं चलत न पिय–नयन छकए छकी नवोढ़।।

× × ×

निपट लजीली नवल तिय बहकि बारूनी सेइ।
त्यौं–त्यौं अति मीठी लगति, ज्यौं–ज्यौं ढीठ्यौ देइ।।

बिहारी ने भक्ति एवं नीति के दोहों की भी रचना की है। इनके आधार पर बहुत से विद्वान संभवतः उपर्युक्त मत से सहमत नहीं होंगे, परंतु इस संदर्भ में हमारा कहना है कि 'बिहारी सतसई' एक शृंगार प्रधान रचना है, इसलिए काव्य की मूल प्रवृत्तियों का निर्धारण शृंगारिक दोहों के आधार पर ही किया जा सकता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह है कि बिहारी की सतसई के भक्ति एवं नीति संबंधी दोहों में भी किसी गहन अनुभूति या भाव की उद्दातता के दर्शन नहीं होते। हां, उनके सभी दोहों की व्यंजना अवश्य अद्‌भुत है–

चलित जजित, श्रम–स्वेदकन–कलित, अरून मुख लैं न।
वन–विहार थाकी तरूनि–खरे थकाए नैन।

× × ×

नासा मोरि, नचाइ जे करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकैं लि हिय गड़ी कँटीली भौंह।।

(ब) विलासिता

रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में एक उसकी श्रृंगारिकता है, किंतु यह श्रृंगारिकता भक्तिकालीन काव्य की भांति शांत रस के माधुर्यपूर्ण अलौकिक भावों का आह्लाद उत्पन्न करने वाली नहीं है। इस श्रृंगारिकता में कामुकता, विलासिता एवं अश्लीलता के दर्शन होते हैं। बिहारी के काव्य में यह विलासिता एवं कामुकता चरम सीमा पर है। इन्होंने जयपुर के शीशमहल में होने वाली विलासिता से लेकर ईख, सन, अरहर आदि के खेतों तक में होने वाली प्रणय संबंधी कामुकता का वर्णन किया है, जो अश्लीलता की सीमा को छूता हुआ दृष्टिगोचर होता है–

चलत देत आभारू सुनि उहीं परोसहिं नांह।
लसी तमासे की दृगुन हांसी आंसुनु मांह।।

× × ×

मोहि करत कत बावरी, करैं दुराउ रूरै न।
कहे देत रंग राति के रंग–निचुरत से नैन।

(स) भौतिकता

रीतिकालीन काव्य की एक प्रमुख विशेषता उसकी भौतिकता है। रीतिकालीन काव्य अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, गहनता, मनोविश्लेषण की अद्भुत क्षमता से युक्त रहते हुए भी गहन मानवीय संवेदनाओं एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने में असफल रहा है। इस काल के काव्य में नायक–नायिका का सौंदर्य, प्रेम भाव, अन्य मानवानुभूति संबंधी भाव, प्रकृति सौंदर्य आदि का चित्रण स्थूल भौतिक रूप में मिलता है। इसमें भक्तिकालीन गंभीरता एवं सूक्ष्मता का अभाव है। बिहारी के काव्य में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनके दोहों में मानव के अंतर्मन से उठने वाले उद्दात्त भावों एवं सौंदर्यानुभूति की गहनता का अभाव है–

गड़ी कुटुम की भीर मैं रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलकु परि जाति इन, सलह हँसौ ही डीठि।।

(द) विस्तृत श्रृंगार–वर्णन

रीतिकालीन कवियों ने श्रृंगार के संयोग, वियोग, मान, केलि, प्रणय, स्वभाव, गुण, यौवन की अनुभूतियों आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इस काल में कवियों ने नायिका के सौंदर्य, व्यवहार, मुद्राओं हाव–भाव आदि के आधार पर तीन सौ से ऊपर भेद किए हैं। काव्य में स्वकीया, परकीया एवं सामान्य नायिका भेद पहले से विद्यमान थे, परंतु रीतिकाल के कवियों ने इसका वर्गीकरण करके इसके सैकड़ों भेद–प्रभेद स्थापित कर दिए। इन्होंने नारी के शारीरिक सौंदर्य, कामुक छवि, विलासितापूर्ण मुद्राओं आदि का विस्तृत वर्णन किया है। बिहारी की 'सतसई' में भी रीतिकाल की यह प्रवृत्ति अपने चरमोत्कर्ष में परिलक्षित होती है। इन्होंने नायिकाओं का वर्गीकरण तो नहीं किया है, किंतु नायिकाओं की विशिष्ट मुद्राओं एवं हाव–भावों के मादक चित्रों का अंकन इसी प्रवृत्ति के अनुरूप किया है–

टिप्पणी

टिप्पणी

गह्यौ अवौलौ बोलि ज्यौ आपहिं पठै बसीठि।
दीठि चुराई दुहुनु की लखि सकुचौंही दीठि।।
झुकि झुकि झपकौ है पलनु, फिरि फिरि जुरि, जमुहाइ।
बीदि पिआगम, नींद–मिसि, दी सब अली उठाइ।।

(य) नख–शिख वर्णन

रीतिकालीन काव्य की एक प्रमुख विशेषता नायिका के रूप–सौंदर्य का चित्रांकन करते समय उसके पैरों के नाखून से लेकर चोटी तक के सौंदर्य की मादक अभिव्यक्ति भी रही है। रीतिकालीन श्रृंगारिक कवियों की यह मनोवृत्ति उनकी रूपलिप्सा या आश्रयदाता को प्रसन्न करने हेतु की गई कामुक अभिव्यंजना की परिचायक है। इस युग का कोई भी श्रृंगारिक कवि इस मनोवृत्ति से अछूता नहीं रहा। नख–शिख वर्णन में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन करने हेतु इन्होंने तत्कालीन सामाजिक नैतिकता के बंधन को भी तोड़ दिया है। बिहारी इस दिशा में अपने युग के अन्य कवियों से भी चार कदम आगे हैं। इन्होंने नख–शिख वर्णन में सहज सौंदर्य के साथ–साथ इंद्रियोत्तेजकता एवं कामुकता का प्रबल भाव भी समाविष्ट कर दिया है–

नख–रूचि–यूरनु डारि कै, ठगि लगाइ निज साथ।
रह्यौ राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ।।
छूटे छुटावत जगत तैं सटकारे, सुकुमार।
मनु बाँधात बेनी–वैधो नील छबीले वार।।

(र) संयोग वर्णन

रीतिकाल के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगार भाव की अभिव्यक्ति रही है। श्रृंगार भाव में भी इस काल के कवियों का मन सर्वाधिक संयोग श्रृंगार के चित्रण में लगा है। संयोग श्रृंगार में विलासिता एवं कामुकता के भावों की पुष्टि अधिक होती है। संभवतः इसी कारण रीतिकालीन कवियों ने इसके अंतर्गत नायिका के रूप, हाव–भाव, हास–परिहास, नायक के साथ उपवन में आंख मिचौनी, अभिसार, मिलन, केलि आदि का चित्रण अत्यंत रमणीयता से किया है। इस काल के कवियों ने प्रणय संकेतों, मुद्राओं, नयन संकेतों, केलि की क्रीड़ाओं आदि के ऐसे–ऐसे अद्‌भुत तरीकों का वर्णन किया है जिन्हें देखकर विस्मित हो जाना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के कवि प्रतिपल इन्हीं मुद्राओं, अदाओं एवं प्रणय अभिव्यक्ति के नए–नए ढंगों को ढूंढने में लगे रहते थे। बिहारी भी इसी प्रवृत्ति से ग्रसित थे। उनकी 'सतसई' में संयोग श्रृंगार के इस प्रकार के चित्रों का प्राचुर्य है–

बिछुरैं जिए, संकोच इहिं बोलत बनत न बैन।
दोऊ दौरि लगे हियै किए लजौहें नैन।।
मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुँह यूम्यौ ढिंग जाइ।
हँस्यौ, खिसानी, गल गह्यौ, रही गरै लपटाई।।

टिप्पणी

(ल) वियोग वर्णन

रीतिकालीन काव्य में वियोग शृंगार की भी विभिन्न दशाओं का हृदयग्राही मर्मस्पर्शी चित्रण प्राप्त होता है। बिहारी ने यद्यपि वियोग शृंगार की रचना में संयोग शृंगार की अपेक्षा कम ही रुचि ली है, तथापि उन्होंने वियोग की सभी दशाओं का सुंदर एवं मनोहारी चित्रण किया है। बिहारी के काव्य में वियोग–वर्णन के चारों प्रकारों–पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणा के दर्शन होते हैं–

फिरि सुधि दै, सुधि द्याइ प्यौ, इहिं निरदई निरास।

नई–नई बहुर्‌यौ, दई! दई उसासि उसाम।।

(व) आश्रयदाताओं की आलोचना

यह विशेषता उनकी अद्वितीयता थी। बिहारी ने अपने रचना कौशल के द्वारा सिर्फ अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा मात्र ही नहीं की, अपितु उन्होंने उनके अवगुणों को भी चित्रित किया जो उनकी काव्यधर्मिता को प्रदर्शित करता है तथा उन्हें अन्य दरबारी कवियों से इतर करता है। यथा–

आगरा के शाही महल में शाहजहां के पुत्र जन्मोत्सव पर देश भर के महान कलाकारों, कवियों, संगीतशास्त्रियों आदि को आमंत्रित किया गया था। कवि बिहारी की असाधारण प्रतिभा से वहां उपस्थित सभी नरेश तथा विद्वान मंत्रमुग्ध हो गए जिसके परिणामस्वरूप राजाओं ने प्रसन्न होकर बिहारी के लिए वार्षिक वृत्ति नियत कर दी थी।

बिहारी ने जयपुर पहुंचने पर एक दोहे की मार से ही अपनी नयी रानी के प्रेम में आबद्ध महाराज जयसिंह को अन्तःपुर के घेरे से मुक्त किया, यह घटना यदि सच नहीं हो तो भी इससे प्रमाणित यही होता है कि प्रारंभ से ही बिहारी की प्रकृति शृंगारी थी। उस दोहे को देखिए–

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

अर्थात रज और रसहीन कली से ही जो भौंरा इतना बंधा हुआ है, अर्थात जो नायिका की यौवन–प्राप्ति से पहले ही उसके रूप पर मुग्ध होकर कर्तव्य–ज्ञान भूल गया है, उसकी आगे क्या दशा होगी। जो समय से पूर्व ही अपने आकर्षण का परिचय दे रहा है वह रस का समय आने पर अपने अनुराग की दृढ़ता और भी प्रमाणित करेगा।

इस प्रकार यह दोहा बोधोदय के लिए न लिखा जाकर रसोदय के उद्देश्य से ही लिखा गया होगा।

कहा जाता है कि अन्योक्ति गर्भित उपदेश से मिर्जा जयसिंह को प्रबोध हुआ और उनका प्रेमोन्माद उतर गया। इस स्थिति का वर्णन एक विद्वान आलोचक ने इस प्रकार किया है–"उनकी (राजा जयसिंह की) आंखें खुल गईं और आगा–पीछा सोचने की क्षमता लौट आई। तत्काल ही अंजलि भर स्वर्ण मुद्राएं देकर उन्होंने बिहारी का सत्कार किया और उनकी प्रशंसा करते हुए प्रति दोहा एक स्वर्ण मुद्रा पारितोषिक स्वरूप देने का वचन देकर इस प्रकार के अन्य दोहों के रचने की प्रेरणा दी।"

वस्तुतः बिहारी सतसई की रचना किए जाने के मूल में यही कारण क्रियाशील रहा है। बिहारी ने जयसिंह की आज्ञा से ही सतसई का प्रणयन किया था–

टिप्पणी

हुकुम पाइ जयसिंह कौ, हरि राधिका–प्रसाद,

करी बिहारी सतसई, भरी अनेकन स्वाद।

बिहारी रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से थे किंतु वे बहुत–सी दृष्टियों से रीतिकालीन कवियों से पृथक थे। बिहारी का युग सामंतों और राजाओं के प्रश्रय में चलने वाला युग था। उस युग का सामाजिक जीवन उचित–अनुचित का विवेक भुलाकर धन वैभव का संचय करने का युग था। बिहारी के जीवन में भी अनेक ऐसे अवसर आए जब वे अपने आश्रयदाता जयसिंह की अंधी प्रशंसा करके अपार धन और संपत्ति जुटा सकते थे किंतु उन्होंने जीवन के 'सनातन मूल्यों' की उपेक्षा नहीं की। एक स्थल पर वे कहते हैं–

मित्र न नीति गलित है, जो रखिये धान जोरि।

अभिप्राय यह है कि वे रीतिकालीन कविता की मूलधारा से तनिक हटकर काव्य सृजित कर रहे थे।

बिहारी को अपने हिंदुत्व पर गर्व था। जब राजा जयसिंह ने महाराजा शिवाजी को (मुगल शासकों की इच्छापूर्ति के लिए) पराजित किया था तो बिहारी ने राजा जयसिंह की प्रशंसा की अपेक्षा निंदा करते हुए लिखा था–

स्वारथ, सुकृतु न श्रमु बृथा; देखि बिहंग बिचारि।

बाज पराए पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि।।

इस दोहे में बिहारी ने अन्योक्ति के माध्यम से राजा जयसिंह पर व्यंग्य किया है। उनके इस दोहे ने निश्चय ही राजा जयसिंह को सजग कर दिया था। राजा जयसिंह ने बाद में शिवाजी से संधि वार्ता भी करनी चाही थी। यह बात दूसरी है कि मुगल शासक औरंगजेब ने अपने निहित स्वार्थों के कारण यह संधि वार्ता कभी नहीं होने दी थी।

4.2.1 बिहारी की काव्यकला

बिहारी की ख्याति का एक कारण उनकी सूक्ष्माभिवेशी अंतर्दृष्टि रही है जिससे उन्होंने बड़े ही सूक्ष्म–कोमल और मधुर चित्र प्रस्तुत किए हैं। बिहारी की काव्य–कला के विवेचन से पूर्व हम इस प्रकार का एक चित्र देना चाहेंगे जिसमें वयः संधि को प्राप्त नायिका की झांकी प्रस्तुत की गई है–

"छुटी न सिसुता की झलक, झलकायौ जोबनु अंग।

दीपति देह दूहून मिल, दिपति ताफता–रंग।"

प्रस्तुत दोहे में बिहारी ने नायिका की वयः संधि कालीन शारीरिक दीप्ति के संदर्भ में ताफता अर्थात धूपछांही कपड़े का उपमान प्रस्तुत किया गया है। इस उपमान योजना की विलक्षणता यह है कि 'धूपछांह कपड़े में अरुण–श्यामल रंगों का कुछ ऐसा अनूठा मिलाव रहता है कि बड़ी से बड़ी सूक्ष्म दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए भी यहां पर बताना मुश्किल हो जाता है कि अमुक स्थान अमुक क्षण में श्यामल रंग दीख पड़ता है और अमुक स्थल पर अमुक क्षण में अरुण रंग का आलोक चमकता है। उस मुग्ध नवयौवना के शरीर में कौमार्य एवं तारुण्य, घूपछांह तथा कपड़े की अनिर्वचनीय दीप्ति के समान अपनी झलक दिखला रहा है।

यहां यह समझ लेना चाहिए कि शिशुता एवं यौवन की, एक अत्यंत जटिल ढंग से 'धूप–छांह' चमकने वाली दीप्तियों के निदर्शन में कवि ने उस नव–बाला की मानसिक दीप्तियों को तथा उन क्षण–क्षण बदलती आंतरिक चेतनाओं की मोहक मिलावट की ओर भी कलात्मक संकेत किया।

डॉ. दयाशंकर तिवारी के अनुसार, "यहां कवि की रूप सृष्टि करने वाली कल्पना उसके हृदय की परिचारिका बन गई है। काव्य द्राक्षासव को ऐसी मधुर कनक–कटोरियों 'सतसई–सागर' में निश्चय ही कोई कमी नहीं है। 'सतसई' के सौंदर्यलोक में सरस, मनमोहक चित्रों की एक चटकीली 'गैलरी' की अवतारणा हुई है जो 'नव–नागरी' के 'नवल–नेह' की सीमा से मर्यादित होने पर भी, बिहारी की सौंदर्यानुभूति की व्यापकता, विशदता, सूक्ष्मता एवं मार्मिक ..... का मंजुल साध्य प्रस्तुत करती है।" वास्तव में, कविता और कामिनी का शृंगार बिहारी से बढ़ कर दूसरा कोई कलाकार नहीं कर सका।

(अ) भाव पक्ष

शृंगार– बिहारी की सतसई में संयोग और वियोग शृंगार की एक अनूठी व्यंजना हुई है किंतु वे शृंगार के संयोग पक्ष में जितने अधिक रमे हैं, उतने वियोग पक्ष में नहीं। संयोग शृंगार का निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है–

"मैं मिसहा सोयौ समुझि मुंह चूम्यो ढिंग जाई।
हंस्यौ खिसानी, गल गह्यौ रही गरै लपटाई।"

इसी प्रकार वियोग शृंगार का भी उदाहरण अवलोकनीय है–

"कर लै चूमि चढ़ा सिर उर लगाई भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति वांचति धरति समेटि।।"

बिहारी का संयोग वर्णन जितना सफल हुआ है उतना वियोग वर्णन नहीं। विरह जीवन की एक गंभीर स्थिति है। इसका जब तक किसी साहित्यकार को अनुभव न हो वह इसका मार्मिक वर्णन नहीं कर सकता। यही बात कवि बिहारी के साथ हुई है। उनका मन वियोग वर्णन में रमा नहीं है वरन वे खिलवाड़ और पहेलियां बुझाने में ही लग गए हैं। यही नहीं अनेक अत्युक्ति पूर्ण मंजमून बांधने का दोष भी उनके विरह वर्णन में आ गया है। एक उदाहरण दर्शनीय है–

"इत आवति चलि जात उत चली छःसातक हाथ।
चढ़ि हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ।।"

इन्हीं बातों को देखकर ही शुक्ल जी ने लिखा है– "भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता।" दिनकर जी का यह कथन भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है– "बिहारी के दोहों में न तो कोई बड़ी अनुभूति है न कोई ऊंची बात सिर्फ लड़कियों की कुछ अदाएं हैं। मगर कवि ने उन्हें कुछ ऐसे ढंग से चित्रित किया है कि आज तक रसिकों का मन कचोट खाकर रह जाता है जो लोग कविता में ऊंची अनुभूति या ज्ञान की बड़ी–बड़ी बातों की तलाश में रहते हैं, बिहारी की कविताओं में उन्हें अपने लिए चुनौती मिलेगी।"

अनुभव विधान– बिहारी के दोहों का अनुभव विधान अत्यंत प्रभावपूर्ण तथा रसाभिव्यंजक है। इन्होंने हावों और भावों की ऐसी सुंदर योजना की है कि कोई भी इनका समकालीन श्रृंगारी कवि इनकी समता नहीं कर सका। इनके वर्णन को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्होंने सजीव हाव–भाव भरी मूर्तियां तैयार कर दी हों। एक उदाहरण अवलोकनीय है–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भैंहनि हंसै देन कहै नटि जाय।।

भक्ति और नीति– बिहारी सतसई में प्रमुखता तो श्रृंगार की है परंतु भक्ति और नीति के दोहों की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। बिहारी भक्त कवि नहीं थे इसलिए इन्होंने निर्गुण, सगुण, नाम स्मरण, प्रतिबिंबवाद, अद्वैतवाद आदि की महिमा मुक्त कंठ से गायी है। बिहारी की दृष्टि राधा की तन द्युति पर टिकी रहती है, मन तक नहीं जा पाई है। इसी प्रकार नीति की उक्तियां भी मात्र बाह्य कवच है (जिन्हें उन्होंने बिहारी सतसई में अनेक स्वाद भरने के लिए प्रयोग किया है)। इनकी भक्ति नीति पूर्ण उक्तियों के उदाहरण द्रष्टव्य है–

भक्ति – पतवारी माला पकरि और न कुछ उपाउ।
तरि संसार पयोधि की, हरि नाम करि नाउ।।

नीति – दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दुःख द्वन्द्व।
अधिक अंधारौ जग करत मिलि मावस रविचन्द।।

उक्ति वैचित्र्य विनोद– किसी बात को कहने का बिहारी का अपना निराला ढंग है। वे अपनी प्रतिभा शक्ति के माध्यम से एकदम नई बात उपस्थित कर देते हैं। बिहारी ने शब्दों को इतना नापा–तौला है कि अनेक स्थान पर पर्यायवाची शब्दों को रख देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है और दोहे का संपूर्ण काव्य–सौंदर्य मारा जाता है। इस संबंध में उनकी यह उक्ति दर्शनीय है–

"दृग उरझत, टुटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परित गांठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति।"

इसी प्रकार उनकी उक्तियों में कहीं पानी पीकर प्यास नहीं बुझती है जिससे बिहारी के दोहे खरादे हुए, स्वर्ण जटित रत्नों के समान काव्य प्रभा से मंडित हो उठे हैं।

बिहारी ने बहुत–सी उक्तियां सज्जन, दुर्जन, कला–प्रेम और मनुष्य के स्वभाव को लक्ष्य करके कही हैं जो कि बड़ी ही सरल, सहज और स्वाभाविक बन पड़ी है–

"बड़े न हूजै गुनुन बिनु विरद बड़ाई पाइ।
कहत धतुरे सौं कनकु गहनौ गढ़ी न जाइ।।"

प्रकृति चित्रण– प्रकृति सौंदर्य का वर्णन कवि बिहारी ने छिट–पुट रूप से ही किया है। इनका प्रकृति वर्णन चित्रांकन और नाद सौंदर्य की दृष्टि से अनुपम बन पड़ा है। बिहारी ने प्रकृति को मनुष्य स्वभाव से बहुत कुछ प्रभावित माना है, अतः उन दोनों का चित्रण उन्होंने आमने–सामने रखकर किया है। उदाहरणार्थ–

"रनित भृंग घंटावली झरति दान मधु नीर।
मद–मंद आवतु चल्यौ कुंजरू कुंज समीर।
बैठि, रही अति सघन बन पैठि सदन तन माह।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौं चाहती छांह।"

(ब) कला पक्ष

बिहारी की अभिव्यक्ति के प्रसाधनों अथवा काव्य–कला की चर्चा करते समय जो बातें प्रमुख रूप से हमें आकर्षित करती हैं, उनमें ध्वनि चित्र, वर्ण और अलंकार योजना सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके अतिरिक्त है– उक्ति वैचित्र्यगत चमत्कार भी बिहारी सतसई में सर्वत्र दृष्टिगत होता है। बिहारी काव्य कला के चतुर शिल्पी थे, अतः उनके काव्य में इस प्रकार की अनेक शिल्पगत सूक्ष्मताएं विद्यमान हैं। उनकी शिल्पगत विशेषताएं निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विभक्त की जा सकती हैं–

उत्कृष्ट पद संघटना– बिहारी मुक्तककार होने के नाते छोटे से दोहा छंद में कथ्य को बड़े कौशल के साथ ही भर सकते थे जबकि 'रीति' में विश्वास रखने के कारण भी वे 'पद संघटना' पर बल देते थे। बिहारी के काव्यत्व का यह प्राण तत्व है कि वे कितने कौशल से शृंगार रसोचित माधुर्य व्यंजक पदों की नियोजना करके विलक्षण रमणीयता उत्पन्न करने में सफल हुए हैं। कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है–

"जंघ जुगल लोइन निरे करे मनौ विधि मैन।
केलि–तरून दुख दैन ए, केलि–तरून सुख दैन।।"

इसी प्रकार अन्यत्र एक दोहे से सानुप्रासिक पद योजना द्वारा माधुर्य की वृद्धि की गई है–

"रस–सिंगार–मंजनु किए खंजनु भंजनु दैन।
अंजून रंजन हूं बिना कंजनु गंजनु नैन।।"

भावानुरूप शब्द चयन की दृष्टि से तो बिहारी की लेखनी का लोहा मानना पड़ता है। नीचे के दोहे में कुछ ही शब्दों से माधुरी की सृष्टि करने का कौशल देखा जा सकता है–

"ज्यौं–ज्यौं आवति निकट निसि, त्यौं–त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि रहलै करै लगी स्वहटै बाल।।"

समास पद्धति परक कसाव– बिहारी की मुक्तक कला के प्रसंग में यह बात अक्सर कही जा सकती है कि बिहारी अत्यंत लघु आकारीय छंद में अपने कथ्य को इतना कूट–कूट कर भरते हैं कि उसमें समास पद्धति का सहारा लेना पड़ता है। यही समास शैली अभिव्यक्तिगत कसाव लाने में समर्थ रहती है। बिहारी की काव्य कलात्मक उपलब्धि में भाषा एवं शैली की सामासिकता का इसलिए भी महत्व है कि भावगत तीव्रता एवं संक्षिप्तता के कारण प्रखर आवेग सर्वत्र सुरक्षित रहता है, जिसके आधार पर उनके दोहों में 'गागर में सागर भरने' की बात कही गई है या उनके दोहों का 'नावक के तीर' कहकर देखने में छोटे लगने पर भी गहरा घाव करने वाला कहा गया है। यह सब इसी

टिप्पणी

समास शैली के कारण संभव हुआ है। अनेक संदर्भों को एक–एक शब्द मात्र से व्यंजित करने की कला में बिहारी समूचे हिंदी साहित्य में अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते। एक–दो उदाहरण से इस सत्य की पुष्टि की जा सकती है–

"मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुंह चूम्यौ ढिंग जाइ।
हंस्यौ, खिसानी गल गह्यौ, रही गरै लिपटाई।।"

इसी प्रकार के दोहों के देखकर डॉ. रमाशंकर तिवारी को बिहारी की इस विशेषता के विषय में निम्न मत व्यक्त करना पड़ा है– "बिहारी की इस समास पद्धति का रहस्य यह है कि उनकी रचना कहीं से शिथिल अथवा लचर नहीं होने पाई है। उसमें एक कसावट है, एक चुस्ती है, एक सजगता है, जो भाव को प्रत्येक प्रसंग में चमत्कृत कर देती है।"

बिहारी की वह समास शैली श्लेष एवं रूपक अलंकारों की सहायता से भी जुटाई गई है। दोनों अलंकारों के उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाएगी। श्लिष्ट पद योजना द्वारा उत्पन्न कसावट देखिए–

"चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों जन सनेह गंभीर।
को घटि ये बृजभानुजा वे हलधर के बीर।।"

एक अन्य दोहे में सांगरूपक की योजना द्वारा उत्पन्न कसावट अवलोकनीय है–

"खौरि पनिच, भृकुटी–धनुष, बीधकु–समरू तजि कानि।
हनतु तरून–मृग तिलक–सुर कमान भरि तानि।।"

वैदग्ध्य की नियोजना– बिहारी के काव्य में वाग्विदग्धता एवं क्रियाविदग्धता के उदाहरणों के आधार पर कवि की कल्पना कुशलता का परिचय प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ बिहारी के काव्योद्यान में प्रवेश करते ही हमें मंगलाचरण के रूप में जिस प्रथम पुष्प के दर्शन होते हैं, उसमें भक्ति–भावना की सुंगध, श्रृंगार भावना की कोमलता एवं सरसता तथा काव्य के कला–पक्ष की कारीगरी, ये तीनों गुण एक ही स्थान पर एकत्र मिलते हैं–

"मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।
जा तन की झांई परै, श्यामु हरित दुति होइ।।"

अर्थात हे चतुर राधा, मेरे जन्म–मरण संबंधी अथवा सांसारिक दुखों को दूर करो। तुम्हारे शरीर की आभा के आगे कृष्ण का सौंदर्य भी फीका पड़ जाता है अथवा तुम्हारी छाया–मात्र को देखने से ही श्रीकृष्ण जी आनंद–मग्न हो जाते हैं अथवा तुम्हारे शरीर के पीत वर्ण की आभा पड़ने से नील वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरित वर्ण के हो जाते हैं।

काव्य में वचन–भंगी का बहुत महत्व होता है, जबकि बिहारी की लेखनी की कुशलता के कारण ऐसे स्थल अत्यंत व्यंजक बन गए हैं। एक ही उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है–

"मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिवै काज।
दृग–पग पोंछन कौ करे भूषण पायंदाज।"

टिप्पणी

वाक्वैदग्ध्य उन स्थलों पर और निखर कर सामने आता है जहां कवि ने विरोधमूलक कथनों की योजना की है–

"रही लटू ह्वै लाल, हो लखि वह बाल अनूप।
कितौ मिठास दयौ दई इते सलौने रूप।"

कवि की भाव योजना उसके द्वारा किए गए हाव और अनुभावों के चित्रण में सफल रूप से अभिव्यंजित हुई है। नायिका नायक से वार्तालाप करने का साधन ढूंढ़ती है। विचार करने पर वह नायक की मुरली छिपा देती है। नायक के पूछने पर वह कहती है कि "मैंने नहीं छिपाई।" पर उसकी हंसी से प्रकट होता है कि मुरली उसके ही पास है। दो प्रेमी एवं विनोदशील सरस हृदयों का पारस्परिक वार्तालाप को कवि ने बड़े सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है और रसिकेंद्र बिहारी ने हाव–भावपूर्ण चित्र–सा खींच दिया है–

"बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।
सौंह करै भौंहनि हंसै दैन कहैं नटि जाइ।।"

ध्वनि एवं वर्ण चित्रों का अंकन– शब्द ध्वनि के तीन प्रकार हैं–(क) रचनात्मक शब्द ध्वनि, (ख) अनुकरणात्मक शब्द ध्वनि, (ग) व्यंजक शब्द ध्वनि।

(क) **रचनात्मक शब्द ध्वनि**

"रनित भृग घंटावली झरति दान मधु नीरू।
मंद–मंद आवत चल्यौ कुंजरू कुज–समीरू।"

(ख) **अनुकरणात्मक शब्द ध्वनि**

"रूकयौ सांकरे कुंज मग करत झांझ झुकरात।
मंद–मंद मारूत तुरंग खूंदिन आवत जात।।"

(ग) **व्यंजक शब्द ध्वनि**

"लहलहाति तन तरूनई लचि लग सौ लफि जाइ।
लगै लांक लौइन भरी लोइनु लेति लगाइ।"

इन चित्रों के प्रसंग में डॉ. बच्चनसिंह ने ऐसे चाक्षुष चित्रों को जिनमें शब्द स्पर्श गंध, रस आदि का समावेश हो, रेखाचित्र कहकर पुकारा है और बिहारी के दोहों के उदाहरण देकर उनकी 'रेखाचित्र कला' का उद्घाटन किया है। रेखाचित्र की सोद्देश्यता के विषय में उनका मापक मानदंड यही रहा है कि वे रेखाचित्र पाठक की संवेदनाओं को जगाने और संवेगों को तीव्र बनाने में पर्याप्त योगदान करते हैं। एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है–

"पीठि दिए ही नैकु मरि कर–घुंघट पटु टारि।
भरि गुलाल की त्रुटि सौं, गई मूठि सी मारि।"

नायिका का पीठ किए हुए थोड़ा–सा मुड़कर नायक को देखना, तत्पश्चात एक हाथ से घूंघट उठाना तथा दूसरे हाथ से गुलाल की मुट्ठी भरकर नायक पर फेंकना एक सजीव बिंब का निर्माण करते हैं।

वर्ण चित्रण– डॉ. नगेंद्र के अनुसार बिहारी ने रेखाचित्र केवल आंके ही नहीं, अपितु उनमें रंग भी भरे हैं।

"बिहारी और देव दोनों ने अपने चित्रों में वर्ण योजना का अद्‌भुत चमत्कार दिखाया है। कहीं छाया–प्रकाश के मिश्रण द्वारा चित्र में चमक उत्पन्न की गई है, कहीं उपयुक्त पृष्ठभूमि देते हुए एक ही रंग को काफी चटकीला कर दिया गया है और कहीं अनेक प्रकार के सूक्ष्म कौशल से मिलाते हुए उसमें सतरंगी आभा उत्पन्न की गई है।" उदाहरणार्थ यह दोहा अवलोकनीय है–

"अधर धरत हरि के परत ओठ दीठि पर जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष सी होति।।"

वयः संधि के वर्णन में रंगों का प्रयोग अति सूक्ष्मता, तरलता और कोमलता पूर्वक किया गया है–

"छूटि न सिसुता की झलक झलक्यो जोबन अंग।
दीपति देह दूहन मिलि दिपत ताफता रंग।।"

चमत्कार से अनुप्राणित होने पर कवि ने विरोधी रंगों के मेल से बड़ी उत्कृष्ट भाव व्यंजना की है–

"या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहि कोय।
ज्यौं–ज्यौं डूबै स्याम रंग त्यौं–त्यौं उज्ज्वल होय।।"

अलंकार योजना– बिहारी ने अपने काव्य में वस्तु और भावों को स्पष्ट करने के लिए ही अलंकारों की योजना की है। उनकी अलंकार सुषमा का आकलन दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **सादृश्यमूलक अलंकार**– इस वर्ग के अलंकार रूप धर्म एवं प्रभाव साम्य के आधार पर प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करके पाठकों के सामने उभरकर आते हैं। इसके अंतर्गत उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार ही प्रमुख है। डॉ. अंबा प्रसाद सुमन ने उचित ही कहा है–"अलंकारों की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' के दोहों को देखें तो कोई दोहा ऐसा नहीं जो किसी शब्दालंकार या अर्थालंकार से चमत्कृत न हो।" बहुत से दोहे तो दो–दो, तीन–तीन अलंकारों से सुसज्जित हैं। जैसे–

   उत्प्रेक्षा – सोहत ओढ़े पीतु पटु स्याम सलोनै गात।
   मनौ नीलमनि सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात।

   रूपक – मंगल बिन्दु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरू।
   इक नारी लहि सग रसमय किय लोचन जुगल।।

   उपमा – सहज सेत पचतोरिया पहरें अति छवि होति।
   चलचादर के दीप लौ जगमगाति तन जोति।।

2. **विरोधमूलक अलंकार**– विरोधमूलक अलंकारों में प्रधानतया विरोधाभास, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों को लिया जाता है। इनके कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं–

   असंगति – दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति।
   परत गाठ दुरजन हिये दई नई यह रीति।

टिप्पणी

विशेषोक्ति – निसि अंधियारी नील पट पहिर चली पिय गेह।
कहों दुराई क्यौ दुरै, दीप, दीप सिखा सी देह।।

विभावना – अंग अंग नग जगमगैं दीप सिखा सी देह।
दिया बढ़ायै हू रहै बड़ी उजेरी गेह।।

इन अलंकारों के अतिरिक्त बिहारी ने जहां ऊहाओं आदि का प्रयोग किया है वहां अत्युक्तिपरक अलंकृतियां, संवेदनाहीन बनकर रह गई हैं। इसी प्रकार कहीं–कहीं कवि उक्ति वैचित्र्य के कोरे वाग्जाल में फंसकर रह गया है। डॉ. भगीरथ मिश्र जी के अनुसार, "परंतु उक्ति वैचित्र्य की दृष्टि से बिहारी सर्वोपरि हैं। उनमें जो कथन का बांकपन और व्यंग्य है, वह बड़ा ही विलक्षण है। उनके उक्ति चमत्कार के भीतर शब्द चमत्कार, संकेतपूर्ण अर्थ, विरोधाभास, व्यंग्योक्ति, असंगति आदि की आकर्षक आभा विद्यमान है, जो काव्य मर्मज्ञ के ह्रदय को तन्मय करने वाली है।"

छंदगत सौंदर्य– बिहारी ने दोहा छंद के अनेक भेदों– भ्रमर, भ्रामर, श्येन मण्डूक, मर्कट, करम, नर मराल, मढकल, पयोधर, चल, बानर, शार्दूल, विड़ाल, श्वान आदि– का प्रयोग किया है। कहीं–कहीं उन्होंने सोरठे भी लिखे हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "इसका एक–एक दोहा हिंदी साहित्य में रत्न माना जाता है। मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहे में अपने चरमोत्कर्ष को पहुंचा है। इसमें कोई संदेह नहीं।.... इनके दोहे क्या हैं? रस की छोटी–छोटी पिचकारियां हैं। वे मुंह से छूटते ही श्रोता को सिक्त कर देते हैं।" बिहारी की छंदगत उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

बिहारी के काव्य–कला के संदर्भ में हम डॉ. हरवंश लाल शर्मा के निम्नांकित उद्‌गारों से सहमति रखते हैं– "इनके बहुत से दोहों में रस की समस्त सामग्री इतनी सहज शैली से जुटाई गई है कि वे पूरे रसवादी प्रतीत होते हैं किंतु वस्तु अलंकार आदि ध्वनि के भी इतने अधिक उदाहरण मिल जाते हैं कि उन्हें ध्वनिवादी ही मानना पड़ता है। एक ओर तो उनका वाग्वैदग्ध्य 'वक्रोक्ति काव्य जीवितम्' का घोष करता हुआ–सा प्रतीत होता है और दूसरी ओर सभी अलंकारों के ऐसे साफ उदाहरण जैसे हिंदी के रीतिग्रंथों में भी नहीं मिलते, उन्हें अलंकारवादी कहने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। बिहारी मानो प्रत्येक का विश्वास प्राप्त कर सबका प्रतिनिधित्व कर रहे थे।"

अंत में कहा जा सकता है कि बिहारी की सतसई मुक्तों का मनोरम कोष काव्य है। इसमें बिहारी ने अनेक संवाद भरने का उपक्रम किया है। अतएव, बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से वस्तु भाव तथा शिल्प, अनेक दृष्टियों में सतर्स में गूढ़–अगूढ़ अर्थ खोजे गए हैं तथा आज भी यह प्रयत्न शिथिल नहीं हुआ है। वस्तुतः बिहारी की कविता इतनी प्रगल्भ, इतनी विदग्धतापूर्ण एवं संकेत गर्भित है तथा इसकी समास–पद्धति में इतनी कसावट लाने का उद्योग किया गया है कि इसकी अनेक मनोनुकूल व्याख्याएं संभव हो सकी हैं। इसकी अर्थ विषयक समानताओं के ध्यान में रखते हुए भी डॉ. ग्रियर्सन ने इसे 'अक्षर कामधेनु' कहा है।

बिहारी की काव्य–भाषा

जहां तक काव्य में भाषा के अध्ययन का प्रश्न है, उसे दो प्रकार से समझा जा सकता है– व्याकरण की दृष्टि से और सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से। बिहारी की भाषा उक्त दोनों ही कसौटियों पर कुंदन जैसी खरी सिद्ध होती है। रससिद्ध कविवर बिहारी की भाषा

टिप्पणी

का उक्त दो दृष्टियों से अध्ययन करने के पूर्व यह जान लेना भी आवश्यक है कि सतसई की प्रतिनिधि भाषा कौन–सी है? उसमें किन–किन भाषाओं का समावेश हुआ? इस जानकारी के आधार पर हम सुविधापूर्वक कवि की भाषा के सभी पक्षों पर विचार कर सकेंगे और एक सच्चे निर्णय पर पहुंच सकेंगे।

यह निर्विवाद है कि सतसई की प्रतिनिधि भाषा ब्रज है। ब्रज के पश्चात दूसरी महत्वपूर्ण भाषा बुंदेली है और इसके बाद पूर्वी, खड़ी बोली एवं अरबी फारसी है।

जहां तक ब्रज भाषा का प्रश्न है, यह एक लंबे समय तक काव्य–भाषा रही है। इसका क्षेत्र भी अत्यंत विस्तृत रहा है। यह भाषा इतनी प्रचलित एवं लोकप्रिय थी कि इसमें कविता करने वाले के लिए यह आवश्यक न था कि वह ब्रज में जन्मा हो। सूर के समय तो ब्रज का एक ग्रामीण रूप ही प्रचलित हो गया था परंतु बिहारी तक आते–आते वह अत्यंत परिष्कृत हो गया। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसमें कृत्रिमता का प्रवेश हो गया। अरबी फारसी के भी बिहारी में पर्याप्त शब्द मिलते हैं जो अपने स्थान पर भाव प्रकाशन में अत्यंत खरे उतरे हैं। कुछ ये हैं– बकवाद, मुलुक, दरबार, अहसान, इजाफा, खूनी, चसमा, रकम, हमाम, हजार, हद, फतै आदि।

1. **शुद्ध भाषा का प्रयोग**– कविवर बिहारी की भाषा सर्वत्र अत्यंत व्यवस्थित एवं व्याकरण सम्मत है। इनकी ब्रज भाषा के व्याकरण की कसौटियों पर खरी उतरती है। इन्होंने भाषा के क्षेत्र में अपनाये जाने वाले अनेक रूपों पर ध्यान दिया और उसका परिमार्जित ढांचा तैयार कर लिया। इनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रयोग अव्यवस्थित नहीं पाए जाते। बिहारी के पहले किसी भी कवि की भाषा इतनी परिमार्जित और एकरूप नहीं मिलती। उनकी सतसई का कोई भी दोहा इसके लिए उद्धृत किया जा सकता है।

   भाषा की सरसता और ब्रज भाषा की क्रियाओं का इतना व्याकरण सम्मत एवं प्रभावक रूप अन्यत्र कहां मिलेगा?

   दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुरचित प्रीति।
   परति गांठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति।।

   भाषा पर बिहारी का शत–प्रतिशत अधिकार था। वह उनके संकेत पर सदा नर्तित होती है। भावों का इससे अच्छा और किस भाषा में संप्रेषणा होगा।

   ललन चलन सुनि पलन में, अंसुआ छलके आई।
   भई लखाई न सखिन्ह हू, झूठै ही जमुहाइ।।

   बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रज भाषा के कवियों में शब्दों को तोड़–मरोड़ विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। 'भूषण' और 'देव' ने शब्दों का बहुत अंगभंग किया है और कहीं–कहीं गलत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ मुक्त है। बिहारी की भाषा में एक ओर यदि पाणिनी की सूत्र शैली विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें अर्थ की गहनता और भावविस्तार भी अपनी पूर्णता में निहित है। इतनी चुस्त, चलती हुई एवं सरस भाषा अन्यत्र दुर्लभ है।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है, "इतनी ठोस या प्रौढ़ भाषा लिखने वाला हिंदी में दूसरा कवि नहीं हुआ। जैसी सशक्त भाषा बिहारी ने लिखी है, वैसी भाषा लिखने वाले तो दूर रहे, उल्टे भाषा को बिगाड़ने वाले ही पैदा हो गए।" बिहारी की भाषा प्रायः क्लिष्टता, दुरूहता, ग्राम्यत्व एवं अश्लीलत्व आदि दोषों से दूर है।

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।

अजों तरयौना ही रहयौ श्रुति सेवत इक रंग।
नाक वास वेसर लहयौ, बसि मुकुतन के संग।।

उल्लिखित दोहे व्याकरण की सभी कसौटियों पर खरे उतरते हैं। सौंदर्य और व्याकरण का निर्वाह प्रायः कठिन होता है, पर बिहारी इसमें पूर्ण सफल हैं। उक्त दोहों में शब्द, वाक्य और कारक प्रयोग दर्शनयी है।

2. **समास बहुल भाषा**– गंभीर और विराट भावों को अत्यंत चुस्त और थोड़े शब्दों में पूर्णता के साथ कहने की शक्ति बिहारी में अद्‌भुत है। बिहारी श्रृंगार रस के कवि हैं। अतः छोटे–छोटे समासों को ही उन्होंने अपनाया है। भाव व्यंजना के लिए भी यही उपयुक्त है। प्रायः बिहारी के समास तीन–चार पदों के लंबे हैं। समास से भाषा में कसाव तथा भावों में भी गठन आ गया है। समासों से भावों की व्यंजना में कहीं भी विकार या अवरोध नहीं आ पाया है। अधोलिखित दोहे दृष्टव्य हैं–

विकसति नवमल्ली कुसुम, निकसत परिमल पाइ।
परास पजारति बिरह हिम, वरसि रहे की बाइ।

समरस समर सकोच बस विवस न ठिक हहराइ।
फिर–फिर उझकति, फिर दुरति, दुरि दुरि उझकत आइ।।

बिहारी के समासों में सरलता और प्रवाह भी है। इससे व्यंग्य और अधिक मोहक हो जाता है–

रनित भृंग घंटावली झरत दान मधु नीर।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर।।

दोहे जैसे छोटे छंद में रस और भावों की तीव्र तथा विशाल धारा भरने के लिए बिहारी ने समास शैली को अपनाया। गागर में सागर ही नहीं बिहारी बिंदु में सिंधु भर सके हैं–

सोहित धोती सेत में, कनक वरन तन बाल।
सारद बारद बीजुरी भा, रंद की जति लाल।।

3. **अलंकारिता**– बिहारी ने अपने मुक्तकों में अपने अलंकारिक ज्ञान का प्रयोग करके भाषा सौष्ठव और चुस्ती उत्पन्न की है। प्रत्येक दोहे का एक–एक शब्द अद्वितीय कौशल और शिल्प की महिमा से मंडित है। अलंकार विधान में कविवर बिहारी अद्‌भुत हैं। उनके दोहों को अलंकारों का आगार कहते हैं। अनेक अलंकारों की जगमगाहट के साथ श्रृंगारी एवं भक्तिमूलक भावों को चित्रित करने में बिहारी की भाषा ने कमाल कर दिखाया है–

टिप्पणी

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परै, स्याम हरित दुति होय।।

इस दोहे में पांच अलंकार और तीन अर्थ हैं। राधा के रूप और गुण का व्यापक चित्रण है। झांई, स्यामु तथा हरित दुति शब्द का कवि के शब्द–शिल्प का, उसकी चातुरी का अत्यंत प्रभावक द्योतन कर रहे हैं।

'बिहारी सतसई' में शायद ही कोई दोहा हो जिसमें अलंकार प्रयोग न हुआ हो। शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार तीनों प्रकार के अलंकारों का बड़ा ही सार्थक एवं सृजनात्मक प्रयोग हुआ है। यमक और विरोधाभास की छटा निम्न दोहों में दृष्टव्य है–

कनक कनक तै सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
जा खाएं बौराय नर, वा पायें बौराय।। – यमक

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहीं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्यामु रंग, त्यौं त्यौं उज्ज्वल होय।। – विरोधाभास

4. **सरसता**– बिहारी रससिद्ध कवि हैं। उनकी भाषा ने उनकी रस धार को लोकोत्तर शरीर प्रदान किया है। भाषा की पिचकारी से रस की धार सर्वत्र अति मोहक होकर ही प्रकट हुई है। श्रृंगार रस के अनुरूप ही सर्वत्र कवर्ग एवं चवर्ग का तथा कोमल स्वरों का प्रयोग हुआ है। टवर्ग एवं अन्य कर्णकटु शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं किया गया है।

अरून बरन तरूनी चरन, अंगुरि अति सुकुमार।
चुवति सुरंग रंग सी मलै, चपि बिछयन के भार।

× × ×

बतरस लालच लाल की मरली धरी लुकाइ।
सौं करे भौंहन हंसै, दैन कहै नट जाइ।।

5. **मुहावरे**– मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता और शक्ति का संचार होता है। रस धार और भी तीव्र हो जाती है। बिहारी ने अनेक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का अत्यंत औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है। यथा–

(क) गैड़ी दै गुन राबरे कहति कलैड़ी डीठि।

(ख) पीनस बारौ जो तजे, सोरा जानि कपूर।

(ग) खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक कली न रली करै, अली अली जिय जानि।।

6. **लाक्षणिक प्रयोग**– लाक्षणिक प्रयोगों में भी बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनकी भाषा सर्वत्र तीर की भांति सधे हुए, सीधे और लाक्षणिक प्रयोग करती है। कचनार और हार पर किये गए लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण–

मूड़ चढ़ाए हूं रहे, परयौ पीठि कब भारू।
रहै गरै परि राखिबौ, तऊ हिये पर भारू।।

टिप्पणी

कई लोकप्रिय लाक्षणिक प्रयोग एक ही दोहे में प्रयुक्त हुए हैं–

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।

और भी–

खरी पातरी कान की, कौन बहाउ वानि
आक कलि न रली करै, अली अली जियानि।।

7. **अन्य भाषाएं**– कविवर बिहारी ने प्रमुख रूप से ब्रज भाषा में ही सतसई का सृजन किया है, किंतु साथ ही बुंदेली, अवधि तथा फारसी और उर्दू के भी अनेक शब्दों का प्रयोग सतसई में बड़ी स्वाभाविकता से किया है। बुंदेली भाषा तो बिहारी की मातृभाषा थी अतः उसका ललित प्रयोग तो स्वाभाविक ही है।

पूर्वी एवं अवधि के प्रयोग– दीन, कीन, लीन, आहि, लजियात, जेहि, केहि।

बुंदेली प्रयोग– खैर, लखबी, करबी, पायवी, लाने, कोद, मरोर, चाल आदि।

कई दोहे पूर्णतया ही बुंदेली भाषा में रचे गए हैं–

चिलक चिकनई चटकस्यों, लफति सटक लौं आइ।
नारि सलोनी सांवरी, नागिन लों डसि जाइ।।

मुसलमानों का राज्यकाल था, अतः उर्दू का वातावरण था ही। उसका प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा ही था। सतसई में अनेक शब्द उर्दू और फारसी के प्रयुक्त हुए हैं। जैसे–इजाफा, खुबी, खुशहाल, अदब, हद, पायन्दाज, बरजोर, हुक्म आदि।

8. **ध्वन्यात्मकता या नाद सौंदर्य**– ध्वन्यात्मकता या नाद सौंदर्य के लिए बिहारी हिंदी काव्य जगत में विख्यात हैं। इस दिशा में उनका वैशिष्ट्य निर्विवाद है। नायिका की रसभरी अंग चेष्टाओं का ध्वन्यात्मक वर्णन प्रस्तुत दोहे में द्रष्टव्य है–

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे, भौंहिन हसैं, दैन कहैं नटि जाय।।

अनियरा दीरघ दृगनु कितीं न तरुनि समान।
वह चितबनि औरे कछू, जिहिं बस होत सुजान।।

यह नेत्र सौंदर्य का चित्र अपनी ध्वन्यात्मकता में अद्वितीय है–'और कछू' के द्वारा प्रतीयमान अर्थ की ओर इंगित है।

पद मैत्री और नाद सौंदर्य को अनुप्रास के साथ कैसा सजाया है–

कहत, नटत, रीझत खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सौं बात।।

रस सिंगार मंजन किए, कंजन, मंजन दैन।
अंजन, रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन।।

रति भृंग घंटावली झरत दान मधु नीर।
मंद मंद आवत चल्यौ कुंजर कुंज समीर।

9. **प्रवाहात्मकता**– दोहे जैसे छोटे छंद में और जबकि काव्य मुक्तक शैली में रचा गया हो, तो प्रवाह की संभावना प्रायः नहीं रहती है। बिहारी ने इन सीमाओं के होते हुए भी प्रवाह की लोकोत्तर सृष्टि की है। कवि की रस धार एवं प्रवाहात्मकता की अनेक मर्मज्ञों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। शुक्ल जी ने हर दोहे को रस की पिचकारी ही कहा है। रस प्रवाह का यह उदाहरण दृष्टव्य है–

मुखु उधार पिउ लखि रहत, रह्यौ न गौ मिस सैन।
फरके औंठ, उठे पुलक, गये उधार जुरि नैन।।

नायक नायिका की प्रेममयी चेष्टाएं व्यंजित हैं। नायिका सोने का बहाना कर रही थी कि ओष्ठ फड़क उठे। बस दोनों के नेत्र मिल गए।

निष्कर्षतः बिहारी की भाषा सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है। व्याकरण और सौंदर्य की विरोधी कसौटियों पर भी वह खरी उतरती है। बिहारी का भाषा पर सच्चा अधिकार था। बिहारी को भाषा का पंडित कहना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाला, भाषा पर वैसा ही अधिकार रखनेवाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता। शब्दों की आत्मा, उनका ध्वनन, उनका गठन, अर्थ वैविध्य, संकेतात्मकता एवं अलंकारिता सभी दृष्टियों से बिहारी की काव्य भाषा सच्चे अर्थों में संप्रेषणीयता की अद्‌भुत शक्ति रखती है।

4.2.2 बिहारी की बहुज्ञता

कविवर बिहारी के सांसारिक ज्ञान का क्षितिज अत्यंत विस्तृत है। उन्होंने गांव की फटेहाली भी देखी, खुशहाली भी। उन्होंने कवि संतों की संगति भी की और शास्त्र ज्ञान भी प्राप्त किया। उन्होंने राज दरबारों में दरबारीपन भी किया और एक जागरूक सृष्टा की भांति राजाओं के साथ व्यवहार भी किया। उन्होंने केवल प्रशंसा ही नहीं की बल्कि आलोचनात्मक व्यंग्य भी किये। उन्हें मानव समाज के सज्जन से सज्जन और दुर्जन से दुर्जन व्यक्ति की पहचान है। जहां वह सच्चे प्रेमी के हृदय की दशा व्यक्त करते हैं, वहीं लंपट और काइयां नायक का मनोविज्ञान समझते हैं। मनोविज्ञान के आधार पर कोन–सी बात कब कहनी चाहिए इसे बिहारी खूब जानते हैं। बिहारी के काव्य में क्या भक्ति और क्या श्रृंगार, क्या काइंयापन ओर क्या भोग–विलास सभी कुछ उनकी लेखनी पर सधे हुए हैं। 'बिहारी सतसई' के सृजन में कवि की प्रतिभा बहुआयामी दृष्टिगत होती है। उसमें जीवन के विविध क्षेत्र के अनुभव संसार का गहरा साक्षात्कार होता है। 'बिहारी सतसई' में आए विभिन्न दोहों के आधार पर बिहारी के ज्ञान को निम्न आधारों पर समझा जा सकता है–

ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान– कविवर बिहारी को ज्योतिष शास्त्र का गहरा ज्ञान था। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन विधिवत ज्योतिषियों के संसर्ग में किया था। उन्होंने अपनी कविता की सृजनात्मकता में इस ज्ञान का उपयोग किया है। ज्योतिष शास्त्र संबंधी उनके कई दोहे हैं। जातक संग्रह के राजयोग प्रकरण में लिखा है कि यदि शनिश्चर तुला, धनु या मीन में हो अथवा लग्न में पड़ा हो तो वह स्वयं राजा होता है तथा राजवंश का करने वाला होता है। ज्योतिष के इस सिद्धांत को लेकर बिहारी ने अग्रलिखित दोहा लिखा है–

सनि–कज्जल चख–झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।

क्यौ न नृपति है भेगवै लहि सुदेसु सबु देहु।।

नेत्र–रूपी मौन की लगन (लग्न तथा लगालगी) में सनेह–रूपी बालक का जन्म हुआ है। अतएव यह सनेह–रूपी बालक सारे शरीर–रूपी देश पर शासन कर रहा है। इसी प्रकार एक दूसरा सिद्धांत है कि यदि मंगल, चंद्रमा और बृहस्पति एक ही नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी एक पर पड़े हों तो इतनी वर्षा होती है कि संसार जलमय हो जाता है। निम्नलिखित दोहे में मस्तक पर लगी लाल बिंदी को मंगल माना गया है, मुख को चंद्रमा माना गया है और केशर के पीले तिलक को बृहस्पति माना गया है। इसी में तीनों एक ही नारी (नाड़ी या स्त्री) में विराजमान है। अतएव नेत्र–रूपी संसार रसमय, प्रेममय या जलमय हो गया है–

मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि, केसरि–आड़ गुरू।

इस नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगतु।।

इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे में कवि ने मंगल के अंदर चंद्र की अंतर्दशा पर ध्यान दिलाया है जो कि स्त्री पुत्रादि अनेक सुखों को देने वाला होता है–

भाल लाल वेंदी, ललन आखत रहे विराजि।

इन्दु कला कुज मैं बसी मनौ राहु भय भाजि।।

लाल बिंदी रूप मंगल में अक्षत रूप चंद्रमा विराजमान है जो कि स्त्री रूप सप्तम स्थान केंद्र में पड़ा हुआ है, अतएव अनेक सुखों का देने वाला है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कविवर बिहारी ने अपनी काव्याभिव्यक्ति में ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का प्रयोग अनेक दोहों में किया है।

आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान– 'बिहारी सतसई' में ऐसे अनेक दोहे समाहित हुए हैं जिनमें बिहारी का आयुर्वेद का व्यावहारिक ज्ञान दिखलाई पड़ता है। किसी दोहे में विषम ज्वर का उपचार सुदर्शन चूर्ण बताया है तो सुदर्शन चूर्ण के रस से ज्वर की तीव्रता की बात कही है। कहीं नाड़ी ज्ञान, निदान की बात कही है तो कहीं पीनस रोग के लक्षण बतलाए हैं। निम्नलिखित दोहे में बिहारी ने पारे से नपुंसकता के उपचार की बात कही है–

वहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि।

वैद–वधू हंसि भेद सौं रही नाह मुंह चाहि।।

दार्शनिकता– बिहारी के दोहों में कहीं–कहीं दार्शनिक विषयों की छाया पायी जाती है। कुछ तो साधारण विषय हैं और कुछ दोहों में विशेषता भी है। निम्नलिखित दोहे में प्रमाणवाद का उल्लेख किया गया है जो कि सर्वजन–संवेद्य नहीं कहा जा सकता–

बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ।

सूछम कटि पर ब्रह्य सी अलख, लखी नहिं जाइ।।

किसी–किसी दोहे में परमात्मा की व्यापकता इत्यादि सर्वजन संवेद्य सुलभ सिद्धांतों की छाया पाई जाती है। भगवान की व्यापकता में–

टिप्पणी

मैं समझ्यौ निरधार, यह जगु कांचो कांच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहां।।

बिहारी सतसई में दर्शन शास्त्र संबंधी अनेक दोहे समाहित हैं जिनमें कहीं एक तत्व की प्रधानता अभिव्यक्त की गई है। योग तथा अद्वैतवाद का वर्णन किया है तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं रहस्यमयता पर प्रकाश डाला है। जीवन और जगत के विभिन्न प्रश्नों को रचनाकार ने अपने ढंग से बड़ी कलात्मक अभिव्यक्ति की है।

वैज्ञानिकता– एक–दो दोहों में बिहारी के वैज्ञानिक ज्ञान की भी छाया पायी जाती है। जब किसी औषधि का अर्क खींचना होता है तब उसे पहले पानी में डुबा देते हैं, फिर किसी बर्तन में भरकर उसे आग पर चढ़ा देते हैं ओर नीलाभ यंत्र से उसका संबंध एक दूसरे बर्तन से कर देते हैं। औषधि पात्र का जल औषधि का सार लेकर भाप बनकर उड़ता है और नीलाभ यंत्र के द्वारा दूसरे बर्तन में पहुंचकर पानी बनकर टपक जाता है। बिहारी ने इसी क्रिया का उपादान आंसुओं के वर्णन के प्रसंग में किया है–

तच्यौ आंच अब विरह की, रह्यौ प्रेम–रस भीजि।
नैननु कै मन जलु बहे हियौ पसीजि पसीजि।।

हृदय प्रेम–रस में भीगा हुआ है और वियोगाग्नि से संतप्त किया गया है। इस प्रकार हृदय नेत्रों में मार्ग से पसीज–पसीज कर पानी के रूप में बहता है।

दो–एक दोहों से रंगों के सम्मिश्रण के भी ज्ञान का पता चलता है। प्रथम दोहे में ही पीले और नीले रंग को मिलाकर हरे रंग बन जाने की बात कही गई है। एक दूसरे दोहे में धूप–छांह का वर्णन है–

छूटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहुन मिलि दिपति ताफता–रंग।।

दो दोहों में गणित के ज्ञान की छाया पायी जाती है। एक दोहे में बिंदु से दस गुने अंक हो जाने की बात कही गई और दूसरे दोहे से टेढ़ी बकारी लगाने से दस का रुपया हो जाने की ओर संकेत किया गया है।

कर्मकांड– दो–एक दोहों पर बिहारी के कर्मकांड विषयक ज्ञान की भी छाप पायी जाती है। बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में यज्ञ की ओर संकेत किया है–

होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल।
ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि–अगन की ज्वाल।।

इसी प्रकार एक दूसरे दोहे में पाणिग्रहण संस्कार की छाया अधिगत होती है–

स्वेद सलिलु, रोमांच कुसुगहि दुलही अरू नाथ।
दियौ हियौ संग हाथ कैं हथलैवै ही हाथ।।

कामशास्त्र– कामशास्त्र का ज्ञान भी शास्त्रीय ज्ञान में ही आता है। बिहारी का दंत–क्षत, नख–क्षत, विपरीत रति इत्यादि का वर्णन कामशास्त्रीय ज्ञान के अंदर सन्निविष्ट हो जाता है। निम्नलिखित दोहे में कामशास्त्र संबंधी आसनों की छाया लक्षित होती है–

पलनु पीक, अंजनु अधर, धरै महावरू माल।
आज मिले सुभली करी भले बने हौ लाल।।

प्राचीन ग्रंथों का ज्ञान– 'बिहारी सतसई' के दोहों में कुछ ऐसे दोहों का समावेश है जो हमारे प्राचीन ग्रंथों के इति वृत्त से सरोकार रखते हैं जैसे महाभारत, रामायण एवं पौराणिक आख्यान। महाभारत के कथावृत्त के अनुसार दुर्योधन जल स्तंभन की विद्या जानता था। अंत में जब उसके वर्ग के सभी वीर मारे गए तब वह जल में जाकर छिपा था। इस कथा की छाया निम्न दोहे में देखी जा सकती है–

विरह–विथा–जल परस बिनु असियतु मो–मन–ताल।
कछु जानत जल–थम्भ विधि दुर्योधन लौं, लाल।।

दुर्योधन जल में बैठा था किंतु जल–स्तंभ की विद्या के प्रभाव से स्पर्श जल से नहीं होता था। इसी प्रकार नायक–नायिका के हृदय में विरह रूपी दुर्योधन निवास करता है। किंतु आश्चर्य है कि उसका स्पर्श किसी तरह से नहीं हो पाता।

दो–एक दोहों में रामायण के ज्ञान की छाया पायी जाती है। कहा जाता है कि जब हनुमान समुद्र में कूद रहे थे तब समुद्र में रहने वाली राक्षसी ने हनुमान की छाया पकड़ ली जिससे हनुमान रुक गए और कठिनाई से पार जा सके। बिहारी ने संसार सागर को पार करने में स्त्री को छाया–ग्राहिणी राक्षसी माना है जिसके कारण सरलतापूर्वक कोई भी भवसागर के पार नहीं जा सकता–

या भव–पारावार कौं उलंधि पार को जाइ।
तिय–छवि–छायाग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ।।

एक दोहे में शंकर जी के मस्तक पर चंद्र और विष्णु भगवान के वक्ष स्थल पर लक्ष्मीजी के निवास की पौराणिक कल्पना का सुंदरता के साथ उपादान किया गया है–

प्रनप्रिया हिय में बसै, नखरेखा ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरि–हर–रूप, रसाल।।

लोक जीवन का ज्ञान– 'बिहारी सतसई' में शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त लोक जीवन के ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कविवर बिहारी को जन जीवन की गहरी जानकारी थी। बिहारी का कृषि ज्ञान निम्न दोहे में देखा जा सकता है–

सुनु सूक्यौ वीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहर अजौं, घरि घर हरि जियनारि।।

बिहारी ने इस दोहे में समाप्त होने वाली फसलों का क्रमशः उपादान किया है। पहले तो सन काटा जाता है, उसके बाद कपास का नंबर आता है, फिर ईख समाप्त होती है और उसके बाद अरहर काटी जाती है।

राजनीति शास्त्र व तात्कालिक समस्याओं का ज्ञान– बिहारी सतसई के अतिशय दोहों में राज धर्म, राजनीति संबंधी विषयों पर तथा तात्कालिक समस्याओं पर भी अपने विचार दोहों में प्रकट किए हैं। कुछ दोहों में इनके युद्ध विधा संबंधी ज्ञान का भी पता चलता है। युद्ध के लिए जब सेनाएं प्रस्थान करती हैं, तब उसके आगे चलने के लिए सेना की छोटी टुकड़ी भेजी जाती है जिससे मुख्य सेना सुरक्षित रहे और उस सेना की आड़ में शत्रु पर प्रहार करे। सेना के इस भाग को 'हरौल' कहते हैं। जब शत्रु पक्ष की मुख्य सेनाएं सबल होती हैं तब हरौल की उपेक्षा कर तत्काल मुख्य सेना पर जा पहुंचती हैं। बिहारी ने घूंघट के पतले परदे को हरौल माना है और नायक–नायिका के नेत्रों

टिप्पणी

को मुख्य सेना। जिस प्रकार मुख्य सेना हरौल का अतिक्रमण कर शत्रु की मुख्य सेना पर जा टूटती है, उसी प्रकार घूँघट पट का अतिक्रमण कर दोनों के नेत्र जा मिले–

जुरे दुहुन के दृग झमकि रूके न झीनै चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं घरे गोल पर भीर।।

एक और दोहे से भी बिहारी की युद्ध विद्या का ज्ञान प्रकट होता है–

लिख दरौत प्रिय–कर–कटकु बास–छुड़ावन–काज।
वरूनी–वन गाढ़ै दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज।।

जिस प्रकार जब शत्रु सेना आवास छुड़ाने का आक्रमण कर रही हो तब कोई दुर्बल प्रतिपक्षी बन में बने हुए अपने किसी निवास स्थान में छिपा रहता है, उसी प्रकार जब प्रियतम का हाथ रूपी सैन्यदल नायिका के वास (वस्त्र) को छुड़ाने के लिए दौड़ने लगा तब नायिका की लज्जा वरूणी–रूपी जंगल में नेत्र–रूपी गुप्त आवास स्थान में छिप रही।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि बिहारी का निरीक्षण क्षेत्र व्यापक था किंतु उन्हें किसी शास्त्र अथवा विद्या का महान विद्वान मान लेना उनके प्रति अन्याय करना होगा। उनके दोहों की सफलता और लोकप्रियता के मूल में उनकी बहुलता नहीं, उनकी पर्यवेक्षण दृष्टि है। जन–जीवन से अनेक प्रचलित बातों को उठाकर उन्होंने अपने काव्य में यथावसर गूंथ दिया है। जो भी वस्तु उनकी दृष्टि में आई, जिस किसी का निरीक्षण उन्होंने किया उसकी तह तक पहुंच जाने की उनमें विलक्षण शक्ति थी।

4.2.3 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी

'मुक्तक' ऐसी काव्य रचना को कहते हैं जो छोटी, स्वतंत्र एवं अपने आप में पूर्ण होती है। इसमें कवि अपने कथ्य के पूर्णतः नियंत्रित एवं सुव्यवस्थित स्वरूप को कम–से–कम शब्दों में व्यक्त कर देता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल मुक्तक की व्याख्या करते हुए कहते हैं– "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा–प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भुला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थाई प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता है।"

भारतीय साहित्य ही नहीं, विश्व के साहित्य का प्रथम ग्रंथ ऋग्वेद को माना जाता है। यह मुक्तकों का ही संग्रह है। इसमें विभिन्न चेतन शक्तियों की स्तुति की गई है। ये स्तुतियां सूक्तों के रूप में इसमें संकलित हैं।

'ऋग्वेद' से प्रारंभ हुई यह मुक्तक परंपरा एक विस्तृत अंतराल तक संस्कृत साहित्य पर छाई रही। 'ऋग्वेद' के पश्चात रचे गए तीनों वेद इसी परंपरा के ग्रंथ हैं। मुक्तक की यह परंपरा भक्ति या नीति के श्लोकों के रूप में उपनिषदकाल, पुराणकाल में भी विद्यमान रही और हिंदी–साहित्य के रीतिकाल तक इसके दर्शन होते रहे हैं।

संस्कृत साहित्य की इसी मुक्तक परंपरा ने कालांतर में 200 से 300 ईसा पूर्व प्राकृत को प्रभावित किया। प्राकृत में कई उत्कृष्ट कोटि के मुक्तक ग्रंथ प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों में 'गाथा सप्तशती' एवं 'अमरूक शतक' उल्लेखनीय हैं। इस समय तक इन

मुक्तकों के मूलभूत विषय में अंतर आ गया था। मुक्तक काव्य की वह धारा जो संस्कृत–साहित्य के अंतर्गत केवल ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में बहती थी, सामाजिक लोक जीवन में प्रवेश कर गई। इसने लोक व्यवहार, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन, प्रेमानुभूति तथा प्रेम क्रीड़ाओं को भी अपने आंचल में समेट लिया। प्रकृति में रची गई 'गाथा सप्तशती' लोक व्यवहार एवं श्रृंगार संबंधी प्रथम रचना थी। यह मुक्तक परंपरा की प्रथम श्रृंगारिक रचना समझी जाती है। इसके पश्चात 'अमरूक शतक', 'आर्य सत्पशती', 'चोर पंचाशिका', 'श्रृंगार शतक' आदि अनेक श्रृंगारिक रचनाओं ने परंपरा में सहयोग किया। इन मुक्तक ग्रंथों में से कुछ ही भाषा प्राकृत थी, कुछ की संस्कृत। संस्कृत में रचे गए ये मुक्तक प्राचीन संस्कृत मुक्तक से विषय के कारण भिन्न थे। प्राचीन संस्कृत में ज्ञान एवं भक्ति के विषय पर मुक्तकों की रचनाएं की गई थीं, पर इन नवीन ग्रंथों का विषय श्रृंगार प्रमुख था।

'गाथा सप्तशती' से प्रारंभ होने वाले श्रृंगारपरक मुक्तकों में जयदेव कृत 'गीत गोविंद' हिंदी साहित्य का प्रथम श्रृंगारिक मुक्तक ग्रंथ समझा जाता है। जयदेव के पश्चात विद्यापति ने भी इस परंपरा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भक्तिकाल में तो मानो भक्तिपरक मुक्तकों की मूसलाधार बारिश ही होने लगी। कबीर, सूर, तुलसी आदि महाकवियों के भक्तिपरक मुक्तक घर–घर गूंजने लगे।

रीतिकाल में पुनः मुक्तक का रूप बदल गया और इसमें श्रृंगारपरक रचनाएं होने लगीं। इस युग की मुक्तक रचना में एक विशेषता थी। रीतकालीन कवि इन मुक्तकों की रचना रीतिबद्ध एवं रीत्यानुसार काव्यांगों के लक्षणों तथा उदाहरणों के साथ करने लगे। इन मुक्तकों में श्रृंगार रस के विविध व्यापक स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस युग में प्रमुख मुक्तककारों में बिहारी, बेनी, मतिराम, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, रसनिधि, नृपशंभु, देव, श्रीपति, कृष्णकवि, रसलीन, दूलहबेनी प्रवीन, पद्माकार, ग्वालकवि हठी जी रामसहायदास, पजनेस, द्विजदेव आदी अनेक कवि उत्पन्न हुए।

आधुनिक युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र, गिरिधर कविराय, रत्नाकर, 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त आदि अनेक कवियों ने इस मुक्तक परंपरा में अपना योगदान दिया। मुक्तक की रचनाएं आज भी हो रही हैं और इन्होंने काव्य के नये–नये स्वरूप से काव्य जगत को परिचित कराया है।

मुक्तक परंपरा में बिहारी का स्थान

हिंदी में मुक्तक की परंपरा जयदेव से प्रारंभ हुई। जयदेव के गीतों में भक्ति एवं श्रृंगार–भाव की लालित्यमय गहन संवेदनात्मक तीव्रता विद्यमान है। भाव की प्रबलता एवं गंभीर आह्लादित कर देने वाले प्रभाव के कारण इन्हें उत्कृष्ट काव्य की कोटि में रखा जाता है। विद्यापति के गीतों में भी यही भाव, अनुभूत, संवेदना एवं प्रभावोत्पादक दृष्टिगोचर होती है। भाव एवं रस की सृष्टि में ये बिहारी से श्रेष्ठ रहे हैं, किंतु इस तथ्य को दृष्टि में रखा जाए कि बिहारी ने अपने भावों की अभिव्यक्ति दोहे जैसे लघु छंद मुक्तकों में की है, तो बिहारी इनसे श्रेष्ठ प्रमाणित होते हैं।

भक्तियुग के मुक्तकों में भाव गहनता का प्राबल्य है। इनमें भक्ति के जिन उदात्त भावों की गहन अभिव्यक्ति हुई है, वे बिहारी से कई गुना श्रेष्ठ हैं। कबीर एवं तुलसी के दोहे इसके उदाहरण हैं। सूरदास एवं तुलसी दास के पदों को बिहारी के दोहों की

तुलना में नहीं रखा जाए तो बिहारी, कबीर एवं तुलसी के दोहों के सामने नहीं ठहरते। कतिपय विद्वानों ने भक्तिपरक मुक्तक होने के कारण भक्तिकालीन कवियों के मुक्तक को बिहारी के श्रृंगारिक मुक्तक से तुलना करना उचित नहीं समझा है, किंतु यह दृष्टिकोण अनुचित है। मुक्तक तो ये भी हैं। केवल विषयांतर के होने के कारण इनको तुलनात्मक काव्य नहीं मानना सही नहीं है। काव्य में भावगहनता एवं कलात्मक निपुणता का ही महत्व होता है। बिहारी की कलात्मक निपुणता तो इन मुक्तकों से भी श्रेष्ठ है, किंतु उनका भाव इनकी अपेक्षा अत्यंत सतही है।

श्रृंगारपरक मुक्तकों का रीतिकाल में प्राचुर्य रहा है। इन मुक्तकों की बिहारी से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि बिहारी रीतिकालीन सभी मुक्तककारों से श्रेष्ठ हैं। इनके लघु दोहों में भाव, प्रभाव एवं अनुभूति की जो विलक्षण तीव्रता विद्यमान है, वह अन्य कवियों के मुक्तकों में नहीं है। काव्य कला की दृष्टि से भी बिहारी इन सब में श्रेष्ठ हैं। उनके दोहों में जिस काव्यशास्त्रीय निपुणता का प्रदर्शन किया गया है, वह केशव को छोड़कर अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं होती, किंतु केशव ने बड़े–बड़े पदों की रचना की है, दोहों जैसे लघु छंदों को नहीं। इस लघु मुक्तक में बिहारी ने सर्वश्रेष्ठ काव्याशास्त्रीय ज्ञान का परिचय दिया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं देव एवं पद्मकार के कवित्त–सवैये को इनस श्रेष्ठ मुक्तक माना है। उनके अनुसार देव एवं पद्माकर में जिस भाव प्रवाह के दर्शन होते हैं, वह बिहारी में नहीं है। उन्होंने भाव की आह्लादपूर्ण अलौकिक आनंदानुभूति के स्तर पर भी बिहारी के दोहों की सतही माना है। यह सत्य है कि देव एवं पद्माकर के मुक्तकों में भाव–प्रवाह बिहारी की अपेक्षा अधिक है, किंतु यह भी सत्य है कि कवित्त एवं सवैये में कवि को दोहे की अपेक्षा कई गुना अधिक अवसर प्राप्त होता है। उसके पास अपनी भावानुभूति को व्यक्त करने के लिए अधिक स्थान होता है। इस दृष्टिकोण से इन दोनों कवियों से भी बिहारी को श्रेष्ठ समझना समीचीन होगा जहां तक भाव के सतही होने का प्रश्न है। यह रीतिकालीन प्रवृत्ति रही है। इसके लिए अकेले बिहारी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

यहां समालोचक की एक अन्य दृष्टि का भी अवलोकन आवश्यक है। प्रायः सभी मूर्द्धन्य विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि बिहारी 'गाथा सप्तशती' एवं 'अमरूक शतक' से अत्यधिक प्रभावित थे और उन्होंने अपने अधिकतर दोहों का भाव वहीं से ग्रहण किया है, किंतु इन्होंने बिहारी के दोहों को भावाभिव्यक्ति एवं कलात्मक चमत्कार के दृष्टिकोण से 'गाथा सप्तशती' की अपेक्षा उत्तम बताते हुए बिहारी को कविवर हाल (गाथा सप्तशती के रचियता) से भी श्रेष्ठ प्रभावित किया है।

समालोचना का यह दृष्टिकोण इन मूर्द्धन्य विद्वानों की निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। किसी भी काव्य, संगीत, वास्तु–निर्माण कला आदि में प्रारंभिक कल्पना (आइडिया) का महत्व सर्वाधिक होता है। किसी भी कलाकार, कथाकार, संगीतकार, काव्यकार, वास्तुकार की मौलिकता का मापदंड यही प्रारंभिक कल्पना है। किसी अन्य रचना से भाव को ग्रहण कर उसके आधार पर कोई कलाकार चाहे कितनी ही भव्य–मनोहारी कलात्मक कृति निर्मित कर ले वह द्वितीय श्रेणी का ही कलाकार कहलाता है। इसलिए बिहारी को हाल से श्रेष्ठ प्रमाणित करने का प्रयास एक 'पूर्वाग्रह युक्त' प्रयास है। इसमें कोई तथ्य नहीं। इन विद्वानों का कथन है बिहारी के अनुभाव

योजना एवं प्रस्तुति हाल से श्रेष्ठ है। प्रथम तो इस कथन में ही कई भ्रामक तथ्य हैं। बिहारी के दोहों की बखिया तो सभी विद्वानों ने उधेड़ी है और उसमें छुपे विभिन्न रत्नों को ढूंढ़ निकाला है, किंतु 'गाथा सप्तशती' को पढ़ा भी शायद ही किसी ने हो। प्राकृत में होने के कारण यह ग्रंथ सभी की समझ में आने योग्य नहीं है। एक दो अपूर्ण व्याख्याएं कहीं प्राप्त भी होती हैं तो उसमें व्याख्याकार की मानसिकता का ध्यान न रखना भी भ्रम का निरूपण करने के लिए पर्याप्त है। हमारी दृष्टि में श्रृंगार मुक्तकों की परंपरा में 'गाथा सप्तशती' प्रथम मौलिक रचना है, जिसके काव्य वैभव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसके पश्चात लिखे गए संख्यावाचक सभी मुक्तक ग्रंथ इसी से प्रभावित रहे हैं।

गोवर्द्धनाचार्य ने 'आर्य सप्तशती' के रूप में इसका संस्कृत अनुवाद किया और यह कहते हुए पराजय स्वीकार कर ली कि संस्कृत भाषा के माध्यम से प्राकृत जैसा माधुर्य और लालित्य उत्पन्न नहीं किया जा सकता। स्वयं बिहारी इस ग्रंथ से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं और उनके अनेक दोहे इसके दोहों के भावानुवाद मात्र हैं।

उपर्युक्त सभी तथ्यों पर दृष्टिपात करने के पश्चात कहा जा सकता है कि संस्कृत प्राकृति आदि साहित्य की श्रृंगार मुक्तक परंपरा में कवि हाल सर्वश्रेष्ठ थे। बिहारी का स्थान इसमें दूसरा है। हिंदी साहित्य की मुक्तक परंपराओं में कबीर, तुलसी जैसे भक्तिकालीन मुक्तककार बिहारी से सभी दृष्टियों में श्रेष्ठ थे। काव्य चमत्कार की दृष्टि से बिहारी को इनसे सर्वश्रेष्ठ समझा जा सकता है। हिंदी साहित्य के श्रृंगारपरक मुक्तकों की परंपरा में बिहारी को सर्वश्रेष्ठ समझा जा सकता है। वह भी इस आधार पर कि दोहे जैसे लघु मुक्तक में उन्होंने अपने भावों की जैसी अद्‌भुत अभिव्यक्ति की है, वह अन्यत्र प्राप्य नहीं है। रीतिकालीन मुक्तककारों में तो वे निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ हैं।

बिहारी के पश्चात आधुनिक युग तक जितने भी मुक्तककार हुए हैं, उनमें से अधिकांश बिहारी से प्रभावित रहे हैं, शेष इनकी काव्य प्रतिभा के समक्ष कहीं नहीं ठहरते हैं। इस कारण इन्हें रीतिकाल एवं आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार भी कहा जा सकता है।

मुक्तक का सीधा सादा अर्थ है– ऐसा काव्य जो कि पूर्वापर संबंध से मुक्त हो। बिहारी के युग में मुक्तकों का बहुत अधिक प्रचलन था और इसका स्वाभाविक कारण यह था कि "उस समय लंबा–चौड़ा प्रबंध सुनने की न तो किसी को फर्सत ही थी और न कवि को ही इतर काव्यरूपों के माध्यम से अपनी काव्य प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवकाश था।" 'बिहारी सतसई' उस युग की एक मुक्तक काव्य परंपरा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि समझी जा सकती है। मुक्तक काव्य के गुण–दोषों की कसौटी पर बिहारी सतसई का मूल्यांकन करने से पूर्व मुक्तक काव्य की विशेषताओं का विवेचन किया जाना आवश्यक है। विद्वानों के अनुसार, मुक्तक काव्य की विशेषताएं इस प्रकार हैं। पूर्वापर निरपेक्षता, मार्मिक प्रसंगों का चयन, रसात्मकता, चमत्कार विधान, अर्थगौरव, समाहार शक्ति तथा अलंकार विधान। इन विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन और इन विशेषताओं के संदर्भ में 'बिहारी सतसई' की स्थिति नियमानुसार है–

पूर्वापर निरपेक्षता– मुक्तक की पहली शर्त उसकी पूर्वापर निरपेक्षता होती है। मुक्तक में किसी भी प्रकार का पूर्वापर संबंध नहीं होता। मुक्तककार के पास प्रबंधकाव्य जैसी

विस्तृत भूमि नहीं होती, उसे तो सीमित ही नहीं, अत्यंत सीमित आकार की रचनाओं में असीमित भाव संपदा सजोनी होती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "बोलने का परिमित अधिकार होने के कारण उसे गिने चुने शब्दों में अभीष्ट भावाभिव्यक्ति की जिम्मेदारी निबाहने के लिए अपनी भाषा को चुस्त, प्रवाहपूर्ण और सशक्त बनाना पड़ता है। दूर तक फैले हुए जीवन क्षेत्र से उसे ऐसे मार्मिक खंड का चयन करना पड़ता है जिसका जीता जागता चित्र वह अपेन छंद की छोटी सी चित्रपटी पर प्रस्तुत कर सके।" इस प्रकार मुक्तककार का प्रत्येक मुक्तक अपनी पृथक और स्वतंत्र अर्थवत्ता रखता है। इस दृष्टि से बिहारी को निश्चय सफलता प्राप्त हो सकी है। उनका प्रत्येक दोहा एक स्वतंत्र और सर्वथा पूर्वापर निरपेक्ष अर्थ का द्योतक होता है। तथापि इस स्वतंत्र अर्थ का प्रतीति का भार पाठक पर भी होता है क्योंकि मुक्तक का अर्थ तभी स्पष्ट हो पाता है जबकि उसके प्रसंग की सही कल्पना की जा सके। मुक्तक के प्रसंग की कल्पना स्वयं पाठक को करनी होती है और मुक्तक का वास्तविक आनंद तभी प्राप्त हो सकता है जबकि प्रसंग की कल्पना सही–सही की जाए। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए–

रबि बंदौ कर जोरि, ए सुनत स्याम के बैन।
भए हंसौं हैं सबुन के, अति उनखैहैं नैन।।

प्रस्तुत दोहे का अभिधार्थ तो केवल यही है कि जब श्रीकृष्ण ने कहा कि "हाथ जोड़ कर सूर्य की वंदना करो तो सभी के रोष से परिपूर्ण नेत्र हंसी से युक्त हो गए।" यह अर्थ तनिक भी विशिष्टता नहीं रखता। इस दोहे के मूल में निहित प्रसंग की कल्पना करने पर इसका यही अर्थ विशेष रसानुभूति प्रदान करेगा। प्रसंग की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है– गोपिकाएं अपने वस्त्र उतार कर नदी में स्नान कर रही थीं। तभी कृष्ण वहां पहुंचे और चुपके से उनके वस्त्र उठाकर ले गए। गोपिकाओं ने असहाय हो कर अपने वस्त्र मांगे और इस याचना में उन्होंने अपने कुचों को अपने हाथों से आच्छादित कर लिया। श्रीकृष्ण तो उनके कुचों को देखने के लिए लालायित थे अतः उन्हें एक युक्ति सूझी और उन्होंने उन गोपिकाओं को कहा कि 'हाथ जोड़ कर सूर्य की वंदना करो।' श्रीकृष्ण को ज्ञात था कि हाथ जोड़ने पर गोपिकाओं के कुच स्पष्टतः दिखाई पड़ेंगे। दूसरी ओर जब गोपिकाओं को श्रीकृष्ण का मूल मंतव्य स्पष्ट हो गया तो उनकी आंखों में भी रोष के स्थान पर हंसी उतर आई। उपर्युक्त दोहे के इस अर्थ का प्रतीति किसी भी अन्य छंद अथवा मुक्तक की अपेक्षा नहीं रखती।

मार्मिक प्रसंगों का चयन– मुक्तकों के अर्थद्योतन में मार्मिक प्रसंगों के चयन क महत्व बहुत अधिक होता है। इस संबंध में एक विद्वान आलोचक कहते हैं कि "मुक्तकों में मर्मस्पर्शी वृत्तों का चुनाव इतना साफ होना चाहिए कि पाठक उस तक शीघ्र पहुंच सके और चुनाव भी सामान्य जीवन क्षेत्र से हो ही होना चाहिए, जिससे उसमें सबको अनुरंजित करने की क्षमता हो। जिन मुक्तकों में प्रसंग के आक्षेप में कठिनाई करनी पड़ती है और जिसके लिए नाना प्रकार के अवतरणों का आपेक्ष संभाव्य है। उन्हें मुक्कों की दृष्टि से उतना उत्तम नहीं कहा जा सकता।" जहां तक बिहारी सतसई का प्रश्न है, उसमें मार्मिक प्रसंगों का चयन और निर्वाह अत्यंत सफल रहा है। बिहारी सतसई का मूल स्वर श्रृंगार का है अतः स्वभावतः उसमें श्रृंगार प्रसंगों की ही बहुलता है। उदाहरण के लिए निम्न दोहा देखिए जिनमें नायिका राधा अपनी गायें नायक श्रीकृष्ण

की गायों के साथ मिला देती है। कवि ने नायक–नायिका के मिलन के लिए उपयुक्त प्रसंग की कल्पना की है। दोहा इस प्रकार है–

उनकी हरकी हंसिकै, इतै इन सौंपी मुस्काई।
नैन मिलै मन मिलि गए दोऊ मिलावत गाई।।

कवि ने यह प्रसंग सामान्य जीवन से ग्रहण किया है। अतः उसके अर्थ की प्रतीति में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। इसी प्रकार एक और दोहा देखिए जिनमें नायक और नायिका (गुरुजनों की उपस्थिति में) नयनों ही नयनों में पूरा प्रेमलाप कर लेते हैं–

कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरै भौनं मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात।।

बिहारी ने अपने मार्मिक प्रसंगों का चयन अधिकांशतः दैनिक और सामान्य जीवन से किया है। दूसरों के उपदेश देने वाले कथावाचकों की कलई खोलते हुए बिहारी एक स्थल पर कहते हैं कि–

परियत–दोष पुरान सुनि, लखी मुलकी सुखदानि।
कसु करि राखी मिश्र हूं मुंह–आई मुसुकानि।।

अर्थात जब नायिका ने कथावाचक मिश्र जी के मुख से परस्त्रीगमन की चारित्रिक दुर्बलता की बात सुनी तो वह मुस्करा पड़ी (क्योंकि उसे मिश्र जी की वास्तविकता का पता था। मिश्र जी और उस नायिका में प्रेमी और प्रेमिका के संबंध रहे होंगे)। नायिका को मुस्कराते देखकर नायक अर्थात मिश्र जी को भी हंसी आ गई किंतु (बैठे हुए श्रोताओं की उपस्थिति के कारण) उन्होंने अपनी मुस्कान पर नियंत्रण पा लिया। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि "बिहारी ने यद्यपि जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्र को अपनाक ाव्य विषय बनाया है, परंतु इनमें से चुना है उन्हीं प्रसंगों को जो अत्यंत मार्मिक और रसोद्रेक करने वाले हैं। मार्मिक प्रसंगों के चयन में ही मुक्तक की सफलता निहीत होती है और यह कहना अन्यथा न होगा कि बिहारी इस दृष्टि से सफल हो नहीं पूर्ण सफल मुक्तककार माने जा सकते हैं।"

रसात्मकता– मुक्तक काव्य का ही नहीं, संपूर्ण काव्य का प्राणतत्व उसकी रसात्मकता होती है। जिस काव्य में रसात्मकता नहीं है, वह काव्य की श्रेणी में परिगणित किये जाने योग्य नहीं होता। मुक्तक के सीमित आकार में भले ही कितनी ही रसात्मकता भर दी जाए फिर भी उसमें प्रबंधकाव्य जैसी रसमयता के लिए अवकाश नहीं रहता। कदाचित इसी कारण मुक्तक की रसात्मकता का प्रभाव अपेक्षताया थोड़े समय तक रहता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं कि "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा–प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और ह्रदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे ह्रदय की कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है।" मुक्तक में जीवन के संघटित अथवा उसके आंशिक रूप का चित्रण नहीं होता बल्कि किसी एक रमणीय खंड दृश्य के बल पर रसात्मकता की सृष्टि की जाती है।

बिहारी सतसई में सीमित आकार वाले दोहों के भीतर रसात्मकता लबालब भरी गई है। उदाहरण के लिए बिहारी का यह दोहा देखिए जिसमें गुरुजनों की उपस्थिति में ही नायक और नायिका ने मिलने का समय और स्थान निर्धारित कर लिया है–

टिप्पणी

लखि गुरूजन–बिच कमल सौं, सीसु छुवायौ स्याम।
हरि–सनमुख करि आरसि, हियैं लगाई बाम।।

अर्थात जब नायक ने अपनी प्रेमिका राधिका को गुरुजनों के बीच बैठे हुए पाया तो उसने कमल को उठा कर अपने सिर से छुआ लिया और इस प्रकार यह व्यंजित किया कि तेरे कमल जैसे चरणों को मैं अपने सिर पर रखता हूं, तुम मिलने का कोई न कोई उपाय अवश्य निकालो। नायिकाने नायक की बात समझने में कोई भूल नहीं की और उसने अपनी आरसी को नायक श्रीकृष्ण को सामने करके, उसका प्रतिबिंब लेकर अपने हृदय से छुआ लिया। उसकी इस क्रिया से यह व्यंजित होता है कि उसने नायक को अपने हृदय में बसा रखा है और वह मिलने की प्रार्थना स्वीकार करती है। इस दोहे में यदि 'हरि' का अर्थ सूर्य से लगाया जाए तो दोहे की दूसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा– "हे नायक जब आरसी में प्रतिबिंबित सूर्य पयोधारों की तरह ऊंचें पहाड़ों के पीछे चला जाएगा अर्थात जब तक संध्या हो जाएगी तब मैं तुमसे मिलूंगी।" बिहारी ने रस व्यंजना के लिए अनुभावों का आश्रय भी लिया है। बिहारी का अनुभाव विधान अत्यंत समृद्ध है और इसी कारण उनके दोहों में रसात्मकता का भी बाहुल्य है।

चमत्कार विधान– बिहारी का युग वैभव का और विलास का युग था अतः तत्कालीन काव्य में चमत्कार प्रदर्शन के प्रति प्रबल आग्रह व्यक्त हुआ है। काव्य शास्त्र में चमत्कार विधान के अंतर्गत मुख्यतः दस भेदों की चर्चा आती है। अविचारित रमणीय, विचार्यमाण रमणीय, संपूर्ण सूक्ति व्यापि, सूक्त्येकदेश व्यापि, शब्दगत, अर्थगत, अलंकारगत, रसगत तथा प्रख्यात वृत्तिगत। 'बिहारी सतसई' में चमत्कार विधान के इन सभी भेदों के उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए रसगत चमत्कार का नमूना देखिए–

छिनकु उघारति, छिनु छुवित, राखति छिनकु छिपाइ।
सबु दिनु पिय–खण्डित अधर, दरपन देखत जाई।।

प्रस्तुत दोहे में संयोग के क्षणों के कारण उत्पन्न हुए हर्ष का चमत्कार वर्णित हुआ है। नायिका का आलिंगन करते हुए नायक ने उसके को काट लिया जिससे कि उसके अधर पर क्षत हो गया है। नायिका कभी उस क्षत को उघाड़ती है कभी उसको स्पर्श करती है और कभी उसे छिपा लेती है। इसी प्रकार अपने इस क्षतयुक्त अधर को सारे दिन दर्पण में देखती रहती है। इसी प्रकार उक्ति वैचित्र्य का एक उदाहरण देखिए–

लाज गहौ बेकाज कत घेरि रहें, घर जांहि।
गोरसु चाहत फिरत हौं गोरसु चाहत नांहि।।

अर्थात गोपी (नायिका) श्रीकृष्ण (नायक) से कह रही है कि "हे नायक, तनिक लज्जा करो, बिना कारण मेरा मार्ग क्यों रोक रहे हो। मुझे घर क्यों नहीं जाने देते। मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूं क गोरस अर्थात देही के इच्छुक नहीं हो, तुम्हें तो, गोरस अर्थात रतिजन्य रस की प्यास है।" गोपी का आशय यह भी है कि "हे नायक, मैं तुम्हारी इच्छा से अच्छी तरह परिचित हूं, घर जा रही हूं (अपनी इच्छापूर्ति के लिए) तुम वहीं आ जाओ।" विस्तारभय के कारण चमत्कार विधान के अन्य उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए जा रहे हैं। दो शब्दों में कहा जा सकता है कि "बिहारी का काव्य चमत्कार से

टिप्पणी

परिपूर्ण है। यदि खोजा जाए तो बिहारी के प्रत्येक छंद में ही किसी न किसी प्रकार का चमत्कार मिल ही जाएगा।"

अर्थगौरव– अर्थगौरव का आशय है थोड़े–थोड़े शब्दों के भीतर अधिक से अधिक भावों की व्यंजना। इस दृष्टि से बिहारी निश्चय ही बहुत सफल मुक्तककार हैं। रीतिकालीन काव्य–परंपरा में 'बिहारी सतसई' के दोहों जैसा अर्थ गौरव किसी भी अन्य कवि की रचनाओं में नहीं मिलता है। बिहारी ने अर्थ गौरव की सृष्टि के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया है जैसे कि श्लेष, ध्वनि, वक्रोक्ति, मुद्रा आदि। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसमें कवि ने वक्रता का प्रयोग करके अर्थगौरव की सृष्टि की है–

सोहतु संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान–पींक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु।।

प्रस्तुत दोहे का अभिधार्थ इस प्रकार है– संसार में प्रत्येक वस्तु की शोभा समान गुणों वाली वस्तुओं के साथ ही होती है। यह बात सभी लोग स्वीकार करते हुए आए हैं। (कदाचित इसी कारण) पान की पीक होठों की शोभा बढ़ाती हैं और काजल नेत्रों की कांति में वृद्धि करता है। यदि वक्रता का प्रयोग किया जाए तो इस दोहे का अर्थ अत्यंत चमत्कारपूर्ण होगा। कोई नायक परस्त्री के साथ रतिक्रीड़ा करके आया है और उसी रतिक्रीड़ा के चिह्न उसके होठों और पलकों पर अंकित है। नायक के होठों पर स्त्री के नेत्रों का काजल लगा हुआ है और उसकी पलकों पर नायिका के पान के पीक की लाली लगी हुई है। जिसे देखकर नायिका तत्काल सारी स्थिति को समझ लेती है और नायक से कहती है कि "हे नायक, तुम्हारे होठों पर नायिका का काजल और पलकों पर नायिका के पान की लाली अंकित है। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि प्रत्येक पदार्थ समान धर्म वाले पदार्थों में ही सुशोभित होता है। पान की पीक होठों पर और काजल नयनों में अच्छा लगता है। तुम्हारी स्थिति ठीक उल्टी है जो तुम्हारे कुकृत्य की कलई स्वयं खोल रही है।" इसी प्रकार एक अन्य दोहा देखिए जिसमें कतिपय शब्दों का श्लिष्ट प्रयोग से कवि ने अर्थगौरव की सृष्टि की है। दोहा इस प्रकार है–

मनमोहन सौं मोहु करि, तू घनस्यामु निहारी।
कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि।।

प्रस्तुत दोहे में मनमोहन, घनस्याम, कुंजबिहारी तथा गिरधारी– इन चार शब्दों का श्लिष्ट प्रयोग किया गया है जिसके फलस्वरूप इस दोहे के दो अर्थ निकलते हैं– भक्तिपरक और श्रृंगारपरक। श्रृंगारपरक अर्थ इस प्रकार होगा– नायिका की एक सखी उससे कह रही है कि 'हे नायिका तू बादलों (घनस्यामु) की ओर देख जो कि काम–भावना को जागृत करने वाले हैं। ऐसे समय में तू मान मत कर और मन को मोहने वाले (मनमोहन) के प्रति प्रेम का भाव प्रकट कर। कुंजों में बिहार करने वाले (कुंजबिहारी) के साथ विहार कर और अपने गिरिवत उन्नत कुचों (गिरधारी) से युक्त हृदय में अपने प्रियतम को धारण कर।'

इस दोहे में भक्तिपरक अर्थ इस प्रकार होगा, "हे मन, यदि तू किसी के प्रति मोह ही रखना चाहता है तो सभी के मन को मोहित करने वाले मनमोहन के प्रति प्रेम–भाव रख और यदि तू किसी के रूप को ही निहारना चाहता है तो बादलों की

टिप्पणी

तरह श्यामवर्ण वाले घनश्याम को देख। हे मन, यदि तू किसी के साथ विहार करना चाहता है तो कुंजों में विहार करने वाले श्रीकृष्ण के साथ विहार कर और यदि तू किसी को अपने हृदय में धारण करना ही चाहता है तो गोवर्धन पर्वत धारण करने वाले श्रीकृष्ण को धारण कर।" उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी के दोहे अर्थगौरव की दृष्टि से भी सवर्था सफल रहे हैं।

समाहार शक्ति– मुक्तककार की सफलता उसकी समाहार शक्ति पर भी निर्भर करती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "यदि प्रबंध काव्य एक वनस्थली है तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता।" मुक्तक की यही संक्षिप्तता उसके क्षणिक प्रभाव के कारण होती ह। मुक्तककार को अत्यल्प आकार के मुक्तक अथवा छंद में अधिकतम भावसंपदा की प्रतिष्ठा करनी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि को समाहार शक्ति का आश्रय लेना होता है। मुक्तककार को कल्पना और भाषा– दोनों क्षेत्रों में समाहार शक्ति का परिचय देना होता है। इस दृष्टि से बिहारी सतसई निश्चय ही एक सफल रचना समझी जाती है। कल्पना की समाहार शक्ति के उदाहरण के रूप में बिहारी का निम्नलिखित दोहा देखिए–

जुरे दुहुन के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।
हुलकी फौज हरौल ज्यौं, परे मोल परै भीर।।

नायिका और नायक दोनों अचानक मिल जाते हैं। नायिका को लज्जा आ जाती है और वह घूंघट कर लेती है किंतु घूंघट का वस्त्र महीन है। अतः नायक नायिका के नेत्र परस्पर एक दूसरे से मिल जाते हैं।

अलंकार विधान– अलंकार विधान के अंतर्गत केवल अलंकारों का प्रयोग ही नहीं आता अपितु सभी प्रकार के काव्य सौंदर्य इसी अलंकार विधान के अंतर्गत आता है। मुक्तक में प्रत्येक शब्द का प्रयोग साभिप्राय और सोद्देश्य होता है। अतः कवि को प्रत्येक शब्द का प्रयोग करना होता है। इस दृष्टि से भी बिहारी सतसई एक अत्यंत सफल कृति समझी जाती है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए–

भूषन–भारू संभारिहै, क्यों इहिं तन सुकुमार।
सुधे पाइ न धरू परैं, सोभा ही कैं भार।।

प्रस्तुत दोहे में नायिका की सखी उसे अभिसार के लिए ले जा रही है किंतु नायिका आभूषण पहनने में समय नष्ट कर रही है। ऐसी स्थिति में नायिका उसे यही समझाती है कि "हे सखी, अब आभूषणों का चक्कर छोड़ो और अभिसार के लिए चलो। तुमने अधिक देर लगा दी तो संभव है कि प्रतीक्षारत नायक निराश होकर वापस चला जाए।" निश्चय ही कवि ने एक साधारण–सी बात में वक्रता के माध्यमा से नवीनता ला दी है।

कवि ने भाषा को सशक्त और प्रभावोत्पादक बनाने तथा भाव–सौंदर्य की सृष्टि करने के लिए अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है। अलंकारों के प्रयोग में जो सहजता और स्वाभाविकता बिहारी में मिलती है, वह रीतिकाल के अन्य कवियों की रचनाओं में नहीं मिलती। अतः स्वभावतः उनके अलंकारों के प्रयोग से भावोत्कर्ष हुआ है, अर्थ में नवीनता और चमत्कार की उत्पत्ति हुई है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए, जिसमें उन्होंने एक विरहिणी नायिका की विरह–व्यथा का वर्णन करने में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग किया है–

जब जब वै सुधि कीजिए, तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखिनु आंखि लगी रहैं, आंखैं लागत नाहिं।।

इसी प्रकार निम्न दोहा देखिए जिसमें कवि ने नायिका की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग करके भावोत्कर्ष उत्पन्न किया है। दोहा इस प्रकार है–

नैक न जानी परति, यौं परयौ बिरह तनु छामु।
उठतु दियै लौं नॉदि, लियैं तिहारो नामु।।

इसी प्रकार श्लेष अलंकार का उदाहरण देखिए–

अजौं तर्यौन ही रह्यौं, श्रुति सेवन इक रंग।
नाक–बास–बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कै संग।।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि एक मुक्तककार रूप में बिहारी सतसई एक अत्यंत सफल रचना है। सफल मुक्तक में जो भी गुण हो सकते हैं, कवि ने उन सभी गुणों का सम्यक निर्वाह किया है। बिहारी सतसई में कवि की मूल दृष्टि भावोत्कर्ष के प्रति रही है। अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग करके कवि ने साधारण–सी दीखने वाली घटनाओं को नवीनता प्रदान की है। इसके साथ ही कवि ने दोहे के अत्यलप आकार में अधिकतम भाव–संपदा को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयत्न किया है। कदाचित इसी कारण उनके प्रत्येक दोहे में गूढ़ार्थ छिपा रहता है जिसे डुबकियां लगा–लगाकर प्राप्त किया जाता है। बिहारी के दोहे में एक सफल मुक्तक की सभी विशेषताओं का सफल निर्वाह हुआ है और इसका समस्त श्रेय उनकी मौलिक प्रतिभा को दिया जाना चाहिए। यही कारण है कि बिहारी सतसई के दोहों को नावक के तीर कहा गया है जो देखने में छोटे लगने पर भी लक्ष्य साधन की दृष्टि से अत्यंत सफल सिद्ध होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. बिहारी ने मूलतः किस भाषा का प्रयोग किया?
   (क) अवधी (ख) ब्रज
   (ग) बुंदेलखंडी (घ) फारसी
2. मुक्तक काव्य परंपरा का आरंभ किससे हुआ?
   (क) ऋग्वेद से (ख) बिहारी सतसई से
   (ग) आर्य सप्तशती से (घ) इनमें से कोई नहीं

4.3 घनानन्द

घनानन्द रीतिकाल के रीतिमुक्त काव्यधारा के सर्वप्रमुख कवि हैं। घनानन्द की काव्यगत विशेषताओं को महत्व देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें 'साक्षात रसमूर्ति' कहा है। घनानन्द का जन्म 1689 ई. में और मृत्यु 1739 ई. में हुई थी। घनानन्द के बारे में प्रसिद्ध है कि ये दिल्ली के शासक मुहम्मदशाह के यहां मुख्य मुंशी थे। साथ

टिप्पणी

में अद्‌भुत काव्य प्रतिभा के धनी भी थे, इसीलिए बादशाह के दरबार में घनानन्द की बहुत प्रतिष्ठा थी।

हिंदी साहित्य के 'रीतिकाल' को श्रृंगार विषय की प्रधानता के कारण 'श्रृंगारकाल' के नाम से भी जाना जाता है, लेकिन जहां रीतिबद्ध कवियों ने श्रृंगार की कविता का सृजन किया वहीं रीतिमुक्त अर्थात स्वच्छंदतावादी कवियों ने प्रेम का आधार बनाकर अपनी निज पीड़ा को अभिव्यक्ति दी। इन्हीं कवियों में 'प्रेम की पीर' के कवि घनानन्द का नाम लिया जाता है।

घनानन्द के जन्म एवं मृत्यु संवत् को लेकर ही नहीं उनके वास्तविक नाम के विषय में भी विवाद है। वस्तुतः हिंदी साहित्य में इस नाम के अनेक कवि मिलते हैं। एक नाम के अनेक कवियों के होने के कारण स्वच्छंद काव्यधारा के कवि घनानन्द की प्रामाणिकता का प्रश्न सर्वप्रथम हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कवि ने अपनी कविता में विविध नामों का उल्लेख किया है। हिंदी साहित्य में घनानन्द, आनंदघन और आनंद नाम के व्यक्तियों में वास्तविक स्वच्छंद कवि कौन है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया तर्क ज्यादा संगत प्रतीत होता है। उनके अनुसार घनानन्द वृंदावन के आनंदघन हैं।

घनानन्द की मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण काल में संवत् 1817 में हुई।

घनानन्द की रचनाओं का पूर्ण और प्रमाणित ब्योरा नहीं मिल पाता है। मिश्रबंधुओं के द्वारा दी गई घनानन्द की कृतियों की सूची के आधार पर परवर्ती विद्वानों ने घनानन्द की रचनाओं का विस्तृत उल्लेख किया है। उनके द्वारा (मिश्र बंधु) 'घनानन्द ग्रंथावली' में प्रकाशित की गई रचनाएं हैं– सुजान हित, प्रीतिप्रवास, प्रेम पत्रिका, प्रेम सरोवर, ब्रज विलास, सरल वसंत, अनुभव चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, विचार सभा, दान घटा, भावना प्रकाश, वृंदावन मूडा, ब्रज प्रसाद, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली, रसना यश, गोकुल विनोद, मुरलिकामोद, मनोरथ मंजरी, ब्रज व्यवहार, गिरिगाथा, पदावली, छंदाष्टक आदि।

घनानन्द द्वारा रचित ग्रंथ निम्नलिखित बताए जाते हैं– सुजानहित, इश्कलता, कृपाकंद निबंध, वियोगबेधि, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेम सरोवर, ब्रजबिलास, रसवसंत, अतुल्य चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, ब्रजभानुपुर–सुषमा, गोकुल गीत, नाम माधुरी, निगिपूजन, विचारसार, दानघटा, भावना प्रकाश, कृष्ण कौमुदी, धामचमत्कार, प्रिया प्रसाद, वृंदावन मुद्रा, ब्रज स्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली, रसना यश, गोकुल विनोद, ब्रज प्रसाद, मुरलिकामोद, मनोरथ मंजरी, ब्रजव्यवहार, गिरिगाथा, ब्रज वर्णन, छन्दाण्टक, त्रिभंगी छंद, कवित, संग्रह स्फुट, पदावली और परमहंस–वंशावली है। इनमें से ग्रन्थाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित–संग्रह; स्फुट वस्तुतः घनानन्द की फुटकर रचनाओं के छोटे–छोटे संग्रह हैं। परमहंस–वंशावली में घनानन्द ने अपनी गुरु परंपरा का उल्लेख किया है। हिंदी की इन कृतियों के अलावा बिसर, उड़ीसा रिचर्स जर्नल के आधार पर घनानन्द की एक फारसी मसनवी का भी पता चलता है, पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है। इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना 'सुजान हित' है, जिसमें 507 पद हैं। इनमें सुजान के प्रेम, रूप, विरह आदि का वर्णन हुआ है। सुजान सागर, विरह लीला, रसकेलि वल्ली आदि प्रमुख हैं। उनकी अनेक रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है।

घनानन्द के अनुसार काव्य की भाषा साधरण व्यवहार की भाषा से अलग होती है। यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि उसके अर्थ बोधन की प्रणाली सरल सुबोध हो। भाषा को ऐसी वनिता कहा जा सकता है जो अपने मुख पर मौन का घूंघट डाले रहती है। बुद्धिमान और सहृदय लोग ही इसका आस्वादन कर सकते हैं–

घनआनन्द बूझनि अंक बसै विलसै रिझवार सुजान धनी

यदि प्रयोक्ता कवि या लेखक संवदेनशील है तो उसकी भाषा भिन्न प्रकार की हो जाती है,

औरे होते सुर लाग में

कवि की भाषा उसके श्वास–प्रश्वास के धागों से सना पुट है, जिस पर उसके अनुराग का रंग चढ़ा रहता है–

सूक्षम उसस गुन बुन्यौ ताहि लखै कौन

पौन पट–पवन का वस्त्रा अर्थात भाषा।

वाणी भ्रांति भी पैदा करती है और सत्य से भी अवगत कराती है। यद्यपि वाणी सत्य से परे है फिर भी उसकी ओर संकेत वाणी ही करती है। जाहिर है कि घनानन्द की भाषा उनकी संवेदन का प्रतिनिधित्व करती है, वह अनुभूतियों की वाहक है।

घनानन्द मूलतः वियोग के कवि हैं, उनके काव्य में 'प्रेम की पीर' की मार्मिक अभिव्यक्ति का वर्णन मिलता है। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है कि 'प्रेम की पीर' को लेकर उनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक ब्रज भाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।

घनानन्द के काव्य का मुख्य स्रोत थी नृत्य–गायन विद्या में प्रवीण 'सुजान'। घनानन्द सुजान के प्रेम में अत्यधिक आसक्त हो गए थे। अपने आश्रयदाता के रुष्ट होने पर उन्होंने सुजान को भी साथ चलने को कहा परंतु सुजान ने उनका प्रेम भरा अनुरोध ठुकरा दिया। अतः घनानन्द जान और जहान दोनों लुटाकर वृंदावन की ओर अभिमुख हुए। उन्हें जीवन से विरक्ति हो गई थी। वृंदावन में उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण की। राधा–कृष्ण की उपासना आरंभ की पर वे सुजान को नहीं भूले। इस कारण उनके पदों में सर्वत्र सुजान ही व्याप्त है। घनानन्द के काव्य पर आरोप लगाया जाता है कि इनका काव्य इनकी निजी पीड़ा का कोश है या इनकी ईश्वरीय भक्ति का रूप है।

इसके विपरीत लाला भगवानदीन ने सुजान के प्रति घनानन्द की अनुरक्ति का खंडन करते हुए लिखा है– "सुजान की इनके प्रति विरक्ति इसके भक्त होने के कारण नहीं थी अपितु ये स्वयं 'भगवान कृष्ण' के प्रति अनुरक्त होकर वृंदावन में जाकर उपासना में लग गए थे और अपने परिवार का मोह भी इन्होंने उस भक्ति के कारण त्याग दिया था।"

4.3.1 घनानन्द की काव्यकला

साहित्य में विधा कोई भी हो, प्रभावोत्पादकता तभी आती है जब भावों के अनुरूप शैली और भाषा प्रयुक्त हो। रीति मुक्त कवि घनानन्द का काव्य अपनी सहजता, सुगमता की वजह से उन्हें लीक से हटा मानने को विवश करता है।

(अ) भाव पक्ष

मानवीय जीवन को सरस और सृजनशील बनाने के लिए प्रेम की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। प्रेम के अनेकानेक रूपों में नर–नारी का प्रेम सर्वाधिक पूर्ण तथा तादात्म्य मूलक होता है। इन प्रेम के स्तरों के संबंध में विचार करने पर स्थूल रूप से इसके तीन स्तर माने जा सकते हैं– भौतिक, आत्मिक और आध्यात्मिक। किंतु इन स्तरों को इस तरह श्रेणीबद्ध करना मनोवैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। अपने आदिम रूप में भी प्रेम मात्र भौतिक नहीं हो सकता। शारीरिक मिलन के पूर्व भी जिस प्रकार के उल्लास, पुलक, आनंद या पीड़ा का अनुभव प्रेमी को होता है उस प्रकार का अनुभव किसी अन्य भौतिक उपलब्धि द्वारा नहीं हो पाता। प्रेमिका के आत्मिक सौंदर्य का संवेगात्मक तथा बौद्धिक सौंदर्य मूल्य कम नहीं आंका जा सकता। फिर भी प्रेमोत्पादन में भौतिक आकर्षण या शारीरिक आकर्षण के महत्व को झुठलाया नहीं जा सकता। सौंदर्य के वस्तुपरक पक्ष का वर्णन साहित्यकारों का बहुत ही प्रिय विषय रहा है।

घनानन्द रूप और सौंदर्य के अप्रतिम चित्रकार थे। उनके रूप सौंदर्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक छवि या चित्र के पीछे कवि की स्वानुभूति और अंतर–दृष्टि छिपी हुई है। इसी आत्मतत्व के अभाव में अन्य रीति कवियों के रूप वर्णन प्रायः निष्प्राण हो गए हैं जबकि घनानन्द के रूप और छवि चित्रण परंपरा की लीक से हटकर हैं। इसी कारण घनानन्द के सौंदर्य वर्णन में स्वच्छंदता, सूक्ष्मता तथा मौलिकता का योग है।

सुजान का रूप एवं सौंदर्य चित्रण– घनानन्द के रूप सौंदर्य की प्रेरक है–सुजान। सुजान के सौंदर्य को शब्दों के जाल में न तो बांधा ही जाना संभव है और न ही लेखनी द्वारा उसे अंकित कर पाना। अपनी इस विवशता का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है–

"पानिप अपार घनआनन्द उकति औछी,
जगत जगति जो कौन पै नपति है।"

अंगों का सामूहिक सौंदर्य वर्णन– घनानन्द की लेखनी रीतिकालीन रीतिकवियों की तरह मात्र अंग–विशेष पर ही अटक कर नहीं रह गई है, अपितु वह तो अंगों के सामूहिक सौंदर्य का चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। उदाहरणार्थ– लजीले, सजीले तथा रसीले सौंदर्य का कितना ललित तथा मनोहर चित्रांकन कवि की कला कर गई है–

"जाजनि लपेटी चितवनि भेद–भाय–भरी,
लसति ललित लोल–चख–तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु सुखक्यानि मैं।"

नायिका का एक–एक अंग कवि को प्रिय एवं मधुर लगता है, उसकी एक–एक चाल और एक–एक बात में उसे अपूर्व माधुर्य लक्षित होता है। सुजान का रूप घनानन्द ने इसी भाव से अंकित किया है।

घनानन्द ने सुजान के रूप का क्रमबद्ध रीति से नख–शिख वर्णन नहीं किया है। सुजान के जिस अंग का आकर्षण जब जितना तीव्र हुआ है उतने ही उन्मेष के साथ

उनके छंद लिखे गए हैं। क्रमबद्ध रूप से एक साथ शिख से नख तक का वर्णन कर कवि परिपाटी का अनुसरण उन्होंने नहीं किया है। सुजान के सौंदर्य वर्णन का प्रत्येक छंद उसकी एक नई छवि लेकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। छवि में नवीनता तीन कारणों से आई है– (क) दृष्टिकोण बदल जाने के कारण, (ख) शोभा की अतिशयता के कारण और (ग) हृदयगत प्रेम के आधिक्य के कारण।

भिन्न–भिन्न अवयवों की नई–नई दृष्टियों से संश्लिष्टता के कारण वर्णित छवियां नानाविध हो गई है। साथ ही सुजान के रूप और अंग–प्रत्यंग का सौंदर्य 'क्षण–क्षण नवीनता' वाले सिद्धांत के अनुसार जितनी बार वर्णित हुआ है, उतनी ही बार नई शोभा और प्रभाव के साथ कहा गया है। सुजान के रूप सौंदर्य वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साक्षातकृत एवं स्वानुभूतिपूरक सौंदर्य का आसक्तभाव से वर्णन किया है। प्रत्येक छवि वर्णन के पीछे कवि की अपनी अनुभूति और अपनी दृष्टि छिपी हुई है। इसी आत्मतत्व के अभाव में रीति कवियों के रूप वर्णन एक तरह से निर्विशिष्ट हो गए हैं; जबकि घनानन्द जी के रूप और छवि चित्र स्वकीय और अपरंपरागत कहे जाएंगे। घनानन्द जी के काव्य के सौंदर्य चित्रण में जो नवीनता है, ताजगी है, सूक्ष्मता है, स्वच्छंदता और नवीन भावनाओं और कल्पनाओं का योग है वह सौंदर्य चित्रण की इसी आत्म–परक दृष्टि के कारण हैं। बाह्य रूप सौंदर्य और रंग–लावण्य की तह में जाकर कवि ने जगह–जगह सुजान के आंतरिक सौंदर्य की जो झलक दी है वह भी बड़ी मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

कतिपय चित्र या वर्णन रीति शैली पर भी उपलब्ध होते हैं, जिसमें अलंकारों की योजना के सहारे रूप का साक्षात्कार कराया गया है, किंतु वहां भी आलंकारिता में नयापन और ताजगी मिलती है। मात्र पिष्टपेषण अन्य कवियों में एक बार मिल भी सकता है पर घनानन्द में नहीं।

नायिका के विभिन्न अंगों का सौंदर्य वर्णन– घनानन्द के काव्य में भिन्न–भिन्न अंगों का विरल रूप में चित्रण मिलता है। कुछ अंगों का वर्णन अवलोकनीय है–

केश – चीकन चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।
मनौ घनानन्द सिंगार रस सों संवारी,
चिक मैं बिलोकति बहुनि रजनीस की।

नेत्र – बंक विसाल रंगीले रसाल छबले कटाछ कलानि में मंडित।

नासिका – नीकी नसापुट ही की उचनि अचम्भे भरी,
मुरि कै इचनि सों न क्यों हूं मन तें मुरै।

कपोल – गोरे कपोलनि लाली गुलाब की मोय रही कछु पोंछेऊ पाछैं।
दर्पन देखि हियें हुलसै सुलसैं छवि छवै मुसक्यों ही कटाछै।

दसन – दसन–वसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हंसनि लसनि व्यौं कपूर सरस्यौ भरै।

उरोज – आंगनि पानिप–ओप खरी निखरी नव जोवन की सुघराई।
नैनति बोरति रूप के भैंर अचम्भे–भरी छतिया–उधराई।।

टिप्पणी

कटि – है किंधौ नाहि लगी लगी सी लखी न परै कवि क्यौं है प्रमानै।
तो कटि–भेदहि किंकनि जानति तेरी सौं तेरी सुजानहौं जानै।।

अंग–सौंदर्य वर्णन की विशेषताएं– उपर्युक्त वर्णनों में कवि दृष्टि नेत्रों के रूपाकार तथा उनकी विशालता के साथ ही उनकी चंचलता, स्निग्धता, तीक्ष्णता पर भी रही है। नेत्रों की श्यामलता, उज्ज्वलता, सुंदरता, आनंद के आसव से छका होना, ओजस्विता, अंजन–अंजित होना, रसिकता, अरबीलापन (अड़ने की प्रवृत्ति), तीक्ष्णता, प्रसिद्ध उपमानों का दर्प करने की शक्ति, सलज्जता, शीलयुक्तता, हंसीलापन, स्नेह समन्वित होना, तृप्ति आदि बातों का वर्णन नाना छंदों में किया गया है। घनानन्द ने अपनी प्रेमिका के ऐसे गुणशील नेत्रों का वर्णन बार–बार किया है–

"बंक विसाल रंगीले रसाल छबीले काछ कलानि में पंडित।
सांवल सेत निकाई–निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस–मंडित।।
देधि के प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।
आनन्द–आसव–घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित।।"

निम्नांकित छंद में नेत्रों के रूप–सौंदर्य की प्रत्येक गतिविधि का सहज ही चित्रण हो गया है। ये नेत्र मीन, कमल, खंजन, हिरण आदि सब उपमानों को हीन कर देते हैं। ये पैने हैं, अड़ीले हैं, घातक हैं–

"मीन–कंज–खंजन–कुरंग मान भंग करैं,
सीचे घनानन्द खुले संकोच सों मढ़े।
पैने नैन तरे से न हेरे मैं और कहूं,
घाती बड़े काती लिए छाती पै रहैं चढ़े।।"

नेत्रों या उनसे उत्पन्न कटाक्षों तथा उनके प्रभाव का घनानन्द ने विस्तार से वर्णन किया है। वह सूरदास की मुक्त स्वच्छंद भावमयी वर्णन शैली का स्मरण दिलाता है, जहां वे कहते हैं–'उपमा एक न नैन गही।' प्रेम मार्ग के इस धीर वीर पथिक का हृदय इन नेत्र–बाणों से बिंध हुआ था, क्योंकि उसकी दृष्टि बराबर नायिका के रूप–सौंदर्य पर ही टिकी रहती थी।

नायिका का वर्णन कवि ने बिल्कुल ही नए ढंग से किया है, जिसमें परंपरा की कोई भी झलक नहीं है। सुजान की नाक जरा चढ़ी रहती है। नाक चढ़ी रहना मुहावरा है जिसका आशय है सदा ईषत् रोष में रहना। निष्ठुर सुजान की प्रकृति ऐसी ही थी।

दर्शनों के वर्णन में उनकी शुभ्रता (चमक) ही विशेष वर्णित हुई है। उनकी कांति को मोती के समान चमकता दमकता ठहराया गया है तथा होंठों के वर्णन में अरुणता की चर्चा की गई है। सुजान के रूप वर्णन के साथ–साथ अपने हृदय और मनोभावों का स्पर्श देकर घनानन्द ने इन रूप चित्रों को अधिक जीवंत बना दिया है और कवि ग्रीवा के वर्णन में कंबु–कपोत आदि की मिसालें बैठाते पर घनानन्द उसी चित्र को प्रस्तुत करने वाले कवि हैं जिसका संबंध परिपाटी विहित रसज्ञता से नहीं वरन आत्मगत अनुभूति से होता था।

टिप्पणी

संपूर्ण मुख का वर्णन करते हुए कभी घनानन्द ने सुजान को रूप की राशि ठहरा दिया है, कभी उसके सौंदर्य–सुधा की अनुभूति कर चकोरों को उसके पीछे दौड़ा दिया है।

उरोज, उदर, पीठ और कटि– घनानन्द द्वारा सुजान के उन्नत उरोजों का विशद वर्णन न करते हुए केवल एक या दो स्थलों पर ही उनका किंचित वर्णन किया गया है, जिनमें विस्तार के साथ उपमानों की झड़ी नहीं लगाई गई है, न दुंदुभियों को औंधा किया गया है तथा न पर्णकुटी के बीच शिवजी को बिठाया गया है वरन् केवल उस प्रभाव को व्यंजित किया गया है जो सुषमायुक्त एवं यौवन सूचक उरोजों द्वारा कवि के मन पर पड़ता है–

"अंगनि पानिंप–ओप खरी, निखरी नवजोवन की सुघराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचम्भे–भरी छतिया उघराई।।"

उदर या पेट का वर्णन मध्यकालीन हिंदी काव्य में बहुत कम हुआ है और इतनी नव्य रीति और भावोन्मेष के साथ तो बिल्कुल ही नहीं। कमनीय कामिनी के उदर सौंदर्य के प्रभाव की भी ऐसी सप्राण प्रतीति कहीं नहीं कराई गई है। उपमानों को ओछा ठहराकर उदर–सौंदर्य का उत्कर्ष दिखलाया गया है–

"ताकैं तो उदर घनानन्द सुजान प्यारी,
औछी उपमान की गरूर ओरे लौं गरै।"

इसी प्रकार सुजान की प्यारी पीठ की सुंदरता का भाव–संपृक्त वर्णन भी लक्षित किया जा सकता है–'जान की पीठि लखें घनानन्द आन तें होति उचाटी।'

कटि की सूक्ष्मता और संदिग्ध अस्तित्व के वर्णन में घनानन्द ने रस लिया है और कटि–वर्णन संबंधी जो हास्योत्तेजक उक्तियां कवियों ने लिखी हैं घनानन्द ने इनमें वृद्धि कर दी है। उसके वर्णन में कवि ने उक्ति–विधान अवश्य अपने ढंग से किया है किंतु काव्य में कोई नवीनता नहीं है–

"रूप धरे धुनि लौं घनानन्द सूझति बूझ फी दीठसु तानौ।
लोयन लेत लगाय कै संग अनंग अचम्भे की मूरति मानौ।।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सो लखी न परै कवि क्यौं हूं प्रमानौ।
तौ कटि–भेदहिं किंकनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ।।"

पिंडली–मुखा, एड़ी और तलवा (महावर और मेहंदी)– घनानन्द जी ने सुजान की पिंडली और मुख (एड़ी के ऊपर चारों ओर का घेरा) के संबंध में कहा है कि साक्षात रति–सी सुजान की सुंदर पिंडलियों की गोराई को देखकर मन उन्हीं में अनुरक्त हो जाता है, पिंडलियों की छवि पर ही पागल मन कुछ देर मुख की शोभा देखकर ठिठक जाता है और इसी प्रकार क्रमशः एड़ी, तलवे और महावर में लीन होता हुआ उसके पैरों पर ही लुब्ध होकर बेसुध हो जाता है–

"रति सांचे ढरी अछवाई भरी पिंडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छवि धूमि धूरै न मुरै मृखान सों लोभी खरो रस झूमि उगै।
घनआनन्द ऐंड़िनि आनि भिड़ें तरवानि तरे तें भरै न डगै।
मन मेरी महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै।।"

समस्त शरीर तथा आभूषण वर्णन– नायिका के समस्त शरीर का वर्णन करते हुए कवि ने उसमें सर्वत्र विकास तथा उल्लास दिखाने के लिए उसमें बसंत के अधिवास की कल्पना की है और भूषण–भूषित तन की चर्चा करते हुए कवि ने उन प्रभावों का विशेष विवरण दिया है। ये वर्णन भी सुजान की अंग–अंग की उत्फुल्लता और आभरण–सज्जा उपस्थित कर उसके रूप की भावना को उत्कर्ष प्रदान करते हैं–

"गोरे डंड पहुंचानि बिलोकत रीझि रंग्यौं लपटाय गयौ है।
पन्नन की पहुंची न लखें पुनि आभा तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीन नियैलैं बनी रुचि–रूप–सनी सु धनीन छयौ है।
चारू चुरीन चितै घनानन्द चित्त सुजान के पानि भयौ है।"

घनानन्द के इन चित्रों में एक प्रकार की स्वच्छंदता है जो परंपरागत सौंदर्य चित्रों से उन्हें पृथक करती है। इन चित्रों को ताजगी और भावप्रवणता के सामने काव्य परंपरा के क्रमागत सौंदर्य चित्र थोथे और फीके प्रतीत होते हैं। वह स्थूल अवयवों के सौंदर्य का उद्‌घाटन करते हुए उनकी सूक्ष्म विशेषताओं तक भी गया है और अंगों की कांति, उज्ज्वला, अरुणाई, सौंदर्य की सहजता, सुकुमारता, मधुरमा, उनमें निहित तृप्ति तीक्ष्णता, उन्माद, शैथिल्य, गरूर, तारुण्य, नवीनता आदि बातों तथा अंगों की मनोहर चेष्टाओं और प्रभावी एवं मर्मस्पर्शी क्रिया–कलापों के चित्रण द्वारा घनानन्द ने अपने प्रणय–भाव के आलंबन सुजान को मूलभूत रूप से रस और गंध की एक वास्तविक विभूति के रूप में प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार घनानन्द ने रूप सौंदर्य का जो चित्रण संयोग के परिप्रेक्ष्य में किया है यह संयमित है। घनानन्द का मन रति, चुंबन, आलिंगन, सुरति आदि प्रसंगों में नहीं रमा है। इन प्रसंगों के वर्णन में स्थूल मांसलता आ जाती है और जहां मांसलता आती है वहां शालीनता का क्षय हो जाता है। घनानन्द ने जहां कहीं भी इस प्रकार के संभोगजन्य रूपांकन किए हैं वहां कवि–मर्यादा तथा शालीनता की प्राचीर को फांदने का साहस नहीं कर सका है। यही कारण है कि ऐसे अल्प प्रसंगों में भी कवि रूप–सौंदर्य की भावात्मकता से दूर नहीं हट सका है।

(ब) कला पक्ष

किसी भी भाव की उद्दात्तता, उसकी गहनता, प्रबलता एवं उसकी मार्मिकता आदि की उचित अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही होती है। यदि भाषा में शक्ति नहीं है तो वह किसी के भावों को उसके वास्तविक रूप में अभिव्यक्ति देने में असमर्थ हो जाती है और तब उच्च भाव–अनुभूतियों से युक्त किसी संवेग को भी उचित प्रस्तुति नहीं मिल पाती। फलस्वरूप उसके भाव स्पष्ट नहीं हो पाते। काव्य में तो भाषा की सामर्थ्य का महत्व सर्वोपरि होता है, क्योंकि काव्य–रचना भावना–प्रधान होती है, तथ्य प्रधान नहीं। महाकवि घनानन्द की प्रेमानुभूतियों एवं भक्तिभाव की गहनता को उसके वास्तविक स्वरूप में अभिव्यक्त करने का श्रेय उनकी भाषा को ही है।

साधारण जन की अपेक्षा कवि अनुभूतियों का धनी है, कल्पनाओं का स्रष्टा है, रस भोक्ता है, परंतु उनका सुंदर भाव जगत अनुराग रोदन के समान निष्प्राय एवं निष्प्रयोजन है। यदि उसका आकार साकार नहीं होता, यदि वह मानव मात्र के लिए इंद्रिय गोचर

नहीं है, यदि उसे कानों से सुना नहीं जा सकता, नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। इस गुण से विभूषित होने के लिए कवि अनुभूति, कल्पनाओं, भावों एवं रसों को अभिव्यक्ति की अपेक्षा होती है। अभिव्यक्ति व वर्णन शैली ही है जिसमें कवि अपनी हृदय जनित की पूंजी अर्थात अनुभूति को अनेक उपकरणों के कलात्मक प्रयोग द्वारा वाणी प्रदान करता है, अनुभूति को शब्द रूप देता है। अतः कवि का कलात्मक पक्ष भी विषयवस्तु पक्ष या अनुभूति की भांति प्रभावी होना अनिवार्य होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कथा को पाठक तक सही ढंग से सुगमतापूर्वक पहुंचाने का एकमात्र साधन काव्य कला ही है। इसलिए काव्य में इसके महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रीतिकाल जिसमें घनानन्द का कवि पल्लवित पुष्पित हुआ था, शिल्प प्रधान युग था। फलस्वरूप उसे 'कला काल', 'अलंकृत काल' आदि नामों से भी अभिहित किया गया। कविता बिना अलंकार के कविता नहीं कहलाती थी–

भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित

घनानन्द जैसे रीतिमुक्त कवियों के लिए तो यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवि को उनकी जीवनगत आवश्यकता थी। अतः उन्होंने इसे खिलवाड़ रूप में नहीं लिया, एक जीवन सारांश के रूप में ग्रहण किया है। मार्मिक भाव विधान की भांति ही व्यंजना कौशल की दृष्टि से घनानन्द की कुछ निजी विशेषताएं हैं।

ब्रजनाथ इनकी भावाभिव्यक्ति को समझने के लिए कहते हैं–

जग की कविताई को धोके रहै,
ह्यां, प्रवीनन की मति, जाती चकी।
समुझै कविता घनआनंद की,
हियं आंखिन नेह की पीर तगी।

इनकी भावाभिव्यक्ति में कल्पना के विधान पर अनुभूति की समतलता है। बिहारी आदि रीति–कवियों की कविता जहां 'वाह' है वहीं घनानन्द की कविता 'आह' है।

भाषा वैचित्र्य– भाषा को भावाभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। ब्रज भाषा रीतिकाल तक आकर पूर्णतः परिष्कृत व साहित्यिक हो गई थी। इस काल में ब्रज भाषा में छंद, अलंकार, कवि वर्णन परिपाटी आदि पर इतने विस्तार से विचार किया गया कि भाषा अतिरंजक बन गई। भाषा प्रयोग में अराजकता दिखाई देती है। घनानन्द ने इस अराजकता से अपने को बचाया है। इनकी 'सुजान हित' विशुद्ध ब्रजभाषा में लिखी गई रचना है।

घनानन्द के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने इन्हें 'ब्रजभाषा प्रवीन' और 'भाषा प्रवीन' दोनों बताया है। कहीं–कहीं भक्ति विषय रचनाओं में अरबी–फारसी, पंजाबी व अवधी आदि भाषाओं का प्रचुर प्रयोग मिलता है पर उनका प्रयोग स्वाभाविक ही है। ब्रजभाषा में उनकी अनावश्यक घुसपैठ नहीं की है।

आधुनिक युग में बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने जब साहित्यिक ब्रजभाषा का व्याकरण लिखने का निश्चय किया तो रीतिकाल के केवल दो ही कवि मिले, जिन्हें प्रामाणिक आधार बनाया जा सकता था। इनमें एक घनानन्द और दूसरे बिहारी थे। अतः इन्हें 'ब्रजभाषा प्रवीन' कहना सर्वथा संगत ही है।

शब्दावली– घनानन्द की रचना में तद्भव शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। तत्सम का प्रयोग भक्तिकाल में ही नहीं रीतिकाल के आचार्यों ने भी किया किंतु तत्सम हिंदी की बोली विशेष ब्रजभाषा के अधिक उपयुक्त नहीं है। अतः उन्हें तद्भव में परिवर्तित किया गया। उदाहरणार्थ कुछ शब्दावली देखिए–

तद्भव– अथिर (अस्थिर), निहकाम (निष्काम), सुतंत्र (स्वतंत्र), वेदनि (वेदना), विथा (व्यथा)।

देशज– रीझबी, देखबी, बेड़ी, पैछर आदि।

विदेशी– दाम, निशानी, दिलजानी, हुस्यार आदि।

शब्द शक्ति– भाषा की शक्ति संपन्नता पर विचार करते हुए भारतीय साहित्यशास्त्र ने शब्द की तीन शक्तियां– अभिधा, लक्षणा और व्यंजना मानी है। वाच्यार्थ का बोध कराने वाली अभिधा, लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली लक्षणा होती है। जहां इन दोनों से काम नहीं बनता तब कवि व्यंजना शक्ति का सहारा लेते हैं।

घनानन्द उस युग के अकेले कवि हैं जिन्होंने इन शक्तियों का पूरा उपयोग किया है। इनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है– "भाषा के लक्षक और व्यंजक रूप की सीमा कहां तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिंदी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई।"

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

आदि में सभी जगह उनकी पहचान होती है। उदाहरणार्थ–

भोर तै साँझ लौं कानन– औ निहारित बावरी नैकु न हारति।

× × ×

मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।।

उक्ति वैचित्र्य– काव्य में उक्ति वक्रता के कई संकेत हैं पर मुख्यतः वक्रता दो ही रूप में होती है– वाग्वैदग्ध्य तथा उक्ति वैचित्र्य।

वाणी अपनी सहजता की परिधि से बाहर उठकर कुलांचे भरने लगती है तब विद्ग्धता का जन्म होता है। विदग्ध उक्ति ऐसे बाण के समान है जो पाठक के हृदय पर चोट किए बिना मानती ही नहीं। जैसे कवि ने अपने उपालंभ कथन की भूमिका का निर्माण किया है और अंतिम पंक्ति में पूर्ण आदेश एवं वैचित्र्य से संयम करने कथन को कस दिया है।

अति सूधो स्नेह को मारग है। जहां नैकु सयानयप बांक नहीं।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

मुहावरे व लोकोक्तियां– मुहावरे व लोकोक्तियां जनजीवन में चिरकाल से चलते आ रहे भावपूर्ण एवं चमत्कारपूर्ण प्रयोग होते हैं। इनमें जीवनगत अनुभूतियों को अत्यंत संक्षेप में व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता होती है। काव्य में स्थान प्राप्त कर ये भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता में अपूर्ण वृद्धि करते हैं। यद्यपि घनानन्द का झुकाव लोकोक्तियों की

टिप्पणी

अपेक्षा मुहावरों की ओर अधिक है फिर भी इन्होंने कुछ लोकोक्तियों का अत्यंत सार्थक प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

जक लगना, घाव पर नमक होना, तृण तोड़ना, नामक चढ़ाना, दृष्टि छिपाना, पाले पड़ना, बि जाना, रंग उड़ना, रस लेना, आंखों में आना, आडे होना, उघड़ कर नाचना, उघड़ पड़ना, गैल रहना आदि का प्रयोग देखने को मिलता है।

रस– घनानन्द रीतिकालीन कवि हैं, अतः उनके काव्य में शृंगार रस की प्रधानता होना स्वाभाविक है। घनानन्द के काव्य में शृंगार के संयोग व वियोग दोनों पक्ष देखने को मिलते हैं जिसमें वियोग को ही प्रधानता दी है।

लाजनि लपेटि चितवन भेद भाय भरी।
लसित ललित लोल चख तिरछनि मैं।

× × ×

भोर तै साँझ लौं कानन– ओर निहारति बावरी नैकु न हारित

× × ×

मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।

छंद– हिंदी काव्य में आदिकाल से छंदों का विफल प्रयोग हुआ है। दोहा, छप्पय, सवैया और कवित्त का प्रयोग आदिकाल में प्रचुर रूप में हुआ।

घनानन्द का दूसरा मुख्य छंद सवैया है जो कई प्रकार का है–

किरीट – भोर तै साँझ लौं कानन ओर
निहारति बावरी नैकु न हारति।

अरसात – रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो–नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।

मत्तगयंद – हीन भएँ जल मीन अधीन
कहा कछु मो अकुलानि समाने।

अलंकार– रीतिकाल से पहले अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही अधिकांशतः देखने को मिलता है। रीति कवियों ने तो इस काल में काव्य में अलंकार नहीं अपितु अलंकारों में काव्य ढूंसने की कोशिश की है। कई विद्वानों ने इसे काव्य की आत्मा माना तो कुछ ने इस आधार पर काल का नामकरण करने का मत रखा। इस काल में रखते हुए भी घनानन्द जैसे कवि स्वच्छंद प्रवृत्ति के कहलाए, जो सभी प्रकार की बनावट से दूर थे। घनानन्द स्वयं कहते हैं–

लोग लागि है कवित्त बनावत,
मोहि को मेरे कवित्त बनावत।

फिर भी इनके काव्य में आए कुछ अलंकार देखे जा सकते हैं–

विरोधाभास – बदरा बरसै रितु में घिरि कैं
नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।

टिप्पणी

रूपक – कंठ–कांच घटी तें वचन चोखे आसव लै,
अधार पियालै पूरि राखति सहेत है।

अनुप्रास – कारी कूर कोकिला कहां कौ बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अबही करैजो किन कौरि लै।

यमक – मानस को बन है जग पै
बिन मानस के बन सौ दरसै सौ

उपमा – लाली अधरान की रूचिर मुसक्यान सभै,
सब सुख भोर हो सिंदूरा की सी फल है।

विभावना – विरह समीर की झकोरन अधीर नेह,
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुडी लौं उडयौ रहे।

प्रतीप – नीठि दीठि परै खरकत सो किर किरी लौं,
तेरे आगे चन्द्रमा कलंकी सो लगत है।

काव्य गुण– काव्य गुण रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अंचल है। जिस प्रकार मनुष्य में विभिन्न गुण विद्यमान हैं उसी प्रकार काव्य के मूल तीन गुण हैं– माधुर्य, ओज एवं प्रसाद। माधुर्य मूलतः अंतःकरण को आनंद से द्रवीभूत करता है। इसका रूप श्रृंगार रस में मिलता है। ओजगुण मन को दीप्त करता है। उसमें स्फूर्ति पैदा करता है। इसका रूप वीर, रौद्र आदि रसों में मिलता है। प्रसाद गुण काव्य अर्थ का बोध कराता है जो प्रायः सभी रसों में रहता है। काव्य गुण की दृष्टि से घनानन्द के काव्य में माधुर्य गुण का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, क्योंकि घनानन्द मूलतः विप्रलम्भ श्रृंगार के कवि हैं।

शब्द न्यास– घनानन्द ने काव्य पंक्तियों में शब्द इस प्रकार बिठाये हैं कि उन्हें अपने स्थान से विस्थापित नहीं किया जा सकता है। केवल भावहत्या करके ही शब्दों का स्थान परिवर्तन या हरण किया जा सकता है। वर्ण साम्य, ध्वनि साम्य एवं रूप साम्य में कवि ने अपना अपूर्व कौशल दिखाया है। उदाहरणार्थ–

1. गति ढीली लजीली रसीली लसीलसल, सुजान मनोरथ बेलि फली।
2. अति दीनन की गति हीनन की, पति लीनन की रति के मन है।।

समास पद्धति– 'गागर में सागर' भरने की लालसा से विरत होते हुए भी अभिव्यक्ति संक्षिप्तता कवि को अभिप्रेत हो रही है। परिणामस्वरूप घनानन्द को भाषा में सामासिक पद्धति को स्वीकार करना पड़ा है। उदाहरणार्थ–

रूप–गुन–मद–उनमद नेह–तेह–भरे,
दक–बल आतुरी चटक–चातुरी पढ़े।
मीन–कंज–खंजन–कुरंग–मान–भंग करै,
सीचें घनआनंद खुल संकोच सौ मढ़े।।

अर्थ श्लिष्टता– कवि का मन अनेक ऐसे स्थानों पर रमा है जहां एकाधिक अर्थ श्लिष्ट है। यह द्वयअर्थकता शब्द, पद, पदवाक्य एवं पूरे कवित्त तक की सीमा में

समाहित हैं। इस श्लिष्ट प्रयोग ने अभिव्यक्ति को विलक्षण बनाया है। उदाहरणार्थ 'सुजान' शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण भी है और घनानन्द की प्रेमिका सुजान भी। इसी प्रकार 'घनानन्द' का अर्थ एक ओर आनंद के बादल से है तो दूसरी ओर कवि के नाम से है।

टिप्पणी

अर्थ दुरूहता– घनानन्द की भाषा नए अगम पंथों से जाने के कारण अर्थ भेद की दृष्टि से दुरूह हो गई है। भावों की नवीन अभिव्यक्ति पद्धति ने छंदों में क्लिष्टता समाहित कर दी है। घनानन्द के इस अति वैयक्तिक भाषाभिव्यक्ति प्रयोग ने उनके काव्य को जहां अर्थ गांभीर्य प्रदान किया है वहीं दुरूहता, दुर्बोधता जैसे दूषण भी दिए हैं। उदाहरणार्थ–

उर मौन में मौन को घूंघ कै दुरी बैठी बिराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सो सुलसै हुलसै रस रूप मनी।
रसना अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित सेज ठनी।
घनआनंद बूझनि अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान धनी।

उपुर्यक्त पद से स्पष्ट है कि केवल 'रिझवार' काव्य मर्मज्ञ ही घनानन्द की अभिव्यक्ति रूपी बनी दुलहिन को समझने में समर्थ हैं जो मौन का घूंघट ओढ़े एक भवन में विराजमान है।

4.3.2 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानन्द का काव्य

रीति मुक्त कवियों में कविवर घनानन्द प्रेमाभिव्यक्ति में अग्रगण्य एवं अप्रतिम हैं। उनका काव्य हृदय की सहज तरल अनुभूतियों का काव्य है, प्रेम की सच्ची वेदना की निश्छल अभिव्यक्ति है। इस काव्य का भावक भी केवल वही हो सकता है जिसने प्रेम की पीर को जाना हो। कवि ब्रजनाथ ने अपनी कविता में घनानन्द के काव्य की इसी प्राण तत्व की ओर संकेत किया है–

"जग की कविताई के धोखे रहैं ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी।
समझै कविता घन आनन्द की हित आंखिन नेह की पीर तकी।।"

प्रेम की पीर के उन्मत्त गायक घनानन्द ने अपने कुछ पदों में प्रेमतत्व का सैद्धांतिक निरूपण भी किया है। उनके अनुसार प्रेम का पंथ अनोखा है–सब कुछ भूलकर, प्रिय के लिए सर्वस्व भाव से समर्पण कर, जो लोग प्रेम पंथ की ओर आते हैं, वे भूले हुए भी, इस पर चल लेते हैं, परंतु जो सतर्क होकर सोच–विचार कर तर्क–वितर्क कर इस पर चलना चाहते हैं, वे नहीं चल सकते। प्रेमपंथ उनके लिए बना ही नहीं। यह तो सरलता का मार्ग है, सयानपन और बांकपन का यहां लेशमात्र भी नहीं। सच्चा, अहंभावरहित संस्मणशील पथिक इस मार्ग पर बेखटके चल सकता है पर जिनके मन में छल–कपट है कि इस पर चले हुए झिझकते हैं। घनानन्द ने अपने इस प्रेमादर्श की बड़ी सच्ची–सीधी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में की है–

(क) जान घनआनंद अनोखे यह प्रेम–पंथ।
भूले तो चल, रहैं सुधि के थकित है।।

(ख) अति सूधो सनेह को मारग है जहां नैकु सयानप बांक नहीं।
तहा सांचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसांक नहीं।।

घनानन्द के प्रेमतत्व की सर्वप्रमुख और प्रथम विशेषता उसकी स्वच्छंदता है। स्वच्छंदता का अर्थ है। बाह्य बंधन अर्थात रीति के बंधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए उनकी रचनाओं में प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बंधनों के त्याग का भी संकेत देने वाला था। रीतिबद्ध रचयिता नायक–नायिका के प्रेम की जो चर्चा करते थे, उसमें कहीं–कहीं कथन शैली की विशेषता के दर्शन होते थे, परंतु उसमें न तो प्रेम के जीवनगत स्वच्छंद रूप के दर्शन नहीं होते हैं और न काव्य–पद्धति अर्थात रीतिकालीन स्वच्छंदता के ही।" (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)। घनानन्द का काव्य काव्य–पद्धति अर्थात रीतिकालीन रूढ़ काव्य–परिपाटी से स्वच्छंद तो है ही, उनमें व्यक्त प्रेम का स्वरूप भी शास्त्रीय या रीतिबद्ध न होकर स्वच्छंद व मुक्त है। उसमें न लोकमय या लोकलाज है, न ही दूती, सखी आदि की सहायता से खेले जाने वाले खेलों का आडम्बर। घनानन्द का प्रेम–तत्व सर्वथा उन्मुक्त है। इसमें पारिवारिक बंधनों का कोई स्थान नहीं, निंदा करने वालों का कोई डर नहीं। घनानन्द का निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है–

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अध बीच ही लौंडी।
फैलि गई घर–बाहिर बात सु नीकै भई इन काज कनोंडी।।
क्यों करि थाह लहै घनानन्द चाह–नदी–तट ही अति औंड़ी।
हाय दई! न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंडी।।

घनानन्द के काव्य में जिस प्रेम की व्यंजना हुई है, वह एक ओर तो अनेक उपरिवर्णित आदर्श के अनुरूप सर्वथा सरल–सहज और निश्छल है, दूसरी वह रीतिबद्ध काव्य में व्यक्त प्रेम में सर्वथा भिन्न स्वछन्द अथवा उन्मुक्त प्रेम है। रीतिबद्ध काव्य की श्रृंगारिकता, विलासमय रसिकता और स्थूल शारीरिकता का यहां नितांत अभाव है, संयोग काल की श्रृंगार–चेष्टाओं और हावों के वर्णन भी घनानन्द के काव्य में नहीं हुए हैं। घनानन्द के काव्य में व्यक्त प्रेम–तत्व न गार्हस्थिक है, न रूढ़, न कृत्रिम, न उहात्मक। वह प्रेम वासना, और उपभोग की वस्तु भी नहीं।

रीतिमुक्त कवियों का मूल वक्तव्य है– प्रेम। घनानन्द की प्रेम विषयक विशेषताएं निम्न प्रकार वर्णित की गई हैं–

प्रेम की मार्मिक व्यंजना

इन्होंने काव्य को प्रेम की मूलवर्ती संवेदना से स्पंदित किया है चाहे वह मुक्तकों के रूप में लिखा गया हो, चाहे आख्यान के रूप में। इस प्रेम वर्णन का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह स्वानुभूति प्रेरित है। इनकी प्रेमाभिव्यंजना इनकी निजी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशाओं का चित्रण जेसा इन कवियों में प्राप्त होता है वैसा रीतिबद्ध तथा अन्य श्रृंगारी कवियों में नहीं। रीतिबद्ध कवियों के समान इनका प्रेम बैठे ठाले का प्रेम नहीं है। वह केवल बाहरी उछल कूद में नहीं चुकता, अंतर को भिगोता है, उसमें किसी बिचौलिए की अपेक्षा भी नहीं है अर्थात प्रेमी प्रेमिका के बीच कोई दूती या सखी नहीं आती। इनका प्रेम सरल व निष्कपट है।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहां नैकु सयानप बांक नहीं।
तहं सांचे चले तजि आपनुपो, झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।।

घनानन्द प्यारे सुजान सुनौ, इत एक ते दूसरा अंक नहीं।
तुक कौन घौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।।

प्रेम जीवन साधना

इन कवियों ने प्रेम को जीवन की साधना माना है तभी इसमें प्रवष्टि होने के लिए बुद्धि को छोड़ना पड़ता है। सिर्फ निश्च्छल भावना ही प्रधान होनी चाहिए इसलिए इन्होंने बुद्धि को हेय कहा है–

रीझि सुजान सची पटरानी, बची बुद्धि बापुरी है कर दासी।

इनका प्रेम विलास का एक अंगमात्र नहीं है। यह सबके बस की बात नहीं है। इसका मार्ग बहुत कठिन है।

यह प्रेम को पंथ कराल, महा तलवार की धार पै धावनो है।

किंतु प्रेम की अडिग आभा और सहनशीलता के सरल भी हो जाता है–

अति सूधो स्नेह को मारग है, जहां नैकु सयानप बांक नहीं।

रीतिबद्ध प्रेम वासनाजन्य है जो अनेक से प्रेम करने का ढोंग करता है पर रीतिमुक्त एक के प्रति एकनिष्ठ है।

प्रेम की विषमता का निरूपण

इनके काव्य में निजी अनुभूतियों का सहज प्रकाशन है। इनके प्रेम में विषमता है। यह इसलिए है कि प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है, उसके लिए जितना तड़पता है, प्रिय प्रेमी से उतना नहीं इसका उद्देश्य प्रिय को क्रूर और दुष्कर्मों को दिखाना नहीं अपितु निठुर, उपेक्षापूर्ण, पीड़ा से अनभिज्ञ, सहानुभूमि शून्य, कहा और दिखाया है–

क्यों हंसि हेरि हरया यौ हियरा
अरू क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।

प्रिय की अपेक्षा पर प्रेमी कवि ने प्रिय को उलाहना दिया है। प्रेमियों ने प्रिय को दुष्ट और दुराचारी कह कर अपने प्रेम को उपहास्यास्पद नहीं बनने दिया है। प्रिय के इस आचरण में अपना दोष देखता है। भाग्य को काव्य ठहराता है–

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन
प्रीति रीति विषम सु रोम–रोम रमी है।

प्रिय व प्रेमी की विषमता को निम्न पक्षों से देख सकते हैं–

प्रिय पक्ष		**प्रेम पक्ष**
छल और धोखा	–	संपूर्ण समर्पण
विस्मरण	–	स्मरण
इठलाहट	–	तड़प
सकाम	–	निष्काम
सचिंत	–	निश्चिंत
सविषाद	–	सहर्ष
चैन चंद्रिका का अमृतपात्र	–	विषाद आतप से तप्त

टिप्पणी

भावानुभूति से संपृक्त प्रेम

इनका प्रेम भावानुभूति से संपृक्त है तभी तो प्रिय का प्रथम दर्शन ही प्रेम की इंद्रियों पर रीझकर

आसक्ति– आसक्ति का अर्थ है मन प्रवृत्ति का एक स्थल पर बंध जाना। घनानन्द का सुजान नहीं वरन सुजान के प्रेम के प्रति आसक्ति भाव है। चाहे सुजान ने उसकी उपेक्षा की है। इस आसक्ति में मन की व्याकुलता स्थल–स्थल पर व्यक्त होती है। उदाहरणार्थ–

भौर ते सांझ लो कानन और निहारित बावरी नैकु न हारति।

× × ×

मोहन सोहन जोहन की लागियै रहै आंख्नि के डर आरति।।

स्वच्छंद प्रेम– घनानन्द के प्रेम वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है– वैषम्य। रीतिकालीन कवियों ने प्रिय की उपेक्षा, तिरस्कार का बढ़ा–चढ़ा कर वर्णन किया है किंतु प्रेम की विषमता का जितना साफ–सुथरा वर्णन जिस गंभीरता से घनानन्द ने किया है किसी अन्य ने नहीं किया। उदाहरणार्थ–

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनंदघन,

प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।

प्रेम की दृढ़ता– घनानन्द को चाहे सुजान से उपेक्षा तिरस्कार मिला किंतु उनके प्रेम में कहीं अस्थिरता नहीं दिखाई देती है। उनके प्रेम में प्रेम के प्रति अगाध, आशा, आस्था, विश्वास, दृढ़ता है–

मोही तुम एक तुम मो सम अनेक,

काह कछु चंदहि चकोरन की कमी है।

उनकी दृढ़ता पाषाण ह्रदया नायिका को भी पिघलाने की क्षमता रखती है–

ऐरे निर्दयी तेरे दया उपजाय हों।

प्रेम की रीति– घनानन्द ने मुक्त भोगी के रूप में प्रेम की रीति को समझा इसलिए वे प्रेमी–प्रेमिका के आदर्श मछली और जल के उपमानों को भी हेय बताया है। उदाहरणार्थ

हीन भये जलमीन अधीन, कहा कछु मो अकुलाने सामने।

नीर सनेही को लाय कलंक, निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।।

अर्थात मछली जल से अलग होकर मर जाती है जेा कायरपन है। इस क्रिया से तो प्रेमी को कलंक लगता है। अपितु प्रेम के अभाव में चाहे तड़प के साथ जीन हो वहीं प्रेम की रीति है।

अभिलाषा– घनानन्द ने प्रियतम का दर्शन सर्वप्रथम आंखों से किया था। अतः यही सदैव दर्शन की अभिलाषी रहती है, उसके सौंदर्य का पान करना चाहती है।

रावरे रूप की नीति अनूप, न्यो न्यो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।

त्यों इन आंखिन बानी अनोखी, अघानी कहूं नहीं आनि तिहारिये।।

इसी गुण के कारण बिहारी की कविता यदि 'वाह' है तो घनानन्द की 'आह' है।

टिप्पणी

भावसूक्ष्मता– प्रेम को स्वच्छंद कवियों ने सामान्यतः भाव व्यापार स्वीकारा है। उन्होंने स्थूल पक्ष का निषेध किया है। घनानन्द में शारीरिक अनुभूति का वर्णन बहुत कम है, अधिकतर भावधारा का ही चित्रण है। ये कवि श्रृंगार को अश्लील चेष्टाओं से बच गए हैं। भाव सूक्ष्मता का एक रूप देखिए–

लाजनि लपटेनि चितवनि भेद भाव भरी,
लसित ललित लोल चख तिरछनि मैं।

प्रथम दर्शन का प्रेम– मनोविज्ञान के अनुसार वास्तविक प्रेम प्रथम दर्शन होता है। परिचय के आधार पर बढ़ा हुआ प्रेम प्रेम की दूरी की स्थिति में विलुप्त हो जाए संभव है किंतु प्रथम दर्शन के प्रेम से एक खिंचाव बना रहता है। घनानन्द का प्रेम ऐसा ही है तभी वे सुजान के अभाव में भी अनुरक्त है।

जब ते निहारे घनआनंद सुजान प्यारे,
तब ते अनोखी आगि लगि रही चाह की।

घनानन्द के प्रेम में इनमें काम की ग्रंथि नहीं है। इनके प्रेम की पदवी ज्ञान साधना से भी ऊंची है। ये प्रेम की भावना में संसार से विलग हो जाते हैं। घनानन्द की आंखें तो पलक झपकना ही भूल जाती है। ये प्रेम को समर्पण मानते हैं–

हित के हंकारौ तो हुलासनि सहित धावै,
जो कघु कहौ तो अनिख बिडारे है।

भावानुभूति की परकाष्ठा के कारण ही वे कहते हैं–

मोहि तुम एक तुम मौं सम अनेक,
कहा कछु चंदहि चकोरन की कमी है।

वियोग की प्रधानता– विरह इनके काव्य की अमूल्य निधि है। प्रेम की विषमता फारसी साहित्य की विशेषता है। 'मन लेहू पै देहू छटांक नहीं' भारतीय परंपरा में प्रेमी का मन फगुवा देकर गारी के लिए नहीं तरसता यहां सम प्रेम के दर्शन होते हैं। इनके काव्य का प्रेरणा केंद्र इनकी वे प्रेमिका है जिन्हें वे प्राप्त न कर सके, इनकी अप्राप्ति की दशा में उनको आत्मपीड़ा ने आत्मनिवेदन की पीड़ा दी, यही पीड़ा अपने को गलाने का दर्द चिंता, व्याधि, मरण, अभिलाषा आदि का ऐसा रूप सूफी कवियों की ही देन है। ये प्रेम की रीति में मरना सबसे जघन्य, हीन कर्म समझते हैं।

हीन भए जलमीन अधीन कहा कछु मो अकुलाने समाने।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्राने।

इन कवियों में सर्वाधिक वेदना घनानन्द में सिमटी हुई है। डॉ. रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में– "विरह तो घनानन्द की पूंजी ठहरा।"

संयोग से वियोग की अनुभूति– इनका वियोग इतना सघन और व्यापक है कि इसके कवि संयोग में भी वियोगानुभूति करते रहते हैं। वियोग व्यथा विरह में सताती ही है संयोग भी सताने में पीछा नहीं छोड़ता है–

भोर ते सांझ लौ कानन और निहारती बावरी नेकु न हारति।
सांझ ते भोर लौं तारन ताकिबो तारनि सौ इकतार न टारती है।

टिप्पणी

संयोग में भी इन्हें खटका लगा रहता है। कहीं वियोग न हो जाए–

नेहा सब कोउ करै कहा करै मैं जात।

करिबौ और निबाहिबो बड़ी कठिन यह बात।।

इनका वियोग रहते सहते विरह इतना अभ्यस्त हो चला था कि संयोग की सुखद स्थिति में भी चैन नहीं था–

बिछुरै मिलै प्रीमत शांति न मानै

इनका एकांगी, एकनिष्ठ, एक तरफा प्रेम में लोक की लज्जा का परित्याग, परलोक की चिंता के प्रति उपेक्षा भाव आदि तत्वों का जो प्रभाव है वह कृष्ण भक्ति से प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार दरबारी संस्कृति शास्त्रीय बंधनों और रीतिप्रवृत्ति से पूर्णतः स्वच्छंद कवियों का यह रीतिमुक्त काव्य अपने में अनूठा है जिसमें प्रेम की उच्चता, उदात्तता, गहनता, व्यापकता, वासनाहीनता, सूक्ष्मता, भावात्मकता आदि का गुण विद्यमान है (बोधा इसके अपवाद है)। इन कवियों ने प्रेम की अनन्यता, लोकलाज का परित्याग, कष्ट सहिष्णुता, अहंकार, स्वाभिमान, अभिमान, मगरूरी का त्याग आदि गुण है जिससे इन्होंने प्रेम के ऊंचे आदर्श को प्राप्त किया है। इसलिए इनके काव्य को समझने के लिए हृदय की आंख की कल्पना मात्रा कल्पना नहीं अनिवार्यता है–

समुझै कविता घनआनंद की,

हिंय आंखिन नेह की पीर तकी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है– "प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण व धीर पथिक ब्रज भाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सुजान के प्रति घनानन्द ने जो प्रणय निवेदन किया है वह हिंदी काव्य की स्थायी संपदा है। वैसा आत्मनिवेदन, वैसी पीड़ा, वैसी विरहानुभूति, वेसी आत्माभिव्यंजना वाला काव्य मध्ययुग में नहीं लिया गया। घनानन्द ने आलम, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव आदि सभी की विशेषताओं का मनोयोग से समावेश हो जाता है। अपनी विशेषताओं के कारण घनानन्द स्वच्छंद गायकों में पृथक और श्रेष्ठ है। समूचे हिंदी काव्य में ऐसी प्रेम छाया का चितेरा दूसरा नहीं है। आत्मपीड़ा का दूसरा नाम ही घनानन्द है।

4.3.3 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन

रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द का स्थान महत्वपूर्ण है। घनानन्द की कविता इन्द्रियानुभूत नहीं हृदयानुभूत है। उसमें भावों की गति और गहराई दोनों है। सुजान घनानन्द की प्रेमिका भी हैं और काव्य–प्रेरणा भी हैं। इसलिए उनकी कविता का स्वर मुख्यतः आत्मप्रधान और व्यक्तिपरक है। घनानन्द ही नहीं लगभग सभी रीतिमुक्त कवियों का लक्ष्य हृदय के भावावेगों को मुक्त भाव से व्यक्त करना है। रीतिमुक्त कवियों ने अपनी प्रेमानुभूति और भक्ति दोनों की अभिव्यक्ति आत्मपरक शैली में की है।

यह सर्वविदित है कि घनानन्द सुजान से प्रेम करते थे। सुजान मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में नर्तकी थी। बादशाह ने दूसरे दरबारियों की शिकायत पर जब घनानन्द को राज्य से बाहर निकाला, तब घनानन्द के आग्रह करने पर भी सुजान उनके

टिप्पणी

साथ नहीं गयीं। इस घटना ने घनानन्द की चेतना को सर्वाधिक प्रभावित किया। घनानन्द वृन्दावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। प्रेम पात्र की उस बेरुखी के बाद वे विरक्त हो गए थे।

घनानन्द पूरी उम्र अपनी कविताओं में प्रत्येक विधि से उसी सुजान को आवाज लगाते रहे, जिससे उन्हें अस्वीकार कर दिया था। लेकिन एक प्रेमी मन की मर्यादा यह कि घनानन्द ने कहीं भी सुजान को उस अर्थ में बेवफा नहीं कहा है, जिस अर्थ में कहा जाता है। यदि कहीं उलाहना दिया भी है तो वह उसी प्रकार है जैसे प्रेम के अतिरेक में प्रेमी को दिया जाता है–

क्यों हंसि हेरि हर्‌या हियरा अरू क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन निसैन चढ़ाई।।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनन्द साजति क्यों हूं कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी इतै पै न जानिए कौनें पढाई।।

घनानन्द रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि हैं। एक तरफ जहां उनमें रीतिकालीन काव्य के समस्त लक्षण विद्यमान हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी कविता की सहज व्यंजना से वे रीतिकालीन काव्य के दायरे का विस्तार भी करते हैं।

प्रेम की विशिष्ट स्थिति

घनानन्द एकनिष्ठ और समर्पित प्रेमी हैं। सुजान के प्रति उनके मन में लगाव था। सुजान के अस्वीकार कर देने के बाद भी घनानन्द को किसी अन्य का प्रेम और सौन्दर्य आकर्षित नहीं कर पाया। घनानन्द सुजान को एक ऐसे चन्द्रमा की तरह चित्रित करते हैं जिसके प्रति अनेक चकोर अपनी निष्ठा प्रदर्शित करते हैं–

मोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहि,
कहा कछु चन्द कौं चकोरन की कमी है।

घनानन्द की दृष्टि से देखें तो सुजन उनके प्रति कठोर रहीं हैं। निर्दयी जैसा व्यवहार किया। पर घनानन्द ने एकनिष्ठ भाव से उसी कठोर, निर्दयी सुजान से प्रेम किया है। उनका मन सुजान में ही लगा रहता है। उनका विरही मन हमेशा सुजान को याद करता है और उसे कभी न भूल पाने की बात करता है–

भए अति निठूर मिटाय पहिचानी डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय–हाय है।
तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुधि,
हमैं सूल सेलनि सौं क्यों हू ना भुलाय है।

उन्हें फर्क नहीं पड़ता कि उनके प्रेमी का उनके प्रति कैसे भाव है, कैसे विचार रखता है। वै बस अपने प्रेमास्पद के प्रति अपना प्रेम निवेदन करते हैं और अपने भीतर बसे उस प्रेम का रस लेते हैं–

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनन्द घन,
प्रीति रीति विषम सु रोम–रोम रमी है।

टिप्पणी

रीतिकालीन कवि घनानन्द का प्रेम उदात्त है। वे प्रेम में देना जानते हैं, लेना या पाना उनके प्रेमी को मंजूर नहीं है। इसलिए वे एकनिष्ठ भाव से एक बेवफा सुजान से प्रेम कर सके।

विरहानुभूति की विकसित स्थितियां

रीतिकालीन काव्य मुख्यतः श्रृंगार और संयोग का काव्य है। किन्तु घनानन्द की कविता अपनी विरहानुभूति के लिए प्रसिद्ध है। सौन्दर्य, आसक्ति, पूर्वराग और मिलन के चित्रों में रस प्राप्त करने वाला घनानन्द का प्रेमी मन विरह के समय और अधिक व्यथित हो जाता है। घनानन्द का विरह वर्णन स्वाभाविक है तथा उसमें मन की प्रमाणिक अन्तर्वृतियों का वर्णन किया गया है। घनानन्द का विरह वर्णन कोरा शब्दविलास या चमत्कार पूर्ण कथन मात्र न होकर प्रेम से अलग होने की टीस की तरह है।

अपने प्रवासी प्रेमी और उनकी बीच की दूरी इतनी अधिक है कि न तो वहां अपनी बात पहुंचाई जा सकती है और न ही वहां की बात इधर आ सकती है–

'बात के देस तें दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहे।'

प्रिय के दूर चले जाने के बाद उतनी दूर एक तो संदेश भेजना मुश्किल है और भेजना चाहो भी तो अनेक बाधाएं हैं–

कहौं जौं संदेशो ताको बड़ोई, अंदेसो आहि,
न्हानै मन बारे की कहैश्ब को सुनै सु कौन।
निधरक जान अलबेले निखरक ओर,
दुखिया कहैब कहा तहां को उचित हौ न।
परदुख–दल के दलन कौ प्रभंजन हो,
ढरकोंहे देखि के बिवस बकि परी मौन।
इत की भसम दसा लै दिखाय सकत जू,
ललन सुबास सौ मिलाय हू सकत पौन।

यहाँ हवा की आर्द्रता को देखकर प्रेमी का विरही मन इतना कह पाता है कि वह हवा चाहे तो यहां की भस्म को उड़ाकर प्रिया के सामने कर दे, उसे दिखा दे और प्रिय के अंगों से निकली सुगन्ध से उसे मिला दे।

घनानन्द का विरही मन हर समय अपने प्रेमी का इन्तजार करता रहा है। आंखें अपने प्रिय के आने का रास्ता देखती रहती हैं। स्थिति यह है कि रास्ता देखते–देखते आंखे पथरा गयीं हैं। विरही मन को लगने लगा है कि अब आयु सेना के लिए आगे जाने वाले सामान की तरह चलती जा रही है। वह कल्पना करता है कि अन्त में शरीर को भी जाना होगा। अतः शरीर चला जाय इससे पहले अगर प्रिय आ जाता–

मग हेरत दीठि हिराय गई जगतें तुम आवन–औधि बदी।
बरसो कित हू घनआनंद प्यारे बाढति है इत सोच–नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आंचनि च्वायत आंसुनि मैन मदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।

घनानन्द का विरह वर्णन रीतिकालीन काव्य परंपरा के अनुकूल ही है। साथ ही उस पर फारसी या सूफी प्रभाव भ लक्षित किया जा सकता है। फारसी में प्रेम विरह

का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण शैली में होता रहा है। उसका प्रभाव घनानन्द में भी देखा जा सकता है। जैसे–

गहि काढ़े करेजो कलापिन कूकै।'

'कारी कूर कोकिला कहां करेजो किन कोर लै।

'छिदी छतिया अकुलानी–छुरी।'

प्रकृति का सर्वोत्तम चित्रण

रीतिकालीन काव्य में प्रकृति चित्रण भरपूर हुआ है। रीतिकालीन कवियों ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन के रूप में किया है। संयोग के समय प्रकृति उन्हें प्रेरित करती है, दुलारती है, और वियोग के समय कोयल की कूक, मोर की आवाज, चातक की आवाज विरही मन में टीस उत्पन्न करती है–

कारी कूर कोकिला कहां को बैर काढ़ति री,

कूकि–कूकि अबहिं करेजो किन कोरि लै।

पैड़ैं परे पापी ये कलापी निस धौंस जयौं ही,

चातक घातक त्यौं ही तुहू कान फोरि लै।

इसी तरह प्रिय के वियोग में व्यथित मन प्रकृति के सामान्य–व्यापार को अपने दुःख से जोड़ कर देखता है। घुमड़ते हुए बादल उसके हृदय को चंचल करते हैं, बिजली की चमक देखकर लगता है कि उसकी जान चली जायेगी और फूलों की सुगन्ध भी उसके वियोग को बढ़ाने वाली हो गयी है।

इस तरह कहा जा सकता है कि घनानन्द भाषा, अर्थ, व्यंजना, और उद्देश्य प्रत्येक दृष्टि से रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। घनानन्द की भाषा ब्रजभाषा है। वे साहित्यिक तथा ठेठ बोलचाल की ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए बोलचाल के कुछ शब्द देखें जा सकते हैं – चाड़–उत्कंठा, बघूरा–बवंडर, तेह–क्रोंध, सल–पता आदि। साथ ही उन्होंने ब्रजभाषा की व्यंजना शक्ति का सर्वाधिक प्रयोग किया है जो ब्रजभाषा पर उनके असाधारण अधिकार से ही संभव हुआ है। अपनी इन विशेषताओं के कारण घनानन्द का हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान है और उनका हिन्दी कविता की समुद्धि में महत्वपूर्ण योगदान है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत। मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।' यह किसकी घोषणा है?

   (क) बिहारी (ख) भूषण

   (ग) घनानन्द (घ) जायसी

4. घनानन्द की विरक्ति का कारण क्या था?

   (क) मुहम्मदशाह द्वारा राज्य निष्कासन

   (ख) प्रेमिका सुजान का उनके साथ जाने से इनकार करना

   (ग) निम्बार्क भक्ति सम्प्रदाय का प्रभाव

   (घ) मोक्ष प्राप्ति की अभीप्सा

4.4 भूषण

वीर रस के कवि भूषण का जन्म कानपुर जिले में तिकवांपुर गांव में हुआ था। इनके जन्म समय को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मिश्र बंधुओं तथा रामचन्द्र शुक्ल ने भूषण का समय 1613–1715 ई. माना है। शिवसिंह संगर ने भूषण का जन्म 1681 ई. और ग्रियर्सन ने 1603 ई. लिखा है। भूषण 1627 ई. से 1689 ई. तक महाराजा शिवाजी के आश्रय में रहे। इनके छत्रसाल बुंदेला के आश्रय में रहने का भी उल्लेख मिलता है। इनके द्वारा रचित छः ग्रंथों में से वर्तमान में 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल दशक' नामक तीन ग्रंथ ही उपलब्ध हैं।

4.4.1 भूषण का साहित्यिक अवदान

भूषण के पिता पं. रत्नाकर त्रिपाठी परंपरागत सनातनी भक्त थे। वे 'बनभुइंया देवी' नामक मंदिर में नित्य चंडी पाठ करते थे। अपने चार पुत्रों– चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ (जटाशंकर) को देवी का प्रसाद मानते थे। नीलकंठ साधु सेवा में लगे रहे। शेष तीनों पुत्र प्रसिद्ध कवि हुए। भूषण रीतिकाल के वीर रस सिद्ध कवि हुए। आजीविका के लिए किसी उचित ठौर की तलाश करते औरंगजेब के दरबार में पहुंचे। वहां औरंगजेब को 52 छंद सुनाए जिसके बदले उसने भूषण को 52 गांव, 52 हाथी और 52 स्वर्ण मुद्राएं दान में दीं। यही बावन छंद 'शिवा–बावनी' के रूप में प्रसिद्ध हुए। दिल्ली से लौटते हुए पन्ना दरबार में महाराज छत्रसाल ने राजकवि से प्रभावित होकर उनका सम्मान किया तथा उनकी पालकी को कंध लगाया। जिससे वे पालकी से कूद पड़े तथा महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में दस छंद कहे जो 'छत्रसाल दशक' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भूषण संस्कृत, हिंदी, फारसी के विद्वान थे। इनकी रचनाएं अनेक हैं– शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास तथा दूषण उल्लास। भूषण वीर रस के कवि थे। उन्होंने शृंगार रस की कविताएं भी लिखीं। 'शिवा बावनी' के संस्करणों में पाठांतर या पाठ भेद पाया जाता है।

भूषण तत्तकालीन स्वातंत्र्य संग्राम के प्रतिनिधि कवि हैं। यद्यपि आचार्यत्व की दृष्टि से उन्हें विशिष्ट स्थान नहीं प्रदान किया जा सकता तथापि साहित्य–सृजन की दृष्टि से उनका एक अहम स्थान है। भूषण रचित छः ग्रंथ बताए जाते हैं। इनमें से ये तीन ग्रंथ–

1. भूषणहजारा,
2. भूषणउल्लास,
3. दूषणउल्लास– ये ग्रंथ अभी तक देखने में नहीं आए हैं।

भूषण के दो प्रमुख ग्रंथों का परिचय इस प्रकार है–

शिवराजभूषण

भूषण की इस कृति की रचना तिथि ज्येष्ठ वदी त्रियोदशी, 1673 ई. रविवार है। 'शिवराजभूषण' में उल्लेखित शिवाजी विषयक ऐतिहासिक घटनाएं 1673 ई. तक घटित हो चुकी थीं। इससे भी इस ग्रंथ का उक्त रचनाकाल ठीक ठहरता है। साथ ही शिवाजी और भूषण की समसामयिकता भी सिद्ध हो जाती है। 'शिवराज भूषण' में 384 छंद हैं।

दोहों में अलंकारों की परिभाषा दी गई है तथा कवित्त एवं सवैया छंदों में उदाहरण दिए गए हैं, जिनमें शिवाजी के काव्य–कलापों का वर्णन किया गया है।

छत्रसालदशक

टिप्पणी

छत्रसालदशक में दस छंदों में छत्रसाल बुन्देला का यशोगान किया गया है। भूषण के नाम से प्राप्त फुटकर पदों में विविध व्यक्तियों के संबंध में कहे गए तथा कुछ श्रृंगारपरक पद संगृहीत हैं। भूषण की रचना 'कवि–कीर्ति' संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत है। भूषण वीर काव्य धारा के जगमगाते नक्षत्र हैं।

4.4.2 भूषण की काव्य कला

साहित्य समाज का दर्पण होता है। काव्य में कल्पना का भी अंश होता है मगर कवि समाज की अनदेखी नहीं कर सकता। सामाजिक परिस्थितियों का सच्चा प्रतिपादन करने में भूषण सिद्ध कवि रहे।

(अ) भाव पक्ष

भूषण की सारी रचनाएं मुक्तक–पद्धति में लिखी गई हैं। इन्होंने अपने चरित्र नायकों के विशिष्ट चारित्र्य गुणों और कार्यकलापों को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। इनकी कविता में वीररस, दानवीर और धर्मवीर के वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, पर प्रधानता युद्धवीर की ही है। इन्होंने युद्धवीर के प्रसंग में चतुरंग चमू, वीरों की गर्वोक्तियों, योद्धाओं के पौरुष–पूर्ण कार्य तथा शस्त्रास्त्र आदि का सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि प्रायः समस्त रसों के वर्णन इनकी रचना में मिलते हैं पर उसमें प्रमुखता वीररस की ही है। वीर–रस के साथ रौद्र तथा भयानक रस का संयोग इनके काव्य में बहुत अच्छा बन पड़ा है।

रीतिकार के रूप में भूषण को अधिक सफलता नहीं मिली है पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से इनका प्रमुख स्थान है। इन्होंने प्रकृति–वर्णन उद्दीपन एवं अलंकार–पद्धति पर किया है। 'शिवराजभूषण' में रायगढ़ के प्रसंग में राजसी ठाठ–बाट, वृक्षों लताओं तथा पक्षियों के नाम वाली परिपाटी का अनुकरण किया गया है। भूषण काव्य वीरता के भावों का अप्रतिम उदाहरण है। निरीह–सी बनी हिंदू जनता अत्याचारों से पीड़ित थी। उन्होंने इस स्थिति के खिलाफ आवाज उठाई और पीड़ितों के संघर्ष के लिए उत्साहित किया।

भूषण का युद्ध वर्णन अत्यंत ही सजीव एवं स्वाभाविक है। युद्धोत्साह से युक्त सैनिकों का रण प्रस्थान, युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रणभूमि में हथियारों का घात–प्रतिघात, सूर–वीरों के पराक्रम एवं कायरों की भयपूर्ण स्थिति आदि का अत्यंत प्रभावी वर्णन किया गया है। रण के लिए प्रस्थान करती शिवाजी की सेना से संबंधित एक बानगी देखिए–

साजि चतुरंग–सैन अंग में उमंग धारि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत हैं।।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल–गैल,

टिप्पणी

गजन की ठैल–पैल सैल उसलत हैं।
तारा सों तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।।

(ब) कला पक्ष

भाव के अनुरूप भाषा का प्रयोग करने में भी कवि भूषण प्रवीण थे। शब्दों का ऐसा संयोजन करते थे कि शब्द चित्र आंखों के सामने साकार हो उठता था। राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक दृष्टियों से भूषण का वीर काव्य महत्वपूर्ण है। यदि कहीं लघुता है भी तो आलंकारिक पद्धति में है। अलंकार के चमत्कारी बंधन से यहां वह मुक्त हैं, वहां उत्कृष्ट और सहज हैं।

यद्यपि ब्रज भाषा के अधिकारिक भाव हैं पर उन्होंने अरबी, फारसी और तुर्की भाषा के कुछ अधिक शब्दों को प्रयुक्त किया है। इसका एक कारण था कि उनके आश्रयदाता शिवाजी थे और महाराष्ट्र में इन्हें अपनी कविता उनके निवासियों के लिए बोधगम्य बनानी थी। इसलिए इन्होंने तत्कालीन मराठा की प्रवृत्ति ग्रहण की। भाषा में विशेष प्रकार की वाग्योग (मुहावरे) शक्ति सामर्थ्य का व्यंजक है। मार्मिकता के लिए प्रत्येक समय भाषा वाग्योगों का अधिक व्यवहार करती है। भूषण ने भी अपनी भाषा में इसका बखूबी प्रयोग किया है।

केते घौं नदी नदन की रेल उतरती है।

× × ×

पाग बाँधियतु मानों कोट बाँधियतु है।

शैली

सामान्यतः भूषण की शैली विवेचनात्मक एवं संश्लिष्ट है। इन्होंने विवरणात्मक–प्रणाली का बहुत कम प्रयोग किया है। इन्होंने युद्ध के बाहरी साधनों का ही वर्णन कर ही संतोष नहीं कर लिया है, वरन मानव–हृदय में उमंग भरने वाली भावनाओं की ओर उनका सदैव लक्ष्य रहा है। शब्दों और भावों का सामंजस्य भूषण की रचना का विशेष गुण है।

भाषा

भूषण ने समय में प्रचलित साहित्य की सामान्य काव्य–भाषा ब्रज का प्रयोग किया है। इन्होंने विदेशी शब्दों को अधिक उपयोग मुसलमानों के ही प्रसंग में किया है। दरबार के प्रसंग में भाषा का खड़ा रूप भी दिखाई पड़ता है। इन्होंने अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द अधिक प्रयुक्त किए हैं। बुन्देलखंडी, बैसवाड़ी एवं अन्तर्वेदी शब्दों का भी कहीं–कहीं प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार भूषण की भाषा का रूप साहित्यिक दृष्टि से बुरा भी नहीं कहा जा सकता। इनकी कविता में ओज पर्याप्त मात्रा में है। प्रसाद का भी अभाव नहीं है। 'शिवराजभूषण' के आरंभ के वर्णन और श्रृंगार के छंदों में माधुर्य की प्रधानता है। भूषण की भाषा में ओज की मात्रा तो पूरी है पर वह अधिकतर अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन है और वाक्य रचना भी कहीं–कहीं गड़बड़ है। इसके अतिरिक्त शब्दों के रूप

भी बहुत बिगाड़े गए हैं और कहीं बिल्कुल गढ़ंत के शब्द रखे गए हैं। पर जो कवित्त इन दोनों से मुक्त हैं वे बड़े ही सशक्त और प्रभावशाली हैं।

रस

भूषण काव्य की भावभूमि वीर रस की अद्वितीयता से भरी है। इसके अतिरिक्त अपने रौद्र, भयानक, वीभत्स एवं श्रृंगार रस का भी प्रयोग किया है। श्रृंगार की एक बानगी–

"न करू निरादर पिया सौ मिल सादर,
ये आए बीर बादर बहादुर मदन के।"

वीर रस के सहकारी रौद्र और भयानक हैं। इन दोनों की भी व्यंजना भूषण ने की है। भयानक इसकी अभिव्यक्ति में स्थान–स्थान पर शिवाजी की धाक से प्रतिपक्षियों का भयभीत होना ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ खटका है। काव्य और इतिहास में अंतर अवश्य है। जो काव्य में व्यंजित होता है वह इतिहास में कथित रहता है। भूषण द्वारा किया गया वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण हो सकता है, पर कवि ने कोई असत्य बात नहीं लिखी है। इतिहास स्वीकारता है कि शिवाजी की युद्धनीति सहसा आक्रमण की थी।

छंद एवं अलंकार

भूषण की छंद योजना रसानुकूल है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि आपके प्रमुख छंद हैं। भूषण की कविता में प्रायः सभी अलंकार पाए जाते हैं। अर्थालंकारों की अपेक्षा आप ने शब्दालंकारों को प्राथमिकता दी है। यमक अलंकार का एक उदाहरण–

"ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।"

नूतन उद्भावना की क्षमता भी भूषण में अच्छी थी। अलंकारों के फेर में पड़ने से उसमें भले ही त्रुटि आ गई हो लेकिन खीझ, व्याकुलता आदि की सहायता से नूतन उद्भावना के अनेक प्रयोग भूषण की रचना में मिलते हैं–

खीझ – मुलुक लुटायो तो लुटायो कहा भयो,
तन आपनो बचायो महाकाज करि आयो है।

व्याकुलता – तोरि के द्वारा सों अच्छरासी यों निचोरी।
कहैं, तुमने कहे ते कंत मुकतों में पानी है।

दैन्य – करि मुहिम आए कहत, हजरत मनसब,
दैन, सिव सरजा सों बेर करि ऐहैं बचि कै हैं न।

4.4.3 ओजस्वी कवि के रूप में भूषण

लोकश्रुति है कि भूषण कुछ खास कामकाज नहीं करते थे, जिससे इनकी भाभी इनसे चिढ़ती थी। एक बार सब्जी में नमक न होने पर इन्होंने भाभी से शिकायत की तो उन्होंने उनके निकम्मेपन पर व्यंग्य कर दिया, जिससे ये तत्काल घर से बाहर निकल गये और काफी समय पश्चात शिवाजी से पुरस्कृत होने के बाद वाहन भर नमक भाभी के घर भिजवा दिया था।

भूषण के बारे में भाभी के घर से निकलकर प्रथमतः औरंगजेब के दरबार में जाने की कथा भी प्रचलित है। बादशाह ने इनकी कविता सुनकर इन्हें अपने दरबार में रख लिया।

भूषण अनेक राजाओं के आश्रयों में रहे। कहीं संतुष्ट न हुए और बाद में वे शिवाजी के आश्रय में चले गए। अंत तक वहीं रहे। पन्ना नरेश छत्रसाल से भी भूषण का संबंध रहा। वास्तव में भूषण केवल शिवाजी और छत्रसाल– इन दो राजाओं के ही सच्चे प्रशंसक थे। उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है–

और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब
साहू को सराहो कै सराहौं छत्रसाल को।

भूषण वीररस के ओजस्वी कवि के रूप में – रीतिकाल के रहकर भी भूषण ने श्रृंगार के विपरीत वीररस में अपनी कविताएं रची। इनके काव्य की मूल संवेदना वीर प्रशस्ति, जातीय गौरव तथा शौर्य वर्णन है। भूषण के समय में निरीह जनता मुस्लिम शासकों को अत्याचारों से पीड़ित थी। भूषण ने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई। भूषण का वीर काव्य वीर काव्य परम्परा में लिखा गया। श्रृंगार के उस दौर में श्रृंगार के उद्दाम आकर्षण को त्यागकर वीररस को अपने काव्य का अंगीरस बनाना ओजस्वी हृदय के ही बलबूते की बात थी। इनकी तीनों ही रचनाएं–शिवराज भूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक वीररस से ओत–प्रोत हैं। अन्य कवियों की भांति इन्होंने अपने काव्य नायकों की श्रृंगार प्रियता आदि विषयों को अनछुआ ही रखा है। केवल उनकी वीरता का ही बखान किया है। उनके काव्य में अपने युग के आदर्श नायकों के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। इनमें शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य–साहस, प्रभाव व पराक्रम, तेज व ओज का जीवन्त वर्णन हुआ है। भूषण ने श्रृंगार रस की भी कुछ कविताएं लिखी हैं, किन्तु श्रृंगार रस के वर्णन में भी उनकी वीररस की रुचि दर्शनीय है–

न करु निरादर पिया सौ मिल आदर थे
आये वीर बादर बहादुर मदन के।

भूषण ने वीरता और ओज के साक्षात् प्रतीक के रूप में इतिहास प्रसिद्ध वीर भूषण और छत्रसाल को चुना और इनकी प्रशस्ति का गाचन कर अपनी वाणी को धन्य भी माना–

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यन्त पुनीत तिहूं पर मानी
राम युधिष्टिर के बरने बलमीकिहुए प्यास के संग सोहानी
भूषण यों कलि के कविराजन राजन के गुण पायनसानी
पुन्य चरित्र सिवा सिरजा सरन्हाय पवित्र भई मुनि बानी।

शिवाजी की प्रशसित कवि भूषण ने पूरे मनोयोग से और अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में की है। उन्होंने शिवाजी को इन्द्र, भगवान श्रीराम, कृष्ण और शत्रुओं के लिए यमराज के समकक्ष बताया है–

इन्द्र जिम जंभ पर बाडव ज्यौं अंभ पर
रावण सदंभ पर रघुकुलराज है
पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है
दावा द्रुमदंइ पर चीता मृगझुंग पर
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है

टिप्पणी

तेज तम अंस पर कान्ह जिनि कंस पर
यौ मलेच्छ वंश पर सेर सिवराज है।

इस पद में कवि भूषण ने विभिन्न पौराणिक व प्राकृतिक शक्तियों के उदाहरण देकर मुगल शासन पर शिवाजी के प्रभुत्व का वर्णन अलंकृत शैली में किया है। जिस प्रकार इन्द्र का प्रभुत्व जम्मासुर राक्षस पर, बडवाग्नि का पानी पर, रघुकुल राजा का दम्भी रावण परख हवा का बादलों पर, शिव का कामदेव पर, परशुराम का सहस्रबाहु राजा पर, दावाग्नि का पेड़ों पर, चीतों का हिरण समूह पर, सूर्यदेव का अंधकार पर और कृष्ण का कंस पर है, उसी प्रकार शिवाजी का मलेच्छ वंश के शासक औरंगजेब पर प्रभुत्व है।

बिल्कुल इसी भावभूमि पर भूषण की एक अन्य कविता भी है। दोनों में भावगत और शब्दगत समानता दृष्टव्य है–

गरुड को दावा सदा नाग के समूह पर
दावा नाग जूह पर सिंह विराज को
दावा पुरहेत को पहारन के कुल पर
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को
भूषण अंखड–वनखंड महिमंडल में
तम पर दावा रवि–किरण समाज को
पूरब पछाह दस दक्षिण ते उत्तर लौं
जहां पातसाही तहाँ दावा सिवराज को।

उक्त पद में शिवाजी जहां वीरता–प्रसंग के नायक है, वहीं खलनायक के रूप में मलेच्छ औरंगजेब का नाम या संकेत आया है। वीररस में खलनायक अथवा प्रतिपक्ष की मौजूदगी आवश्यक है। भूषण के द्वारा जहां–जहां शिवाजी की वीरता का गुणगान किया गया है, वहां वहां औरंगजेब के भय, उनके दरबारियों पर आतंक, उनकी स्त्रियों की दुर्दशा, आदि का वर्णन भी किया गया है। निम्न कवित्त देखिये जिसमें औरंगजेब के दरबार में शिवाजी को उचित सम्मान न मिलने पर शिवाजी के क्रोध को देखकर औरंगजेब और दरबारियों की भयभीत स्थिति का वर्णन किया गया है–

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग
ताहि खरो कियो छ–हजारिन के नियरे
जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि मन
कीन्हो ना सलाम न वचन बोल सियरे
भूषण भनत महाबीर बलकन लाग्यौ
सारी पातसाही के उडाय गये जियरे
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखिभये
स्यामु ख नौरंग, सिपाह–मुख पियरे।

अर्थात जो शिवाजी समस्त राजाओं के सिरमौर हैं और सबके आगे खड़े रहने के योग्य हैं, उन्हें अपमानित करने के उद्देश्य से औरंगजेब ने उन्हें छह हजार राजाओं के बीच में खड़ा कर दिया। दरबार में उचित सम्मान न पाकर शिवाजी ने क्रोधवश न बादशाह को सलाम किया और न मृदु वचन बोले। उनका क्रोध से तमतमाता लाल

मुख देखकर सारा दरबार आतंक में आ गया– यह सोचकर कि जाने अब क्या होगा। औरंगजेब का मुंह काला पड़ गया और सिपाहियों का मुख भय से पीला पड़ गया।

टिप्पणी

भूषण के काव्य का वीररस और ओज शिवाजी की सेना के सोत्साह प्रस्थान के वर्णन में भी दृष्टिगत होता है। एक छोटे से पद में उन्होंने शिवाजी की चतुरंगिणी सेना और उसके प्रस्थान के फलस्वरूप सारी सृष्टि में मची हलचल को साकार कर दिया है–

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चहि
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत हैं
भूषण भनत नाद बिहद नगारन के
नदी नद मद गब्बस के रलत है
ऐल फैल खैल–भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठेल पेल सैल उलसत है
तारा सो तरनि धूरि, धारा में लगत जिमि
धारा पर पारा पारावार यों हलत है।

इतना ही नहीं, शिवाजी की सेना के प्रस्थान पर तो प्रेतनी, पिशाच, निशाचर, भूत, प्रेत, जोगिनी मांसाहार की दावत मिलने की आशा में बधाई गीत गाने लगते हैं। अपने गणों में हो रही हलचल देखकर पार्वती जी शिवजी से पूछने लगती हैं कि आज शिवाजी ने किस पर अपनी भृकुटि टेढ़ी की है–

किलकि–किलकि कै कुतुहल करति काली
डिमडिम डमरू दिगम्बर बजाई है
सिवा पूछै सिव सौं समाज, कहां चलो,
काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है।

युद्धभूमि में शिवाजी और उनकी सेना औरंगजेब की सेना के लिए साक्षात् कालस्वरूप बन जाती है। बेचारा काल तो प्राण हरने के लिए वैसे ही व्यर्थ में बदनाम है। धरती और दिशाओं का पूरा भार शिवाजी ने अपनी ही भुजाओं पर धारण किया हुआ है। संसार को चलाने का कार्यभार कर्त्ता के हाथों से शिवाजी के हाथ में चला गया है। बड़ी ही ओजपूर्ण भाषा–शैली में कवि ने निम्नांकित पद की रचना की है–

तेरे ही भुजानि पर भूतल कौ भार
कहिबे को शेषनाग दिगनाथ हिमाचल है
तेरौ अवतार जग पोषण भरनहार
कछु करताल को न मधि अमल है
साहि तैन सरजा सम्थ्य सिवराज कवि
भूषण कहत जीवौ तेरो ही सफल है
तेरौ कखाल करै मलेच्छन कौ काल
बिनुकाज होते काल बदनाम धरतल है।

कुछ पदों में कवि भूषण ने औरंगजेब पर शिवाजी के आतंक का भी वर्णन किया है। औरंगजेब ने भारत में अन्य राजाओं पर तो अपना प्रभुत्व जमा लिया था, किन्तु

शिवाजी ने कभी उसे अपने पास फटकने भी नहीं दिया। शिवाजी भ्रष्ट औरंगजेब के लिए चंपा के फूल की भांति अलम्भ ही रहे। कहा जाता है भ्रमर अन्य सभी फूलों पर मंडराकर उनका रसपान तो कर सकता है, किन्तु चम्पा के पास नहीं जाता (चंपा तोमे तीन गुण रूप, गंध और वास/ अवगुण तोमे एक है भंवर न आवै पास)–

राजा भी चमेली और बेला सब राजा भये
ठौर ठौर रस लेत नित यह काज है
सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर
भ्रमत भ्रमर जैसे फूल को समाज है
भूषण भजन सिवराज वीट तैहीं देस
देसन में राखी सब दच्छिन की लाल है
लागे सदा पटपद पद अनुमानि यह
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है।

औरंगजेब के सिपहसालार तो शिवाजी पर आक्रमण करने से ही डरते हैं। उन्हें भीख मांगकर खाना मंजूर है, बिना मनसबदारी के रहना मंजूर है, किन्तु शिवाजी के आक्रमण को नाम से भी उनकी रुह कांपती है–

सब उमरावन की हठ क्रूरताई देखौ
कहै नवरंगजेब साहिसिरताज पै
भीख मांगि खैहै बिनु मनसबरैहै
पै न जैहें हजरत महाबली सिवराज पै।

कुछ कवित्तों में भूषण ने शिवाजी के खौफ के चलते शत्रुपक्ष की स्त्रियों की दुर्दशा का भी अतिरेकपूर्ण ओजस्वी शैली में वर्णन किया है। दुर्दशा के वर्णन में करुणरस का प्रादुर्भाव नहीं होता, अपितु शिवाजी के प्रताप की ही व्यंजना होती है–

(i) ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी
ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती है
कंदमूल भोग करै कंदमूल भोग करै
तीन बेरे खाती ते वै तीन बेर खाती है।

(ii) उतार पलंग ते न दियो है धरा पै पग
तेऊ सगबग निसिदिन चली जाती है
अति अकुलाती मुरझाती न छिपाती गात
बात न सुहाती बोले अनखाती है
भूषण भनत सिंह साहि के सपूत सिवा
तेरी धाक सुनि अरिनारी बिललाती है।

जिस प्रकार भूषण ने शिवाजी की वीरता का प्रशस्तिगान किया है, उसी प्रकार छत्रसाल की प्रशस्ति में भी उन्होंने दस कवित्त कहे हैं। कुछ कवित्तों ने उन्होंने छत्रसाल का तलवारबाजी का मालोपमा की छटा के साथ वर्णन किया है। यह तलवार उनकी सदा संग रहने वाली संगिनी है। युद्धभूमि में यह भुंजिगनी बनकर शत्रुओं के गले में

टिप्पणी

लिपट जाती है और युद्धभूमि पर नरमुण्डों को पंखहीन पक्षियों की तरह गिराती रहती है–

(i) रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज
भूषण सकत को बखानियों बलन के
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर
तेरी बरछी ने वर छीने हैं खलन के।

(ii) निकसत म्यान ते मयूखै प्रलै भानु कैसी
फारे तम तोम से गयंदन के जाल को
लागति लपति कंठ बैरिन के नागिनी–सी
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को
लाल छितिपाल छत्रसाल महा बाहुबली,
कहा लौं बखान करौं तेरी कखाल को
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को।

भूषण ने वीररस के अंकन में शिवाजी की युद्धवीरता, दानवीरता दयावीरता और धर्मवीरता का वर्णन किया है। निस्सन्देह युद्धवीरता के वर्णन में उनका मन अधिक रमा है और युद्धवीरता में ही ओजस्विता की सर्वाधिक संभावना होती है। युद्धवीरता के वर्णन में उन्होंने पूरे उत्साह और शक्तिमत्ता का परिचय दिया है। भूषण के वीररस वर्णन की एक विशेषता यह भी है कि उनके काव्य में ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थपरक वर्णन मिलता है।

वर्णन शैली में अतिश्योक्ति है, किन्तु घटनाओं की सत्यता प्रामाणिक है। इनके नायक निस्सन्देह जन–जन–प्रिय, इतिहास प्रसिद्ध वीर हैं। इसके अतिरिक्त इनके वीर काव्य में देश की संस्कृति व गौरव का गुणगान भी है। निस्सन्देह इनके द्वारा युद्धों का वर्णन बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक है। युद्ध के उत्साह से युक्त सेनाओं का रण प्रस्थान युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रणभूमि में हथियारों का घात–प्रतिघात, शूरवीरों का पराक्रम और कायरों की भयभीत स्थिति आदि दृश्यों का चित्रण बड़ा प्रभावी बन पड़ा है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. भूषण को सर्वप्रथम किस शासक ने महत्व और सहयोग दिया?
   (क) महाराज शिवाजी (ख) छत्रसाल बुंदेला
   (ग) सोलंकी राजा रूद्र (घ) औरंगजेब
6. भूषण मूलतः किस रस के कवि थे?
   (क) वीर रस (ख) श्रृंगार रस
   (ग) रौद्र रस (घ) भयानक रस

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (घ)
6. (क)

4.6 सारांश

बिहारी की काव्य भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। अपनी लेखनी में इन्होंने ब्रज के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनका शब्द चयन अत्यंत सुंदर और सार्थक है। बिहारी ने अपने काव्य में केवल दो ही छंदों का प्रयोग किया–1. दोहा और 2. सोरठा। दोहा छंद की इनके काव्य में प्रधानता पाई जाती है। इनके दोहे समास–शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बिहारी को उनके अकेले एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' ने हिंदी साहित्य में अमरता प्रदान कर दी।

घनानन्द के काव्य का मुख्य स्रोत थी नृत्य–गायन विद्या में प्रवीण 'सुजान'। घनानन्द सुजान के प्रेम में अत्यधिक आसक्त हो गए थे। अपने आश्रयदाता के रुष्ट होने पर उन्होंने सुजान को भी साथ चलने को कहा परंतु सुजान ने उनका प्रेम भरा अनुरोध ठुकरा दिया। अतः घनानन्द जान और जहान दोनों लुटाकर वृंदावन की ओर अभिमुख हुए। उन्हें जीवन से विरक्ति हो गई थी। वृंदावन में उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण की। राधा–कृष्ण की उपासना आरंभ की पर वे सुजान को नहीं भूले। इस कारण उनके पदों में सर्वत्र सुजान ही व्याप्त है।

भूषण काव्य वीरता के भावों का अप्रतिम उदाहरण है। निरीह–सी बनी हिंदू जनता अत्याचारों से पीड़ित थी। उन्होंने इस स्थिति के खिलाफ आवाज उठाई और पीड़ितों के संघर्ष के लिए उत्साहित किया। भूषण का युद्ध वर्णन अत्यंत ही सजीव एवं स्वाभाविक है। युद्धोत्साह से युक्त सैनिकों का रण प्रस्थान, युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रणभूमि में हथियारों का घात–प्रतिघात, सूर–वीरों के पराक्रम एवं कायरों की भयपूर्ण स्थिति आदि का अत्यंत प्रभावी वर्णन भूषण द्वारा किया गया है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **कृति** : रचना।
- **सतसई** : सौ दोहों का संग्रह।
- **आकृष्ट** : आकर्षित।
- **उद्दाम** : ऊंची।
- **मनीषियों** : विद्वानों।

- **परिलक्षित** : दिखाई देना।
- **मुरली** : बांसुरी।
- **वैविध्य** : विविधता।
- **अभिमुख** : मुखातिब।
- **माधुर्य** : मिठास।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. बिहारी सतसई को रीतिकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति क्यों माना जाता है?
2. आश्रयदाताओं की आलोचना संबंधी बिहारी की अद्वितीयता स्पष्ट कीजिए।
3. घनानन्द की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
4. सुजान कौन थी?
5. भूषण की दो कृतियों का परिचय दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. बिहारी का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
2. बिहारी की बहुज्ञता स्पष्ट करते हुए मुक्तक काव्य परंपरा में इनका स्थान निर्धारण कीजिए।
3. 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानन्द के काव्य की विवेचना कीजिए।
4. भूषण का साहित्यिक अवदान रेखांकन करते हुए इनकी काव्यकला का उल्लेख कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, 'कबीर की विचारधारा', साहित्य निकेतन, कानपुर।
2. डॉ. विजेन्द्र स्नातक, 'कबीर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'सूर साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. गोविन्द राय शर्मा, 'सूर की काव्य साधना', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. रामचंद्र शुक्ल, 'गोस्वामी तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
6. रामनरेश त्रिपाठी, 'तुलसीदास और उनका काव्य', राजपाल एंड संस, दिल्ली।
7. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', बिहारी रत्नाकर, लोकवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'भूषण ग्रंथावली', वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
9. परमानंद सुहाने, 'शिवराज भूषण', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

इकाई 5 द्रुत पाठ

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 अमीर खुसरो
5.3 विद्यापति
5.4 जायसी
5.5 मीरा
5.6 रसखान
5.7 केशव
5.8 पद्माकर
5.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.10 सारांश
5.11 मुख्य शब्दावली
5.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.13 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

हिंदी का 'प्राचीन साहित्य' आधुनिक नवोत्थान एवं नवजागरण संबंधी हिंदी साहित्य से पूर्व लिखा गया है। इसमें विविधता एवं विदग्धता के साथ–साथ शास्त्रीय गरिमा का प्राधान्य है तथा आंतरिक सौंदर्य के स्थान पर चमत्कारप्रियता एवं शृंगार की मादकता से परिपूर्ण बाह्य सौंदर्य की झांकियां भी अंकित हैं, किंतु इसमें जनसाधारण के हृदय–लोक का स्वस्थ दर्शन नहीं होता। फिर भी यह पर्याप्त समृद्ध है।

हिंदी का 'प्राचीन साहित्य' प्रायः कविता में मिलता है और आधुनिक काल से पूर्व वीरगाथा काल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल की विस्तृत सीमाओं में निबद्ध है। मध्यकाल के दोनों ही काल– भक्ति काल और रीतिकाल, चेतना के अलग–अलग स्तरों और प्रवृत्तियों का बखान करते हैं किंतु कहीं पर भी चेतना के अखंड प्रवाह को तोड़ते नहीं हैं। वे अपनी भावभूमि को भिन्न–भिन्न स्तरों से, भिन्न–भिन्न दिशाओं से देखने का प्रशस्त राजमार्ग देते हुए चलते हैं। इस राजमार्ग के सृजन में विभिन्न संतों, कवियों, भक्तों आदि ने महान योगदान दिया है। इनमें चंदबरदाई, अमीर खुसरो, रैदास, नानक, मीराबाई, रहीम, रसखान, कुतुबन, केशवदास आदि प्रमुख हैं।

इस इकाई में हम अमीर खुसरो, विद्यापति, जायसी, मीरा, रसखान, केशवदास तथा पद्माकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अवलोकन करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अमीर खुसरो, विद्यापति एवं जायसी के व्यक्तित्व–कृतित्व से अवगत हो पाएंगे;

- मीराबाई एवं रसखान का साहित्यिक योगदान समझ पाएंगे;
- केशवदास एवं पद्माकर का व्यक्तित्व–कृतित्व रेखांकित कर पाएंगे।

टिप्पणी

5.2 अमीर खुसरो

संक्षिप्त जीवन परिचय

अमीर खुसरो का रचनाकाल संवत् 1340 के आसपास माना जाता है। गयासुद्दीन बलबन से लेकर अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन मुबारक शाह तक कई बादशाहों का समय खुसरो ने देखा था। खुसरो फारसी के बहुत अच्छे ग्रंथकार और अपने समय के नामी कवि थे। खुसरो की मृत्यु संवत् 1389 में हुई।

खुसरो ने अपने परिवार सहित निजामुद्दीन औलिया से शिक्षा प्राप्त की। इनकी रचनाओं में उक्तिवैचित्र्य की प्रधानता थी, यद्यपि कुछ रसीले गीत और दोहे भी इन्होंने कहे हैं। जलालुद्दीन खिलजी ने अपने शासन काल में खुसरो को अमीर की उपाधि से विभूषित किया।

कृतियां

खुसरो को जहां जलालुद्दीन द्वारा अमीर की उपाधि मिली वहीं उसके भतीजे अलाउद्दीन द्वारा राजकवि की उपाधि दी गई थी। उन्होंने जलालुद्दीन की प्रशंसा में 'मिफ्तोलफ़तह' नामक ग्रंथ की रचना की। खुसरो ने अधिकांश रचनाएं अलाउद्दीन की प्रशंसा में ही की।

खुसरो ने अपने धर्म–गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया को 'पंज–गंज' नाम से मसनवियां समर्पित कीं तथा उन्हें सुल्तान अलाउद्दीन को भेंट कर दिया। पद्य के अतिरिक्त खुसरो ने दो गद्य–ग्रंथों की भी रचना की–

1. 'खज़ाइनुल फ़तह'।
2. 'एजाज़येखुसरवी'।

हिंदी में अमीर खुसरो ने मुकरी लोककाव्य–रूप को साहित्यिक रूप प्रदान किया।

अमीर खुसरो मुख्य रूप से फारसी के कवि हैं। फारसी भाषा पर उनका संपूर्ण अधिकार था। फारसी काव्य के लालित्य और कौशल के कारण ही अमीर खुसरो को 'हिन्दी की तूती' कहा जाता है। खुसरो का फारसी काव्य चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **ऐतिहासिक मसनवी**– जिसमें किरानससादैन, मिफ़तोलफ़तहन, देवलरानी, खिज्रखाँ, नूहसिपहर और तुगलकनामा।
2. **रूहानी मसनवी**– मतलऊ लअनवार, शिरीन खुसरी, आईन–ए–सिकन्दरी, मजनू–लैला और हश्त विहश्त।
3. **गद्य रचनाएं**– 'एजाज़येखुसरवी' और 'ख़ज़ाइनुलफ़तह तथा मिश्रित'– जिसमें वेदऊलअजाइब', 'मसनवी शहरअसुब', 'चिश्तान' और 'ख़ालितबारी'।
4. **दीवान**– जिसमें तुहफ़ तुम सिगहर, वास्तुलहयात।

तुग़लक़नामा अमीर खुसरो द्वारा रचित अंतिम कृति है।

काव्य वैशिष्ट्य

खुसरो ने रचनाएं दो प्रकार भाषाओं में की– पहेलियों, मुकरियों और दो सखुनों में ठेठ खड़ी बोली ही मिलती है–यद्यपि उनमें भी कहीं–कहीं ब्रजभाषा की झलक स्पष्ट है। गीतों और दोहों की भाषा ब्रज मुख–प्रचलित काव्यभाषा ही है। खुसरो का काव्य मसनवी शैली पर आधारित है।

टिप्पणी

5.3 विद्यापति

संक्षिप्त जीवन परिचय

विद्यापति के जन्म समय के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने विद्यापति का जन्मकाल सन् 1350, डॉ. बाबूराम सक्सेना ने सन् 1357, श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त ने सन् 1538, डॉ. आनंद प्रकाश ने सन् 1361 ई. माना है। अतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनका जन्म बिहार के दरभंगा जिले की उत्तर दिशा में स्थित कमतोल रेलवे स्टेशन के निकट विसपी नामक गांव में सन् 1350 और 1361 के बीच में हुआ था। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर तथा माता का नाम गंगा देवी था। उनकी पत्नी का नाम चन्दन देवी था और तीन पुत्रों के नाम वाचस्पति ठाकुर, हरपति ठाकुर तथा नरपति ठाकुर और उनकी पुत्री का नाम दुल्लहि था। उनके गुरू का नाम हरिमिश्र था।

विद्यापति ने बाल्यावस्था में ही पिता के साथ राजदरबार में आना–आना आरंभ कर दिया था। इन्होंने कीर्तिसिंह, देवसिंह, शिवसिंह, पद्मसिंह, भावसिंह, हरिसिंह आदि राजाओं के आश्रय में रहकर काव्य रचना की। इन्होंने राजा शिवसिंह के शासन–काल में नौ वर्ष तक विशेष सम्मान प्राप्त किया। यही काल उनके जीवन का स्वर्णिम काल कहा जाता है। एक बार उन्होंने राजा शिवसिंह को न केवल मुस्लिम शासक की कैद से मुक्त कराया बल्कि उनका जुर्माना भी माफ कराया।

विद्यापति की काव्य–प्रतिभा को देखते हुए उन्हें अनेक सम्मानों एवं उपाधियों से विभूषित किया गया। उन्हें 'अभिनव जयदेव' 'कविरंजन', 'कवि शेखर', 'राजपंडित' आदि उपाधियां प्रदान की गईं। उन्होंने अपने बदलते हुए आश्रयदाताओं की इच्छानुसार विविध विषयों पर काव्य रचना की। यद्यपि उनके काव्य में शृंगारिकता की प्रधानता है जिसके कारण उन्हें शृंगारी कवि घोषित किया जाता है परंतु उन्होंने जीवन के अंतिम दिनों में भक्तिपरक पदों की रचना की।

कहा जाता है कि मृत्यु के समय वे सिमरिया घाट पर गंगातट की ओर चल पड़े। जब उनकी पालकी बरौनी पहुंची तो उन्होंने पालकी रुकवा दी। उन्होंने कहा कि जिस गंगा के लिए मैं इतनी दूर से यहां आया हूं, क्या वह मेरे मोक्ष के लिए डेढ़–दो कोस इधर नहीं आ सकती। उसी रात गंगा नदी में बाढ़ आई और अगली सुबह गंगा–तीर पर सन् 1450 ई. में उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

कृतियां

विद्यापति ने अपने जीवन में अनेक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने सर्वाधिक ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में की है। उनके संस्कृत भाषा में रचे ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है–

1. भूपरिक्रमा
2. पुरुष परीक्षा
3. लिखनावली
4. शैव सर्वस्वसार

टिप्पणी

5. गंगा वाक्यावली
6. विभासागर
7. वर्षकश्ल्य
8. दान वाक्यावली
9. गयापत्तलक
10. दुर्गाभक्ति तरंगिणी
11. प्रमाणभूत पुराण संग्रह
12. गोरक्ष विजय

(हिन्दी संस्कृत में रचित एकांकी)

विद्यापति ने अवहट्ठ भाषा में दो ग्रंथों की रचना की–

1. कीर्तिलता
2. कीर्तिपताका

हिन्दी साहित्य में विद्यापति का नाम अमर करने वाली उनकी कृति 'मैथिली' में रचित 'पदावली' है।

विद्यापति पदावली का वैशिष्ट्य

वस्तुतः पदावली में विद्यापति द्वारा समय–समय पर रचित फुटकर पदों का संग्रह किया गया है। इनमें कुल 945 पद हैं। इन पदों को वर्ण्य–विषय के आधार पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–शृंगारपरक पद, भक्तिपरक पद तथा अन्य विषयों एवं मिथिला के लोक जीवन पर आधारित पद। उन्होंने शृंगार पदों में मुख्य रूप से राधा व श्रीकृष्ण के युगलरूप को आधार बनाया है जो कि ईश्वर के अवतार के रूप में नहीं, बल्कि भोग–विलास व काम–क्रीड़ा में सामान्य पुरुष व नारी के रूप में चित्रित हुए हैं। भक्तिपरक पदों में उन्होंने शिव, पार्वती, गंगा आदि के प्रति अपनी भक्ति–भावना को प्रकट किया है। इनके सभी पदों में गीतों की सरसता, कमनीयता व स्वर–माधुरी के दर्शन होते हैं। इन पदों में उन्होंने मैथिली भाषा का प्रयोग किया है।

1. शृंगारिकता– मैथिलकोकिल विद्यापति भक्त–कवि थे या शृंगारी कवि, यहां हम इस प्रश्न के विवादों में न उलझकर पदावली के वर्ण्य–विषय का अलग विवेचन कर रहे हैं। सबसे पहले हम विद्यापति की सौन्दर्य एवं प्रेम की भावना का विश्लेषण कर रहे हैं। विद्यापति की पदावली मे शृंगार–रस की प्रधानता है। कवि ने राधा–कृष्ण के प्रेम के माध्यम से इनमें शृंगार रस का परिपाक किया है। इनके पदों में सौन्दर्य और प्रेम का मिश्रण नीर–क्षीर के समान है। कवि ने अपने पदों में शृंगार का सूक्ष्म व मांसल चित्रण किया है। नायिका की वयः संधि, नख–शिख, सद्यःस्नाता, अभिसार, प्रेम–प्रसंग, दूती–प्रसंग, नोंक–झोंक, साखियों द्वारा काम व प्रेम की शिक्षा, नायक–नायिका का मिलन, उनके कौतुक, छलना, मान, मानभंग, विदग्धविलास आदि का सुंदर वर्णन किया है। अधिकांश स्थलों पर कवि ने शारीरिक व मांसल प्रेम व सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। उदाहरण के लिए वयःसंधि में नायिका एकांत में उभरते उरोजों को देखती है तथा उन्हें देखकर हंसने लगती है। यथा –

''निरजन उरज हेरए कत बेरि,
विहंसई अपन पयोधर हेरि
पहिलें बदरि–सम पुन नवरंग
दिन–दिन अनंग अगोरल अंग।''

टिप्पणी

इसी प्रकार कवि ने नायिका के नख–शिख वर्णन में उसके मुख की उपमा चन्द्रमा से, पतली कमर की तुलना लता से, उभरते उरोजों की तुलना पर्वतों से की है। उन्होंने नायिका राधा को हिरण के समान चंचल नेत्रों वाली, कोयल के समान मृदुभाषिणी तथा स्वर्ण के समान कांति वाली बताया है। कवि ने राधा व कृष्ण के मिलन के दृश्यों का भी घोर श्रृंगारिकता के साथ वर्णन किया है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियों में कवि ने नायक–नायिका को रति–क्रीड़ा में लीन दिखाया है–

''दुहु क अधर दसन लागल।
दुहु क मदन चौगुन जागल।
दुअओ सअन, चेत न चीर।
दुअओ पिपासल पीबए नीर।''

कवि ने पदावली में श्रृंगार के दोनों भेदों–संयोग व वियोग पक्ष का चित्रण किया है। संयोग श्रृंगार में उन्होंने स्थूल व मांसल प्रेम का चित्रण किया है तो वियोग में प्रेम के उदात्त रूप का चित्रण किया है। श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् राधा विरह–वेदना से व्यथित है। वह अपनी सखी से कहती है कि प्रियतम के जाने के बाद अब तो विधाता भी मेरे प्रतिकूल हो गया है। मैंने एक–एक दिन प्रतीक्षा करके, मास और वर्ष गुजार दिए हैं। अब तो मैंने श्रीकृष्ण के आने की आस ही छोड़ दी है। यदि चन्द्रमा की किरणें ही कुमोदिनी को जला दें तो फिर बसंत के आगमन का क्या लाभ। यथा–

''एखन–तखन करि दिवस गमाओल, दिन–दिवस करि मासा।
मास–मास करि बरस गमाओल, छाड़लि जीवन–आसा।
बरस–बरस करि समय गमाओल, तेजल कान्ह आसे।
हिमकर–किरन नलिनि जदि जारब, कि करन माधव मासे।''

विद्यापति ने अपनी पदावली के श्रृंगार वर्णन में नायक व नायिका के रूप–सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। उन्होंने विप्रलंभ श्रृंगार के चारों भेदों–मान, प्रवास आदि विरह की सभी अवस्थाओं–स्मरण, मूर्धा, व्याधि, मरण आदि के अनुसार नायिका की दशा, स्थिति आदि का वर्णन किया है। अतः संक्षेप में यहा कहा जा सकता है कि विद्यापति मूलतः श्रृंगारी कवि हैं। अधिकांश आलोचकों का यह मत है कि विद्यापति सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं, जिसे हम निस्संकोच स्वीकार कर सकते हैं।

2. प्रकृति वर्णन–निस्संदेह विद्यापति मूलतः श्रृंगारी कवि थे परंतु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि उन्होंने केवल प्रेम–सौन्दर्य पर ही काव्य–रचना की है। वस्तुतः उनकी ''पदावली' प्रकृति वर्णन की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। कवि ने बसंत खंड में प्रकृति का मानवीय रूप में सुंदर व सजीव चित्रण किया है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियों को देखिए जिसमें कवि ने बसंत को दूल्हा मानकर उसके आगमन व स्वागत का वर्णन किया है–

''माई हे! आज दिवस पुनमन्त।
कवि चुमाओन राय बसंत।

सम्पुन सुधानिधि दधि भलभेल।
भमि भमि भमिरिह हंकारइ देल।''

टिप्पणी

इसी प्रकार कवि ने 'पदावली' में प्रकृति उद्दीपन रूप में, पृष्ठभूमि के रूप में, दूती–रूप में, आलम्बन रूप में, उपदेशिका रूप में भी वर्णन किया है। संयोग अवस्था में प्रकृति जहां नायक–नायिका के मन में उल्लास, उमंग, रति व काम भावना का काम करती है, वहीं वियोगावस्था में वह सुखदायी प्रकृति अब दुःखदायी बन जाती है। राधा की विरह–वेदना को बढ़ाने वाली प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण करते हुए कवि कहता है–

''कुलिस कत सतपात मुदित।
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक।
फटी जावत छातियां।''

अतः कहा जा सकता है कि पदावली में सौन्दर्य व प्रेम के साथ–साथ प्रकृति का भी सुंदर व सजीव वर्णन हुआ है।

3. भक्ति–परक पद–विद्यापति की पदावली में कवि ने अपने आराध्य शिव के साथ–साथ दुर्गा, राधा–कृष्ण, भैरवी आदि देवी–देवताओं की भी वंदना की है। यद्यपि उन्होंने अपने पदों में राधा–कृष्ण के प्रेम–सौन्दर्य के अनेक मांसल चित्र भी प्रस्तुत किए हैं, फिर भी डॉ. ग्रियर्सन, कुमार स्वामी आदि ने उनके पदों में राधा को जीवात्मा तथा कृष्ण को परमात्मा का प्रतीक मानकर उन्हें रहस्यवादी भावना से युक्त बताया है। वैसे भी कवि ने प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण की वंदना करते हुए उनसे अपने उद्धार की कामना की है। यथा –

''माधव हम परिनाम निरासा,
तुहुं तय–तारन दीन दयामय, अतय तोहर बिसवासा
मनहु विद्यापति शेषसमन भय, तुम बिनुगतिवहि आरा।
आदि अनादि नाथ कहाओसि, अबतारन भार तोहारा।''

भागवत् में राधा–कृष्ण की प्रेमपरक लीलाएं भी भक्ति–भावना का आदर्श रूप मानी गई हैं। ऐसे पदों में माधुर्य–भाव की भक्ति को स्वीकार किया गया है। यदि माधुर्य–भाव की भक्ति को श्रृंगारिकता से जोड़ देते हैं तो भी हमें विद्यापति की भक्ति–भावना को दर्शाने वाले ऐसे पद मिलते हैं जिनमें कवि ने दास्य भाव की भक्ति को दर्शाया है यथा–

''एक अपराध छेमब मोर जानी, परसल माय पाए तुअपानी।
कि करब जप–तप जोग धेआने, जनम कृतारथ एकहि सनाने।
भनइ विद्यापति समदओं तोही, अन्त काल जनु बिसरह मोही।''

इस प्रकार कवि ने अपने आराध्य शिव के चरणों की वंदना करते हुए कहा है कि आप तो शरणहीनों को शरण देने वाले हैं आप मुझ पर दया कीजिए–

''असरन–सरन चरन सिर नाओल,
दया वारु दिअ सूलपानी।''

टिप्पणी

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्यापति ने 'पदावली' में अधिकांश शृंगारपरक एवं भक्तिपरक पदों का ही अधिक निरूपण किया है। कवि ने शृंगार वर्णन में अधिकांशतः परंपरागत उपमानों का अधिक प्रयोग किया है। परंतु उसमें कवि ने अपनी मौलिक कल्पना–शक्ति का भी परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त कवि ने भक्तिपरक पदों की रचना की है। ऐसा माना जाता है कि कवि ने जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुंचकर ही भक्तिपरक पदों की रचना करनी आरंभ की थी। यही कारण है कि उनकी 'पदावली' में भक्तिपरक पदों की संख्या कम है। इसके अतिरिक्त कवि ने अपनी पदावली में प्रकृति–चित्रण पर आधारित पदों की रचना की है। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि शृंगार–भक्ति, प्रकृति–वर्णन ही मुख्य रूप से पदावली का वर्ण्य–विषय है।

विद्यापति की पदावली की अन्य विशेषता यह है कि उसमें गीति–तत्व का समावेश है। उनके सभी पदों में गीतिकाव्य के सभी आवश्यक तत्व, संक्षिप्तता, वैयक्तिकता, भाव–एकरूपता, रागात्मकता, शैलीगत सुकुमारता, संगीतात्मकता आदि विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए उनके निम्न पद में गीति काव्य के समस्त तत्त्व विद्यमान हैं।

''सखि हे, हमर दुखक नहि ओर।
इ भर पादर माहमादर, सून मंदिर मोर।
संपि धनगरजीन्त भुवन भरि बरसन्तिया।
कन्त पाहुन काम दारूण, सघन बरसन्तिया।
कुलिस कत सत पात, मुदित मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक गडुक, फाटि जाएत छातिया।
तिमिर दिग भरि धोरि यामिनी, अथिर बिजुरिक पांतिया।
विद्यापति कह कइसे गमाओब, हरि बिना दिन–रातिया।''

4. लोक–जीवन का वर्णन–विद्यापति भले ही शृंगारिक कवि रहे हैं, दरबारी वातावरण से वह हमेशा घिरे रहे परंतु उन्होंने लोक–जीवन की अवहेलना नहीं की। उनके काव्य में समाज चेतना के अनेक तत्व देखे जा सकते हैं। पहली बात तो यह है कि विद्यापति के पदों में वैवाहिक जीवन के अनेक चित्र बिखरे पड़े हैं। उनका संयोग शृंगार और वियोग शृंगार लोक–जीवन से जुड़ा है इसलिए आज भी मिथिला प्रदेश में विवाह के अवसर पर पदावली के अनेक पद गाए व सुने जाते हैं। विरह नामक उपखण्ड में कवि ने एक स्थल पर विरहिणी नायिका की विरह जनित उपलब्धियों का वर्णन करते हुए लोक–जीवन पर प्रकाश डाला है। कवि कहता भी है–

''कुदिना हित जन अनहित रे, थिक जगत सोभाव।
× × × × × ×
कवि विद्यापति गाओल रे, दुख मेटत तोर।
हरखित चित तोहि भरेए रे, पियनन्द किसोर।''

विद्यापति ने मनुष्य को अपनी बात पर स्थिर रहने का उपदेश दिया है। साथ ही उन लोगों को सचेत किया है जो अपनी बात को प्रत्येक व्यक्ति को कहते फिरते हैं–

''सुपुरुष बचन कबहु नहिं विचलय जओ बामओ होई।

× × × × × ×

अपन वेदन तिहि निवेदिअ जे पर वेदन जान।'

टिप्पणी

5. भाषा शैली–विद्यापति ने मैथिली भाषा में अपने पदों की रचना की है। 'पदावली' के इन पदों में माधुर्य–युक्त मैथिली का प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपनी भाषा को बिम्बों, प्रतीकों, अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि से सुसज्जित किया है। उन्होंने नायक–नायिका के सुकुमार, कोमल शरीर के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग किया है।

यथा–

डम डम डम्फ मादव, रुन झुनु मंजिर बोल।

किंकिन रनि–रनि बलआ कन–कनि। निधुबन रास तुमुल उतरोल।

उनकी पदावली में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, प्रतीप, अर्थातरन्यास, असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

ता अरुझायत हारा

जवि सुमेरू ऊपर मिलि आएल,

चांद विहिनु सब तारा।

इसी प्रकार उन्होंने 'हाथक कांगन आरसी काज', 'दूधक माखी दूती भेल' आदि जैसे मुहावरों, लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विद्यापति हिन्दी साहित्य में गीति–काव्य के प्रवर्तक हैं। उनके काव्य ने परवर्ती कवियों को प्रभावित किया है।

5.4 जायसी

संक्षिप्त जीवन परिचय

ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे और जायस में रहते थे। इनकी एक छोटी–सी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के नाम से फारसी में छपी मिलती है। यह सन् 936 हिजरी में (सन् 1528 ईसवी के लगभग) बाबर के समय में लिखी गई थी। इसमें बाबर बादशाह की प्रशंसा है। इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के संबंध में लिखा है–

भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।।

इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। जन्मकाल 900 हिजरी माने तो दूसरी पंक्ति का यह अर्थ निकलेगा कि जन्म से 30 वर्ष पीछे जायसी कविता करने लगे और इस पुस्तक के कुछ पद्य उन्होंने बनाए।

जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से दो मील दूर एक जंगल में रहा करते थे। वहीं इनकी मृत्यु हुई। काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने, जिन्हें

अवध के नवाब शुजाउद्दोला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त में जायसी का मृत्युकाल 4 रजब 949 हिजरी लिखा है। यह काल कहां तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता।

टिप्पणी

कृतियां

जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है 'पदमावत', जिसका निर्माणकाल कवि ने इस प्रकार दिया है–

सन नौ सै सत्ताइस अहा। कथा आरंभ बैन कवि कहा।।

इसका अर्थ होता है कि पदमावत की कथा के प्रारंभिक वचन (अरंभबैन) कवि ने 926 हिजरी (सन् 1520 ई. के लगभग) में कहे थे। पर ग्रंथारंभ में कवि ने मसनवी की रुढ़ि के अनुसार 'शाहेवक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है–

शेरशाह दिल्ली सुलतान्। चारहु खंड तपै जस भानु।।
ओही छाज राज औ पाटू। सब राजा भुइँ धरा ललाटू।।

शेरशाह के शासनका आरंभ 947 हिजरी अर्थात सन् 1540 ई. से हुआ था। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् 1520 ई. में ही बनाए थे, पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया। 'पदमावत' का एक बंगला अनुवाद अराकान राज्य के बजीर भगन ठाकपुर ने सन् 1950 ई. के आस–पास आलोउजाला नामक एक कवि से कराया था। उसमें भी 'नव सौ सत्ताइस' ही पाठ माना गया है–

शेख मुहम्मद जति जखन रचितं ग्रंथ संख्या सप्तविंश नवशत्त।

पदमावत् की हस्तलिखित प्रतियां अधिकतर फारसी अक्षरों में मिली हैं जिसमें 'सत्ताइस' और 'सैंत्तालीस' प्रायः एक ही तरह लिखे गए। इसमें कुछ लोगों को यह भी अनुमान है कि 'सैंतालिस' को लोगों ने भूल से सत्ताइस पढ़ लिया है।

जायसी काने और देखने में कुरूप थे। कहते हैं कि शेरशाह इनके रूप को देखकर हंसता था। इस पर यह बोले 'मोहिका हँसेसि कि कोहरहि?' जायसी ने तीन पुस्तकें लिखीं–एक तो प्रसिद्ध 'पदमावत', दूसरी 'अखरावट', तीसरी 'आखिरी कलाम'। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक–एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। इस छोटी–सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पदमावत', जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोक पक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।

इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियां हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।

टिप्पणी

'पद्मावत' : अद्वितीय गाथा

'पद्मावत' में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त होती है। यह उस परंपरा में सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी कहानियों में भी विशेषता है। इसमें इतिहास और कल्पना का योग है। चितौर की महारानी पद्मिनी या पद्मावती का इतिहास हिंदू हृदय के मर्म को स्पर्श करने वाला है। जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली है पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इस रूप में इस कहानी का पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है। पद्मावती कथा संक्षेप में इस प्रकार है–

सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की कन्या पद्मावती रूप और गुण में जगत में अद्वितीय थी। उसके योग्य वर कहीं न मिलता था। उसके पास हीरामन नाम का एक सूआ था जिसका वर्ण सोने के समान था और जो पूरा वाचाल और पंडित था। एक दिन वह पद्मावती से उसके वर न मिलने के विषय में कुछ कह रहा था कि राजा ने सुन लिया और बहुत कोप किया। सूआ राजा के डर से एक दिन उड़ गया। पद्मावती ने सुनकर बहुत विलाप किया।

सूआ वन में उड़ता–उड़ता एक बहेलिए के हाथ में पड़ गया जिसने उसे बाजार में लाकर चित्तौर के एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया। उस ब्राह्मण को एक लाख देकर चित्तौर के राजा रतनसेन ने उसे ले लिया। धीरे–धीरे रतनसेन उसे बहुत चाहने लगा। एक दिन जब राजा शिकार को गया तब उसकी रानी नागमति ने, जिसे अपने रूप का बड़ा गर्व था आकर सूए से पूछा कि 'संसार में मेरे समान सुंदरी भी कहीं है?' इस पर सूआ हँसा और उसने सिंहल की पद्मिनी का वर्णन करके कहा कि उसमें और तुममें दिन और अंधेरी रात का अंतर है। रानी ने इस भय से कि कहीं यह सूआ राजा से भी न पद्मिनी के रूप की प्रशंसा करे, उसे मारने की आज्ञा दे दी। पर चेरी ने उसे राजा के भय से मारा नहीं, अपने घर छिपा रखा। लौटने पर जब सूए के बिना राजा रतनसेन बहुत व्याकुल और क्रुद्ध हुआ तब सूआ लाया गया और उसने सारी व्यवस्था कह सुनाई। पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो गया और अंत में वियोग से व्याकुल होकर उसकी खोज में घर से जोगी होकर निकल पड़ा। उसके आगे–आगे राह दिखाने वाला वही हीरामन सूआ था और साथ में सोलह हजार कुँवर जोगियों के वेश में थे।

कलिंग से जोगियों का यह दल बहुत से जहाजों में सवार होकर सिंहल की ओर चला और अनेक कष्ट झेलने के उपरांत सिंहल पहुंचा। वहां पहुंचने पर राजा तो शिव के एक मन्दिर में जोगियों के साथ बैठकर पद्मावती का ध्यान और जप करने लगा और हीरामन सूए ने जाकर पद्मावती से यह सब हाल कहा। राजा के प्रेम की सत्यता के प्रभाव से पद्मावती प्रेम में विकल हुई। श्री पंचमी के दिन पद्मावती शिवपूजन के लिए उस मन्दिर में गई, पर राजा उसके रूप को देखते ही मूर्छित हो गया, उसका दर्शन अच्छी तरह न कर सका। जागने पर राजा बहुत अधीर हुआ। इस पर पद्मावती ने कहला भेजा कि समय पर तो तुम चूक गये; अब तो इस दुर्गम सिंहलगढ़ पर चढ़ सको तभी मुझे देख सकते हो। शिव से सिद्धि प्राप्त कर राजा रात को जोगियों सहित गढ़ में घुसने लगा पर सवेरा हो गया और पकड़ा गया। राजा

गंधर्वसेन की आज्ञा से रतनसेन को सूली देने ले जा रहे थे कि इतने में सोलह हजार जोगियों ने गढ़ को घेर लिया। महादेव, हनुमान, आदि सारे देवता जोगियों की सहायता के लिए आ गए। गंधर्वसेन की सारी सेना हार गई। अंत में जोगियों के बीच शिव को पहचानकर गंधर्वसेन उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला कि 'पद्मावती आपकी है जिसको चाहे दीजिए।' इस प्रकार रतनसेन के साथ पद्मावती का विवाह हो गया और दोनों चित्तौड़गढ़ आ गए।

टिप्पणी

रतनसेन की सभा में राघवचेतन नामक एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। पंडितों को नीचा दिखाने के लिए उसने एक दिन प्रतिपदा को द्वितिया कहकर यक्षिणी के बल से चन्द्रमा दिखा दिया। जब राजा को कार्रवाई मालूम हुई तब उसने राघवचेतन को देश से निकाल दिया। राघव राजा से बदला लेने और भारी पुरस्कार की आशा से दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के दरबार में पहुंचा और उसने दान में पाए हुए पद्मावती के कंगन को दिखाकर उसके रूप को संसार के ऊपर बताया। अलाउद्दीन ने पद्मिनी को भेज देने के लिए राजा रतनसेन को पत्र भेजा, जिसे पढ़कर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और लड़ाई की तैयारी करने लगा।

कई वर्ष तक अलाउद्दीन चित्तौर घेरे रहा पर उसे तोड़ न सका। अंत में उसने छलपूर्वक संधि का प्रस्ताव भेजा। राजा ने उसे स्वीकार करके बादशाह की दावत की। राजा के साथ शत्तरंज खेलते समय अलाउद्दीन ने पद्मिनी के रूप की एक झलक सामने रखे हुए एक दर्पण में देखी, जिसे देखते ही वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। प्रस्थान के दिन जब राजा बादशाह को बाहरी फाटक तक पहुंचाने गया तब अलाउद्दीन के छिपे हुए सैनिकों के द्वारा पकड़ लिया गया और दिल्ली पहुंचाया गया।

पद्मिनी को जब यह समाचार मिला तब वह बहुत व्याकुल हुई; पर तुरंत एक वीर क्षयाणी के समान अपने पति के उद्धार का उपाय सोचने लगी। गोरा, बादल नामक दो वीर क्षत्रीय सरदार 600 पालकियों में सशस्त्र सैनिक छिपाकर दिल्ली पहुंचे और बादशाह के पास यह संवाद भेजा कि पद्मिनी अपने पति से थोड़ी देर मिलकर तब आपके हरम में जायेगी। आज्ञा मिलते ही एक ढकी पालकी राजा की कोठरी के पास रखी गई और उसमें से एक लोहार ने निकलकर राजा की बेड़ियां काट दीं। रतनसेन पहले से ही तैयार एक घोड़े पर सवार होकर निकल आए। शाही सेना पीछे आते देखकर वृद्ध गोरा तो कुछ सिपाहियों के साथ उस सेना को रोकता रहा और बादल रतनसेन को लेकर चितौर पहुंच गया। चितौर आने पर पद्मिनी ने रतनसेन से कुंभलनेर के राजा देवपाल द्वारा इत्ती भेजने की बात कही जिसे सुनते ही राजा रतनसेन ने कुंभलनेर को घेरा। लड़ाई में देवपाल और रतनसेन दोनों ही मारे गए।

रतनसेन का शव चितौर लाया गया। उसकी दोनों रानियां नागमती और पद्मावती हंसते–हंसते पति के शव के साथ चिता में बैठ गईं। पीछे जब सेना सहित अलाउद्दीन चितौर में पहुंचा तब वहां राख के ढेर के सिवा कुछ न मिला।

जैसा कि कहा जा चुका है कि प्रेमगाथा की परंपरा में पद्मावत सबसे प्रौढ़ और सरस है। प्रेममार्गी सूफी कवियों की और कथाओं से इस कथा में यह विशेषता है कि इसके ब्यौरों से भी साधना के मार्ग, उसकी कठिनाइयों और सिद्धि के स्वरूप

आदि की जगह–जगह व्यंजना होती है, जैसा कि कवि ने स्वयं ग्रंथ की समाप्ति पर कहा है–

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिंय सिंहल, बुधि पदमिती चीन्हा।''
गुरु सुआ श्रेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमति यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैत्तानू। माया अलाउदीं सुलतान।।

यद्यपि पद्मावत की रचना संस्कृत प्रबंध काव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर नहीं है, फारसी की मसनवी शैली पर है, पर शृंगार वीर आदि के वर्णन चली आती हुई भारतीय काव्य परंपरा के अनुसार ही हैं। इसका पूर्वार्द्ध तो एकांत प्रेममार्ग का ही आभास देता है, पर उत्तरार्द्ध में लोकपक्ष का भी विधान है। पद्मिनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौन्दर्य की लोकत्तर भावना में मग्न करने वाला है। अनेक प्रकार के अलंकारों की योजना उसमें पाई जाती है। कुछ पद्य देखिए–

सखर तीर पद्मिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।।
ससि मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिन झांपि लीन्ह चहुँ पासा।।
ओ नई घटा परी जग छाँहा। ससि के सरन लीन्ह जनु राहा।।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महँ चंद देखवा।।
पद्मिनी के रूप के वर्णन में जायसी ने कहीं–कहीं उस अनंत

सौन्दर्य की ओर, जिसके विरह में यह सारी सृष्टि व्याकुल सी है, बड़े सुन्दर संकेत किए हैं–

बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुई अनी।।
उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा।।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि कै हने।।
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाड़ देहिं सब साखी।।
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े। सूत्तहि सूत बेध अस गाढ़े।।
बकनि बान अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाख
सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पांख।

इसी प्रकार योगी रतनसेन के कठिन मार्ग के वर्णन में साधक के मार्ग के विघ्नों (काम, क्रोध आदि विकारों) की व्यंजना की है–

ओहि मिलान जौ पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुष भल होई।।
है आगे परबत्त कै बाटा। विषम पहार अगम सुठि धारा।।
बिच–बिच नदी खोह औ नारा। ढाँवहि ढाँव बैठ बटपारा।।

टिप्पणी

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. हिन्दी की तूती किसे कहा जाता है?
   (क) जायसी (ख) विद्यापति
   (ग) अमीर खुसरो (घ) मीराबाई
2. विद्यापति का ग्रंथ 'कीर्तिलता' किस भाषा में रचित है?
   (क) अपभ्रंश (ख) ब्रज
   (ग) अवहट्ठ (घ) अवधी
3. प्रेमगाथा परंपरा में पूर्ण प्रौढ़ता जायसी की किस कृति में प्राप्त होती है?
   (क) पद्मावत (ख) अखरावर
   (ग) आखिरी कलाम (घ) इनमें से कोई नहीं

5.5 मीरा

संक्षिप्त जीवन परिचय

मीराबाई का जन्म पुराने जोधपुर राज्य के मेड़ता में हुआ बताया जाता है–'मेड़तिया घर जन्म लियौ है, मीरा नाम कहायो।' जोधपुर राज्य को बसाने वाले राव जोधाजी इनके पितामह थे, और राजा रत्नसिंह की ये पुत्री थीं। इनका सांसारिक विवाह भोजराज से हुआ था। किंतु थोड़े ही दिनों के पश्चात इनके पतिदेव की मृत्यु हो गई। ये साधुओं के सत्संग में अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थीं, किंतु इनके घर के लोग इस बात से नाराज थे।

कहा जाता है कि मीरा को भगवान के चरणामृत के धोखे से विषपान कराया गया था, किंतु इन पर उसका कुछ असर न हुआ–'राणाजी ने भेजा विष का प्याला, सो अमृत कर पीज्यो जी।' तुलसीदास जी से भी इनका पत्र–व्यवहार होना बताया जाता है। गोस्वामी जी का निम्नलिखित पद इनके ही पत्र के उत्तर में लिखा हुआ कहा जाता है–

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।।

अष्टछाप के कृष्णदास ने मीरा को वल्लभ संप्रदाय में लाने का प्रयत्न किया था जो विफल हुआ। जो पद इन्होंने लिखे हैं वे तन्मयता से भरे हुए हैं।

कृतियां

मीरा ने निम्नांकित ग्रंथों की रचनाएं की–

- नरसी का मायरा
- गीत गोविंद टीका
- राग गोविंद

- राग सोरठा के पद
- गर्वागीत और फुटवल पद
- 'मीराबाई की पदावली'।

टिप्पणी

काव्य वैशिष्ट्य

कृष्ण काव्य परंपरा में मीरा का स्थान बड़ा ऊंचा है। इस विषय के जो कुछ भी उदाहरण हमें राजस्थानी हिंदी के फुटकर 'दूहों', 'रसायणों' व प्रेम कहानियों में भी अब तक मिल पाए हैं, उनमें अधिक से अधिक लौकिक व्यक्तियों एवं श्रृंगारिक भावनाओं का ही समावेश है। स्वानुभूति से सब कुछ कृष्ण को समर्पित कर देने वाली मीरा का स्थान कृष्ण काव्य परंपरा में अक्षुण्ण है।

कृष्ण भक्ति के साथ–साथ मीरा के स्वचेतनात्मक पदों में स्त्री मुक्ति और संघर्ष के कई आयाम सामने आते हैं। हिंदी साहित्य में पहली बार मीरा की रचनाओं में ही स्त्री चेतना का सशक्त स्वर सुनाई पड़ता है।

मीरा की काव्य भाषा और शैली अन्य पुरुष भक्त कवियों की भाषा व शैली से भिन्न है। मीरा के पदों में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वह समाज, शास्त्र और परंपरा में अवस्थित स्त्री की स्थिति से संबंध रखते हैं। मीरा राजस्थान की कवयित्री है अतः राजस्थानी उनकी मातृभाषा है। परंतु मीरा के काव्य में केवल राजस्थानी भाषा का ही समावेश नहीं होता अपितु उसमें अन्य भाषाओं का भी वर्णन प्राप्त होता है। राजस्थानी के साथ–साथ उन्होंने ब्रज, पंजाबी और गुजराती भाषा को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। मीरा के काव्य में काव्य भाषा के सभी अनिवार्य गुण (कोमलता, मधुरता, सरसता, सुबोधता और स्वाभाविकता) मिलते हैं। मीरा ने अपने काव्य में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होते हुए भी व्याकरण के नियमों का साधारणतः पालन किया है।

मीरा के काव्य की भाषा भी साधारण बोलचाल की राजस्थानी भाषा है। मीरा ने अपने काव्य में बहुप्रचलित मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया है। जिससे उनके काव्य में रमणीयता की वृद्धि होती है। मीरा के काव्य में लोकोक्तियों, अलंकार भाषा के साथ–साथ और छंद विधान की योजना स्पष्टतः की गई है।

"धणी चेण णां आवडा थे दरसन बिन मोय।
धाम णा भावां नींद णा आव, विरह सतावां मोय।"

मीराबाई के काव्य में प्रेम लौकिक रूप में व्यक्त होता हुआ भी, परमात्मा से संबद्ध होने के कारण, वास्तव में अलौकिक, अतएव आध्यात्मिक एवं विरह–गर्भित भी था। मीराबाई को यह बात सिद्धांत रूप से स्वीकृत है कि उनमें और उनके इष्टदेव व प्रियतम में जीवात्मा और परमात्मा की मौलिक एकता के कारण, कोई वास्तविक अंतर नहीं।

मीरा की प्रेम–पीड़ा में निजीपन अधिक है। इन्होंने गोपियों का विरह–वर्णन न कर स्वयं अपना विरह–निवेदन किया है। इनके पदों में इनकी तीव्रतानुभूति का परिचय मिलता है। मीरा ने अपनी तन्मयता के कारण ही इतनी ख्याति प्राप्त की है

और हृदय की तीव्र संवेदना के कारण ही इनकी वाणी में इतना बल आ सका है। कुछ उदाहरण देखिए–

टिप्पणी

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरित साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
छुद्र धण्टिका कटि–तट शोभित, नुपूर शब्द रसाल।।
मीर प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।

× × ×

स्याम, मन चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तानूँ बाताँ सरसी।।

दूसरे पद में मीरा के प्रेम की निजी उमंग झलक रही है। इसी की छाया लेकर कवि–सम्राट रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'Gardener' नाम की कविता की, जिसमें बागवान रानी से उनके यहां नौकरी करने की प्रार्थना करता है। वेतन पूछे जाने पर वह कहता है, एक माला नित्य समर्पित करने का अधिकार, जो मीरा के 'सुमिरन पाऊँ खरची' (जेबखर्च) का ही भाव है।

5.6 रसखान

संक्षिप्त जीवन परिचय

रसिक रसखानि (रसखान) का कृष्ण भक्त कवियों में प्रमुख स्थान है। ये जाति के पठान थे और इनका नाम सय्यद इब्राहिम था। इनके जीवन वृत्त के संबंध में पर्याप्त सामग्री चौरासी वैष्णवन की वार्ता से प्राप्त होती है। रसखान प्रेमी स्वभाव के व्यक्ति थे। उनका लौकिक प्रेम ही भक्तिभाव में परिणत हो गया था। भगवत् भक्ति के लिए अपना सब कुछ छोड़कर वे ब्रज भूमि में जाकर रहने लगे और बिट्ठलनाथ के शिष्य हो गए।

रसखान की दो पुस्तकों का उल्लेख मिलता है– प्रेम वाटिका और सुजान रसखानि।

कृतियां

'प्रेम वाटिका' की रचना दोहा छंद में है और 'सुजान रसखानि' में कवित्त तथा सवैया का प्रयोग हुआ है। नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट के अनुसार इनकी एक अन्य पुस्तक का नाम 'राग रत्नाकर' सिद्ध होता है।

रसखान की रचनाओं को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है– प्रेम संबंधी पद तथा कृष्ण भक्ति संबंधी पद।

टिप्पणी

रसखान प्रेम के क्षेत्र में स्वार्थ भाव को नहीं देखना चाहते थे। भक्ति की ओर मुड़ने पर वे लौकिक प्रेम को छोड़कर अलौकिक प्रेम की महत्ता बताने लगे थे। रसखान कृष्ण भक्त कवि थे। उन्होंने विट्ठल दास जी से दीक्षा ली थी, अतः उनकी भक्ति सखा भाव की थी। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के बाल रूप और उनके प्रेमभाव का ही अधिक कथन किया है। रसखान को भी ये दो रूप ही प्रिय रहे हैं। बालकृष्ण का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है–

'धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।'

रसखान की काव्य भाषा ब्रज भाषा है। उसमें किसी तरह की कृत्रिमता नहीं है। वह स्वाभाविक प्रवाह से युक्त है। अरबी, फारसी और अवधी के प्रचलित शब्दों का चयन कर उन्हें ब्रजभाषा के बीच सुंदर ढंग से सजाने का कार्य रसखान ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है' 'ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भारी छाछ पै नाच नचावत' में 'ताहि' शब्द अवधी भाषा का है। कहीं–कहीं राजस्थानी और अपभ्रंश के शब्द भी मिलते हैं। उनकी कविता में माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का दर्शन होता है। शब्द चयन, स्वाभाविक प्रवाह आदि गुणों के कारण उनके सवैयों में गेय तत्व मुखर हो उठा है।

अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है। उनके प्रिय अलंकार थे– अनुप्रास, रूपक, उपमा, श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा आदि।

मुसलमान होते हुए भी रसखान कृष्ण की भक्ति में जिस प्रकार तल्लीन हुए, वह उनकी श्रेष्ठ भक्ति भावना का परिचायक है।

परवर्ती घनानंद तथा भारतेंदु पर उनका प्रभाव पड़ा है। रसखान की अनुभूति तीव्र तथा अभिव्यक्ति प्रबल थी। वे कृष्ण भक्त कवियों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

4. मीरा को विषपान क्या बताकर कराया गया?

(क) औषधि (ख) पानी

(ग) चरणामृत (घ) रस

5. सय्यद इब्राहिम किसका वास्तविक नाम था?

(क) जायसी (ख) घनानंद

(ग) मतिराम (घ) रसखान

5.7 केशव

संक्षिप्त जीवन परिचय

केशव रीतिकाल के एक प्रमुख कवि है। इनके जन्म–संवत् के विषय में कोई विशेष व पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते। विद्वानों ने उनकी रचना 'रसिक प्रिया' के आधार पर उनका जन्म संबंधी अनुमान लगाया है।

"भाषा बोलि न जानईं, जिनके कुल कै दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तिहिं कुल केशवदास।"

केशव पुष्टिमार्ग में दीक्षित वैष्णव थे और उनके दीक्षा–गुरू गोस्वामी विट्ठलनाथ थे।

टिप्पणी

केशव का समय भक्तिकाल का अंतिम तथा रीतिकाल का प्रारंभिक युग था। रीतियुग की काव्यगत प्रवृत्तियों के बीज भक्तिकाल में ही अंकुरित हो गए थे। केशव ने इस नूतन प्रवृत्ति को निश्चित व्यवस्था देकर रीतिकाल का सूत्रपात किया। आचार्य केशवदास सनाढ्य कुलोद्भव पं. काशीनाथ के पुत्र थे। केशव ओरछा के रहने वाले थे। आचार्य केशव सच्चे अर्थों में राजकवि थे। वे पंडित थे, आचार्य थे, कवि थे और कदाचित भक्त भी थे। उन्हें अपने पांडित्य पर गर्व था। उनका घराना कई पीढ़ियों से राज–सम्मान प्राप्त करता चला आ रहा था। ओरछा नरेश महाराज रामशाह के अनुज इंद्रजीत सिंह उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। स्वयं महाराज रामशाह उन्हें अपना मंत्री और मित्र मानते थे। लोक–परंपरा, महत्व की दृष्टि से उन्हें सूर और तुलसी के बाद तीसरा स्थान प्राप्त है।

कृतियां

विभिन्न शोधों के आधार पर महाकवि केशव प्रणीत नौ ग्रंथ माने जाते हैं। वर्ण्य–विषय की दृष्टि से इन ग्रंथों का वर्गीकरण किया गया है–

प्रशस्ति काव्य– (1) रतनबावनी, (2) वीरसिंहदेवचरित, और (3) जहांगीर– जस–चंद्रिका।

काव्यशास्त्र विषयक अथवा लक्षण ग्रंथ– (1) रसिकप्रिया, (2) नखशिख, (3) कविप्रिया, और (4) छंदमाला।

महाकाव्य– रामचंद्रिका

'केशवदास' की दृष्टि में राम पूर्णब्रह्म हैं; किंतु संपूर्ण 'रामचंद्रिका' का वातावरण एक विशिष्ट अभिजात्य एवं सामंतीय सांस्कृतिक मूल्यों से परिवेष्टित है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच का संबंध बहुत कुछ नगर–सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर निर्मित है। केशवदास के संवाद इसके प्रमाण हैं।

केशव की 'कविप्रिया' में काव्य–भेद, कवि–भेद, कवि–संप्रदाय, काव्य के वर्ण्य–विषय, अलंकार, काव्य–दोष आदि सभी तत्वों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 'कवि प्रिया' ग्रंथ का आधार 'काव्यादर्श', 'कवि कल्पलतावृत्ति', 'अलंकार–शेखर' आदि को माना जाता है।

केशव ने अपने काव्य 'रसिकप्रिया' में संयोग और वियोग श्रृंगार, नायक–नायिका भेद तथा दर्शन, सात्विक–व्यभिचारी भाव, मान तथा सखी–कर्म आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। संस्कृत–साहित्य में श्रृंगार रस का राजत्व प्रसिद्ध है।

काव्य वैशिष्ट्य

केशव के काव्य का प्रधान रस श्रृंगार था। इसके अलावा उनके काव्य में करूण, रौद्र, वीर, भयानक तथा शांति आदि रसों का भी वर्णन मिलता है।

केशव ने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे। केशव के आचार्यत्व का आधार भी यही दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। केशव ने 'कविप्रिया' में अलंकारों का तथा 'रसिकप्रिया' में रसों का वर्णन किया है।

वास्तव में केशव अलंकार प्रिय और चमत्कारवादी कवि थे। उनकी आत्मा और व्यक्तित्व कलामय थे। वे रसों को भी अलंकारों के अंदर समाहित करते थे।

टिप्पणी

छंदशास्त्र पर भी केशव का असाधारण अधिकार था। 'रामचंद्रिका' में केशव ने अनेक प्रकार के छंदों को प्रस्तुत किया है। उन्होंनें एकाक्षरी छंदों से लेकर अनेकाक्षरी तथा मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। केशव ने अपने काव्य में लक्षण–पद्धति अपनाई थी। सर्वप्रथम उन्होंने दोहे अथवा छंद विशेष में लक्षण लिखा तथा इसके पश्चात अलग से उसके उदाहरण भी प्रस्तुत किए। कुछ परवर्ती कवियों ने (इस परंपरा के) एक ही छंद में लक्षण तथा उदाहरण एक साथ देने की शैली को अपनाया।

केशव ने अलंकारों की कुल संख्या 33 मानी है। उनके वर्णन आचार्य दण्डी के द्वारा प्रस्तुत 'काव्यादर्श' के अनुरूप हैं। केशव आचार्य दण्डी के सभी ग्रंथों का अनुवाद कर हिंदी में रीतिशास्त्रों की परंपरा को आगे चलाना चाहते थे और इस कार्य में वह सफल भी हुए।

5.8 पद्माकर

संक्षिप्त जीवन परिचय

पद्माकर तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहन लाल था। इनका जन्म सम्वत् 1810 में बांदा में हुआ और इन्होंने 1890 में कानपुर में गंगा तटा पर शरीर छोड़ा। ये अनेक आश्रयदाताओं के पास गये और वहां इन्हें गौरवपूर्ण सम्मान मिला। जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंह के यहां उन्हें एक अच्छी जागीर मिली और 'कविराज शिरोमणि' की पदवी से विभूषित किया गया। ये रीतिकाल के परवर्ती खेमे के कवियों में सर्वश्रेष्ठ अन्तिम कवि हैं। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस युग के भीतर बिहारी को छोड़कर दूसरा नहीं हुआ है। इनकी रचना की रमणीयता ही इस सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है।

कृतियां

पद्माकर के नाम से हिम्मत बहादुर, विरुदावली, जगद्विनोद, पद्माभरण, गंगालहरी, जमुना लहरी, प्रबोध पंचाशिका, ईश्वर पचीसी, राम रसायन नामक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनकी ये रचनाएं तीन प्रकार की हैं– 1. लक्षण ग्रन्थ, 2. प्रशस्ति मूलक ग्रन्थ, 3. वैराग्य सम्बन्धी ग्रन्थ। प्रथम श्रेणी में जगद्विनोद, पद्माभरण और विरुदावली हैं। द्वितीय श्रेणी में–हिम्मत बहादुर, तथा तृतीय श्रेणी में शेष रचनाएं आ जाती हैं।

आचार्यत्व की दृष्टि से इनका महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। इनकी ख्याति का आधार जगद्विनोद ग्रन्थ है। यह रस ग्रन्थ है। इसमें नवों रसों तथा नायक–नायिका भेद का वर्णन है। इनका दोहा और चौपाइयों में निर्मित एक ग्रन्थ 'पद्माभरण' है। इसमें दो प्रकरण हैं–अर्थालंकार प्रकरण तथा पंचदश अलंकार प्रकरण। इसमें इन्होंने सटीक एवं स्वच्छ उदाहरणों का मेल किया है जिससे इस ग्रन्थ का महत्व बढ़ जाता है।

पद्माकर एक उत्कृष्ट प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। इनमें उदात्त कल्पना के साथ–साथ शब्द योजना एवं दृश्य योजना अद्वितीय है। ये शब्द शिल्पी हैं। आचार्य शुक्ल इनके सम्बन्ध में लिखते हैं– ''इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव–भावपूर्ण मूर्ति

विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्याक्षानुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसा सजीव मूर्त–विधान करने वाली कल्पना बिहारी को छोड़कर अन्य किसी कवि में नहीं पाई जाती।'' इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण और परिमार्जित है। इनकी भाषा जैसी अनेकरूपता कम कवियों में मिलती है। भाषा की सभी शक्तियों पर इस कवि का अधिकार है। शुक्ल जी के ही शब्दों में– ''रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें बहुत श्रेष्ठ स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़कर दूसरा नहीं हुआ है। जिस प्रकार ये अपनी परम्परा के परमोत्कृष्ट कवि हैं उसी प्रकार प्रसिद्धि में अन्तिम भी।''

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

6. केशव का समय क्या था?

   (क) भक्तिकाल का अंतिम समय (ख) भक्तिकाल का मध्य समय

   (ग) रीतिकाल का प्रारंभिक समय (घ) 'क' एवं 'ग'

7. रीतिकाल के परवर्ती खेमे के कवियों में सर्वश्रेष्ठ व अंतिम कवि किसे माना जाता है?

   (क) बिहारी (ख) पद्माकर

   (ग) भूषण (घ) केशव

5.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ग)
3. (क)
4. (ग)
5. (घ)
6. (घ)
7. (ख)

5.10 सारांश

अमीर खुसरो मुख्य रूप से फारसी के कवि हैं। फारसी भाषा पर उनका संपूर्ण अधिकार था। फारसी काव्य के लालित्य और कौशल के कारण ही अमीर खुसरो को 'हिन्दी की तूती' कहा जाता है।

खुसरो ने रचनाएं दो प्रकार भाषाओं में की– पहेलियों, मुकरियों और दो सखुनों में ठेठ खड़ी बोली ही मिलती है–यद्यपि उनमें भी कहीं–कहीं ब्रजभाषा की झलक स्पष्ट है। गीतों और दोहों की भाषा ब्रज मुख–प्रचलित काव्यभाषा ही है। खुसरो का काव्य मसनवी शैली पर आधारित है।

मैथिलकोकिल विद्यापति भक्त–कवि थे या शृंगारी कवि, यहां हम इस प्रश्न के विवादों में न उलझकर पदावली के वर्ण्य–विषय का अलग विवेचन कर रहे हैं। सबसे पहले हम विद्यापति की सौन्दर्य एवं प्रेम की भावना का विश्लेषण कर रहे हैं।

टिप्पणी

विद्यापति ने 'पदावली' में अधिकांश शृंगारपरक एवं भक्तिपरक पदों का ही अधिक निरूपण किया है। कवि ने शृंगार वर्णन में अधिकांशतः परंपरागत उपमानों का अधिक प्रयोग किया है। परंतु उसमें कवि ने अपनी मौलिक कल्पना–शक्ति का भी परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त कवि ने भक्तिपरक पदों की रचना की है। ऐसा माना जाता है कि कवि ने जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुंचकर ही भक्तिपरक पदों की रचना करनी आरंभ की थी। यही कारण है कि उनकी 'पदावली' में भक्तिपरक पदों की संख्या कम है। इसके अतिरिक्त कवि ने अपनी पदावली में प्रकृति–चित्रण पर आधारित पदों की रचना की है।

जायसी ने तीन पुस्तकें लिखीं–एक तो प्रसिद्ध 'पदमावत', दूसरी 'अखरावट', तीसरी 'आखिरी कलाम'। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक–एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। इस छोटी–सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पदमावत', जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोक पक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।

कृष्ण काव्य परंपरा में मीरा का स्थान बड़ा ऊंचा है। इस विषय के जो कुछ भी उदाहरण हमें राजस्थानी हिंदी के फुटकर 'दूहों', 'रसायणों' व प्रेम कहानियों में भी अब तक मिल पाए हैं, उनमें अधिक से अधिक लौकिक व्यक्तियों एवं शृंगारिक भावनाओं का ही समावेश है। स्वानुभूति से सब कुछ कृष्ण को समर्पित कर देने वाली मीरा का स्थान कृष्ण काव्य परंपरा में अक्षुण्ण है।

रसखान की काव्य भाषा ब्रज भाषा है। उसमें किसी तरह की कृत्रिमता नहीं है। वह स्वाभाविक प्रवाह से युक्त है। अरबी, फारसी और अवधी के प्रचलित शब्दों का चयन कर उन्हें ब्रजभाषा के बीच सुंदर ढंग से सजाने का कार्य रसखान ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है' 'ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भारी छाछ पै नाच नचावत' में 'ताहि' शब्द अवधी भाषा का है। कहीं–कहीं राजस्थानी और अपभ्रंश के शब्द भी मिलते हैं। उनकी कविता में माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का दर्शन होता है।

आचार्य केशव सच्चे अर्थों में राजकवि थे। वे पंडित थे, आचार्य थे, कवि थे और कदाचित भक्त भी थे। उन्हें अपने पांडित्य पर गर्व था। उनका घराना कई पीढ़ियों से राज–सम्मान प्राप्त करता चला आ रहा था। ओरछा नरेश महाराज रामशाह के अनुज इंद्रजीत सिंह उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। स्वयं महाराज रामशाह उन्हें अपना मंत्री और मित्र मानते थे। लोक–परंपरा, महत्व की दृष्टि से उन्हें सूर और तुलसी के बाद तीसरा स्थान प्राप्त है।

पद्माकर एक उत्कृष्ट प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। इनमें उदात्त कल्पना के साथ–साथ शब्द योजना एवं दृश्य योजना अद्वितीय है। ये शब्द शिल्पी हैं। आचार्य शुक्ल इनके

सम्बन्ध में लिखते हैं– ''इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव–भावपूर्ण मूर्ति विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्याक्षानुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसा सजीव मूर्त–विधान करने वाली कल्पना बिहारी को छोड़कर अन्य किसी कवि में नहीं पाई जाती।'' इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण और परिमार्जित है।

टिप्पणी

5.11 मुख्य शब्दावली

- **प्रधानता** : प्रमुखता।
- **नश्वर** : जिसका नष्ट होना सुनिश्चित हो।
- **वयः संधि** : किशोरावस्था व युवा अवस्था के योग की स्थिति।
- **मुख** : मुंह।
- **नख–शिख** : नाखून से केश तक।
- **विरह** : वियोग।
- **वेदना** : पीड़ा।
- **व्यथित** : दुःखी।

5.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अमीर खुसरो की कृतियों का उल्लेख कीजिए।
2. विद्यापति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. जायसी कौन थे?
4. केशव का समय क्या है? उन्होंने रीतिकाल का सूत्रपात कैसे किया?
5. पद्माकर के नाम से कौन–से ग्रंथ उपलब्ध होते हैं?

दीर्घ–उत्तीरय प्रश्न

1. विद्यापति पदावली का वैशिष्ट्य निरूपण कीजिए।
2. रसखान के व्यक्तित्व–कृतित्व एवं काव्य वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।
3. मीरा का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताएं लिखिए।
4. केशव के जीवन–वृत्त एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
5. पद्माकर कौन थे? उनका साहित्यक योगदान समझाइए।

5.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, 'कबीर की विचारधारा', साहित्य निकेतन, कानपुर।
2. डॉ. विजेन्द्र स्नातक, 'कबीर', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

टिप्पणी

3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'सूर साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. गोविन्द राय शर्मा, 'सूर की काव्य साधना', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. रामचंद्र शुक्ल, 'गोस्वामी तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
6. रामनरेश त्रिपाठी, 'तुलसीदास और उनका काव्य', राजपाल एंड संस, दिल्ली।
7. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', बिहारी रत्नाकर, लोकवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'भूषण ग्रंथावली', वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
9. परमानंद सुहाने, 'शिवराज भूषण', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
10. कृष्णचन्द्र वर्मा, 'रीति स्वच्छन्द काव्यधारा', कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर।
11. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, 'विद्यापति' नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी।
12. डॉ. प्रणव शर्मा, 'केशव के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन'
13. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'जायसी ग्रंथावली', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।